राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी एवं विश्वेश्वरकृत शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों का आलोचनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
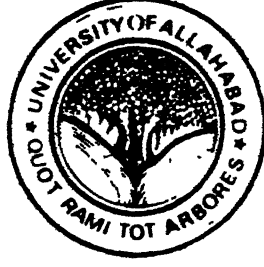
प्रस्तुतकर्ता

सञ्जय कुमार पाण्डेय

निर्देशक

डॉ० शङ्कर दयाल द्विवेदी

रीडर

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

१९९९

आत्मनिवेदन

सभ्यता के अरुणोदय काल से ही अभिनय-कला मानव समाज के मनोरञ्जन का मुख्य साधन रहा है। आज के वैज्ञानिक युग मे मनोरञ्जन के विविध साधनों के होते हुए भी नाट्य-कला का सर्वोच्च स्थान सुरक्षित है। ऐसी लोकप्रिय कला एवं तत्सम्बन्धी साहित्य के प्रति बाल्यकाल से ही आकर्षित होना स्वाभाविक था। परिणामतः स्नातकोत्तरोत्तरार्द्ध परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद नाट्य-साहित्य के शोध-विषयक सहज जिज्ञासा हुई। पूज्यपाद डॉ० शङ्कर दयाल द्विवेदी जी ने अपने निर्देशन में कृपावंशवदत्वेन अनुमति देकर मेरी जिज्ञासा को ठोस आधार प्रदान किया। तत्कालीन विभागाध्यक्ष प्रो० सुरेश चन्द्र पाण्डेय जी ने शोध-विषय का सुझाव देकर महनीय कृपा की, यह उनकी नैसर्गिक उदारता थी। फलतः "राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी एवं विश्वेश्वरकृत शृङ्गारमञ्जरी सट्टको का आलोचनात्मक अध्ययन" विषय पर शोधकार्य में प्रवृत्त हुआ। यद्यपि कविराज राजशेखर तथा पं० विश्वेश्वर पर पृथक् रूप से प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है, परन्तु एक ही विधा एवं पर्याप्त समानता को आधार बनाकर जन-भाषा प्राकृत में रचित रचनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन मेरे लिए अत्यन्त रोचक विषय था।

गुरुवर्य डॉ० द्विवेदी की प्रेरणा, रुचि एवं अकारण मुझ पर स्नेह के परिणाम-स्वरूप ही शोध-प्रबन्ध को मूर्त-रूप प्राप्त हो सका है; उनके इन उपकारो के प्रति आभार ज्ञापन में मैं शब्द दारिद्रय का अनुभव कर रहा हूँ; निश्चय ही मैं इसका प्रतिदान यावज्जीवन नहीं कर सकता। संस्कृत विभाग के वर्तमान अध्यक्ष प्रो० हरिशङ्कर त्रिपाठी तथा अन्य गुरुजनों से प्राप्त प्रेरणा एवं स्नेह से ही इस दुरूह कार्य को कर लेने का आत्मविश्वास जागा। मैं आप सबको शतशः नमन करता हुआ हार्दिक आभार ज्ञापित करता हूँ। डॉ० लक्ष्मीदत्त जोशी, प्रधानाचार्य, एस०के० इण्टर कालेज, इलाहाबाद, ने अपने वैदुष्यपूर्ण सहयोग से जो उपकार मुझ पर किया है, इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

संभवतः मेरे पूज्यनीय पिता स्व० श्री राम अधार पाण्डेय की यह अदृश्य शुभेच्छा ही रही, जिससे सतत उर्जा प्राप्त कर मैं शोधकार्य में प्रेरित रहा। आज इस शोध-प्रबन्ध की पूर्णता पर उन्हे मेरा शत-शत नमन है। अपने आदरणीय अग्रजों— सर्वश्री वीरेन्द्रनाथ पाण्डेय, श्री सुरेन्द्रनाथ पाण्डेय, श्री सच्चिदानन्द पाण्डेय एवं श्री धनञ्जय कुमार पाण्डेय से प्राप्त अविरल स्नेह एवं प्रोत्साहन शोधकार्य की पूर्णता के लिए जीवनदायिनी शक्ति बन गया है। मै आप सबके प्रति आजीवन आभारी हूँ। मेरी दैनिक आवश्यकताओं का प्रतिपल ध्यान रखने वाले चिरञ्जीव भ्रातृव्यो— बृजेश कुमार एवं विकास रञ्जन धन्यवाद के पात्र हैं; क्योंकि उनके सहयोग के बिना शोधकार्य में अधिकाधिक समय दे पाना मेरे लिए संभव न था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय एवं स्थानीय गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के अधिकारियों एवं कर्मचारियों से सतत् सहयोग मिलता रहा है; अतः उन लोगों के प्रति धन्यवाद ज्ञापन मेरा नैतिक दायित्व है। साथ ही उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनसे शोधकार्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उपकृत हुआ हूँ। कम्प्यूटरीकृत टङ्कण कार्य की स्पष्टता एवं शुद्धता के लिए श्री प्रभाकर पाण्डेय जी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने अल्प समय में अत्यन्त परिश्रमपूर्वक इस गुरुतर कार्य को सम्पादित किया।

मैंने शोध-प्रबन्ध लेखन में श्री रामकुमार आचार्य द्वारा सम्पादित कर्पूरमञ्जरी एवं डॉ० जगन्नाथ जोशी द्वारा सम्पादित श्रृङ्गारमञ्जरी के संस्करणों को मुख्य आधार बनाया है।

अंत मे, मैं शोध-प्रबन्ध को गुणग्राह्य-सुधीजनों के समक्ष प्रस्तुत कर शोधविषयक अशुद्धियों एवं अपरिपक्वता के प्रति अपना उत्तरदायित्व स्वीकार करते हुए यह अपेक्षा करता हूँ, कि इसे बालप्रयास मानकर विद्वान लोग इन त्रुटियों की ओर ध्यान न देंगे।

विनयावनत

सञ्जय कुमार पाण्डेय

23-12-1999

(सञ्जय कुमार पाण्डेय)

विषयानुक्रमणिका

काव्य-परिचय

दृश्य-काव्य

दृश्य-काव्य का महत्त्व

दृश्य-काव्य के भेद

(क) रूपक

(ख) उपरूपक

उपरूपकों की उत्पत्ति एवं विकास

(क) उपरूपकों का प्राचीनतम उल्लेख

(ख) उपरूपकों के विकास में कोहल का योगदान

(ग) उपरूपकों की विकास प्रक्रिया—

(१) नृत्त एवं नृत्य के मार्ग से उपरूपक का विकास

(२) रूपकों के सङ्कीर्णन से उपरूपकों की उत्पत्ति

उपरूपकों का स्वरूप

उपरूपकों के भेद

सट्टक का परिचय एवं लक्षण

सट्टक : रूपक अथवा उपरूपक

सट्टक साहित्य की परम्परा

(क) कर्पूरमञ्जरी

(ख) रम्भामञ्जरी

(ग) विलासवती

(घ) चन्द्रलेखा

(ङ) शृङ्गारमञ्जरी

(च) आनन्दसुन्दरी

(छ) वैकुण्ठचरित

(ज) अज्ञातनामा सट्टक

प्रथम-अध्याय

काव्य-परिचय

'कर्पूरमञ्जरी' एवं 'शृङ्गारमञ्जरी' दोनों ही सट्टक विधा के अन्तर्गत परिगणित है; जिसे दृश्य-काव्य का एक उपभेद माना जाता है। इन दोनो कृतियों के आलोचनात्मक परिशीलन से पूर्व दृश्य-काव्य का सामान्य विवेचन अपेक्षित है; जिससे काव्य मे सट्टक के स्थान को सुनिश्चित किया जा सके। साथ ही सट्टक है क्या? इस विधा की साहित्यिक परम्परा क्या है? इत्यादि विषयों पर विचार करना भी प्रासङ्गिक है।

दृश्य-काव्य

संस्कृत-काव्य-धारा दो सरणियो में विभक्त है–दृश्य एवं श्रव्य।[१] दृश्य-काव्य वह है, जिसका आस्वादन मुख्यतः चक्षुरिन्द्रिय द्वारा किया जाता है; जबकि श्रव्य-काव्य प्रधानतः श्रवणेन्द्रिय के द्वारा आनन्द की अनुभूति कराता है। संस्कृत साहित्य में दृश्य-काव्य-विधा 'नाट्य' नाम से प्रसिद्ध है। अमरकोशकार के अनुसार नृत्य, गीत एवं वाद्य इन तीनों के समुच्चय को नाट्य कहते है।[२] आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार–नाट्य शब्द नमनार्थक नट् धातु से निष्पन्न है, जहाँ पात्र स्व-भाव या स्व-रूप को त्याग कर पर-भाव या पर-रूप ग्रहण करता है।[३] आचार्य भरत का कथन है, कि–नानावस्थाओ से समन्वित जो लोक का स्वभाव है, अङ्गादि अभिनयों से युक्त होने पर वही नाट्य कहलाता है।[४] आचार्य धनञ्जय ने अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहा है।[५] आचार्य धनिक[६],

१. 'दृश्यश्रव्यभेदेन पुनः काव्य द्विधा मतम्'–साहित्यदर्पण–६/१

२. 'त्रौर्यत्रिक नृत्यगीतवाद्य नाट्यमिद त्रयम्'–अमरकोश–१/७/११

३. 'नटनताविति नमन स्वभावत्यागेन प्रह्वीभावलक्षणम्'– पृष्ठ ८०

४. नाट्यशास्त्र–१९/४४

५. 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्'–दशरूपक–१/७

६. 'काव्योपनिबद्धधीरोदात्ताद्यवस्थानुकारश्चचतुर्विधाभिनयेन तादात्म्यापत्तिर्नाटम्'–दशरूपक–अवलोक टीका, पृष्ठ ६

शारदातनय[1], सागरनन्दी[2], महिमभट्ट[3] आदि ने भी अपने–अपने ढग से इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है। किन्तु सभी मतो का सार यही है कि–नाट्य अभिनेय है। यह रङ्गमञ्च की वस्तु है। रङ्गमञ्च की साजसज्जा एवं अभिनेता के कायिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्विक अभिनय को देखकर सामाजिक को आनन्द की अनुभूति होती है। अभिनय के द्वारा दर्शको को रसानुभूति कराना ही इसका उद्देश्य है।

दृश्य-काव्य का महत्त्व

दृश्य-काव्य अर्थात् नाट्य विभिन्न रुचि के लोगो के मनोरञ्जन का एकमात्र साधन है, जैसा कि महाकवि कालिदास ने कहा है–"नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाऽप्येकं समाराधनम्"[4] यह विभिन्न रङ्ग के सम्मिश्रण वाले चित्र की भाँति वेश-भूषा, नेपथ्य, साज-सज्जा आदि उचित ससाधनों से दर्शकों के हृदय पर एक अमिट प्रभाव डालता है और उसके हृदय मे आनन्द का उदय करता है। काव्य में आनन्द से वचित रहने वाले भी व्यक्ति नाट्य का मनोहर अभिनय देखकर, असीम अलौकिक आनन्द की उपलब्धि करते हैं।[5]

वास्तव में किसी वस्तु को सुनने की अपेक्षा उसे देखने का आनन्द अधिक होता है। काव्य में रसानुभूति के लिए अर्थ का समझना नितान्त आवश्यक होता है, परन्तु नाटक में उसकी आवश्यकता नहीं होती। यही कारण है कि–काव्य की अपेक्षा नाट्य की प्रतिष्ठा अधिक रही है। आचार्य वामन ने स्पष्टतः कहा कि–प्रबन्धो में रूपक श्रेष्ठ है। उनके अनुसार अपने मे पूर्ण होने के कारण रूपक चित्र की तरह आश्चर्यजनक होता है, चित्रवत्ता के कारण ही दृश्य-काव्य श्रेष्ठ है। यह

---

१. भावप्रकाशन–७/१

२. 'धर्मादि साधन नाट्यं सर्वदुःखापनोदकृत्'–नाट्यलक्षणरत्नकोश

३. 'अनुभावविभावानां वर्णना काव्यमुच्यते।
तेषामेव प्रयोगस्तु नाट्यं गीतादिरंजितम्।।'–व्यक्तिविवेक

४. मालविकाग्निमित्रम्–१/४

५. सस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ४६३

रूपक ही है, जिससे महाकाव्य, कथा, आख्यायिका आदि निःसृत है।[१] वामन का अनुकरण करते हुए आचार्य अभिनवगुप्त ने भी कहा है कि—नाट्य रसास्वादन की दृष्टि से अन्य की अपेक्षा पूर्ण है। वेश-भूषा, चाल-ढाल और प्रवृत्ति का काव्य मे वर्णन मात्र होता है, परन्तु नाट्य में सामाजिक प्रत्यक्ष रूप से इन सबको चक्षुरिन्द्रियों द्वारा देखता है, अतः रसास्वाद का अतिम उत्कर्ष नाट्य मे ही प्राप्त होता है। नाट्य की अपेक्षा कम रसास्वाद महाकाव्य से प्राप्त होता है। सबसे कम रसास्वाद मुक्तक से होता है।[२]

आचार्य भरत ने नाट्य को सार्ववर्णिक वेद कहा है, क्योकि अन्य वेद द्विजमात्र के लिए उपयोगी तथा उपादेय होते हैं, जबकि नाट्य का उपयोग प्रत्येक वर्ण के लिए है। इसका विषय भी सीमित नहीं होता, अपितु तीनो लोको के भावो का अनुवर्तन इसमें रहता है।[३] यह शक्तिहीनों के हृदय मे शक्ति का संचार करता है, शूरवीरो के हृदय मे उत्साह बढ़ाता है, अज्ञानियो को ज्ञान प्रदान करता है और विद्वानों मे विद्वता का उत्कर्ष करता है।[४] इसीलिए आचार्य भरत को कहना पड़ा कि—कोई भी ज्ञान, शिल्प, विद्या, योग अथवा कर्म ऐसा नही है, जो इस नाट्य में नहीं दिखाई पड़ता।[५] कालिदास ने तो नाट्य के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए उसे चाक्षुष यज्ञ तक बतलाया है—'देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्त क्रतु चाक्षुषम्।"[६] इस प्रकार आनन्द के साथ चरित्र को उदार बनाना, जीवन के स्तर को उदात्त एवं आदर्श बनाना नाट्य का जागरूक उद्देश्य है।

---

१. 'सन्दर्भेषु दशरूपक श्रेयः। तद्विचित्र चित्रपटवद् विशेषसाकल्यात्। ततोऽन्यभेदक्लृप्तिः। ततो दशरूपकादन्येषा भेदाना क्लृप्तिः कल्पनमिति। दशरूपकस्य हि इद सर्वं विलसित कथाख्यायिके महाकाव्यमिति।"—काव्यालङ्कारसूत्र—१३/३०-३२

२. 'तच्च (रसास्वादोत्कर्षकारकं विभावादीना समप्राधान्य) प्रबन्ध एव भवति। वस्तु तस्तु दशरूपक एव। यदाह वामनः—सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः। तद्विचित्र चित्रपटवत् विशेषसाकल्यात्। तद्रूपरसचर्वणा तु प्रबन्धे भाषावेषप्रवृत्त्यौचित्यादिकल्पात्, तदुपजीवनेन मुक्तके!' —अभिनवभारती, षष्ठ-अध्याय, पृष्ठ २८७

३. 'त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्य भावानुकीर्तनम्।'—नाट्यशास्त्र—१/१०४

४. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ ४६३–६४

५. 'न तद् ज्ञान न तच्छिल्प न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।'—नाट्यशास्त्र—१/११४

६. मालविकाग्निमित्रम्—१/४

दृश्य-काव्य के भेद

रामणीयक विश्व साहित्य मे सस्कृत साहित्य सर्वथा विलक्षण है। जहाँ सस्कृतेतर विश्व साहित्य का लक्ष्य जीवन एवं जगत की विविध रूपिणी अभिव्यक्ति मात्र कराना रहा है, वही सस्कृत साहित्य का लक्ष्य आत्मदर्शन की मधुमयी झाँकियों को मानव जाति के समक्ष प्रस्तुत करना है। जिससे कि उनके मानस स्पर्श मात्र से युग-युग के कालुष्य धुल जाएँ तथा मानव व्यक्ति विशेष न रहकर सम्पूर्ण विश्व से भावमय तादात्म्य स्थापित कर विश्वरूप हो जाय। यद्यपि सस्कृतेतर साहित्य की भाँति सस्कृत साहित्य मे भी जगत के भौतिक तत्वो की भावनात्मक प्रतिक्रिया का समावेश रहता है, फिर भी समष्टि मे व्यष्टि के विलोपीकरण का प्रयास ही मुख्यरूप से प्रतिपादित होता है।

दूसरी बात यह है, कि जिस सस्कृति का चित्रण संस्कृत साहित्य मे प्राप्त होता है, वह देव और मानव संस्कृति का समन्वित रूप है। फलतः कहीं पर नायक लौकिकता युक्त राजा, ब्राह्मण या सामन्त है, तो कहीं इन्द्र आदि देवताओं का चित्रण प्राप्त होता है। समाज के प्रत्येक वर्ग का चित्रण संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होता है। स्पष्ट है कि इसी अत्यन्त विस्तृत विषय निरूपण मे समर्थ संस्कृत साहित्य में सुगमता की दृष्टि से रूपक के विभिन्न भेदो की आवश्यकता पड़ी।

समस्त रूपक साहित्य, रूपक एवं उपरूपक भेद से मूलतः दो वर्गों में विभाजित है, जिसमे प्रत्येक के अनेक उपभेद हैं। नाट्य साहित्य में इन दो वर्गों का भेद वास्तविक है काल्पनिक नहीं। इस विभाजन के मुख्यतः भेदक रस एवं भाव हैं। दोनों का क्रमशः सामान्य परिचय प्रस्तुत है।

(क) रूपक—

रूपक रसाश्रित होते हैं, रूपकों के द्वारा प्रेक्षको के अन्तःकरण में स्थित स्थायीभाव को रस-स्थिति में पहुँचा दिया जाता है। इसमें कोई एक रस प्रधान होता है तथा शेष गौण एवं प्रधान के सहायक मात्र। इसमें कथावस्तु, उसके अङ्ग, कथोपकथन तथा शील-संविधान की पुष्ट एवं संश्लिष्ट योजना होती है। रूपक वाक्यार्थाभिनयात्मक होता है।[१]

---

१. भरत एव भारतीय नाट्यकला, सुरेन्द्र नाथ दीक्षित, राजकमल प्रकाशन–दिल्ली।

विभिन्न रूपको में रस, नेता एव वस्तु की योजना भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है, अतः इन तत्वो के आधार पर[१] रूपकों के कम से कम दश भेद होते है। आचार्य धनञ्जय एवं आचार्य विश्वनाथ के अनुसार ये १० भेद इस प्रकार है–(१) नाटक, (२) प्रकरण, (३) भाण, (४) अङ्क या उत्सृष्टाङ्क, (५) व्यायोग, (६) प्रहसन, (७) समवकार, (८) वीथी, (९) डिम, (१०) ईहामृग।[२] भोजराज एवं हेमचन्द्र ने नाटिका एवं सट्टक को भी रूपको में परिगणित करते हुए इनकी सख्या बारह बताई है।[३] रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने सट्टक की जगह प्रकरणिका को रूपकों मे स्वीकार करते हुए १२ भेद बताये हैं। रूपकों के भेदों में नाटक सर्वप्रधान है, इसे सब रूपको का प्रतिनिधि माना गया है तथा उनका मूल बताया गया है।[४]

(ख) उपरूपक—

उपरूपक भावाश्रित होता है। इसमें प्रेक्षको का रति आदि स्थायी-भाव, रस की स्थिति को नहीं पहुँच पाता। यह अपेक्षाकृत भाव विशेष को प्रदर्शित करता है। इसमे भावावेश और गीत नृत्य की प्रधानता रहती है। जीवन की सम्पूर्णता यहाँ अभिव्यक्त नहीं हो पाती। कोई एक रमणीय दृश्य-खण्ड गीत-नृत्य की पृष्ठभूमि में रागात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उपरूपक में नाट्य के सभी अंग शिथिल होते है। यह पदार्थाभिनयात्मक होता है।[५] वस्तु, नेता एवं रस की योजना के आधार पर रूपक की भाँति उपरूपक के भी अनेक भेद होते है।

विवेच्य कृतियाँ सट्टक कोटि की है, जिन्हें सामान्यतः उपरूपक माना गया है। अतः सट्टक सम्बन्धी चर्चा से पूर्व उपरूपक का सविस्तार विवेचन अपेक्षित है।

---

१. 'वस्तुनेतारसस्तेषा भेदकः'–दशरूपक–१/१०

२. (क) 'नाटक सप्रकरण भाणः प्रहसन डिमः।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति।।'–दशरूपक–१/८

(ख) 'नाटकमथ प्रकरण भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।।'–साहित्यदर्पण–६/३

३. शृङ्गारप्रकाश, अध्याय–४

४. दशरूपक–३/१

५. भरत एव भारतीय नाट्यकला, सुरेन्द्र नाथ दीक्षित; राजकमल प्रकाशन दिल्ली

उपरूपकों की उत्पत्ति एवं विकास

(क) उपरूपकों के प्राचीनतम उल्लेख—

उपरूपक शब्द का संभवतः सर्वप्रथम प्रयोग ग्यारहवीं शदी के भोजराज ने अपने ग्रन्थ 'शृङ्गार-प्रकाश' मे किया है तथा उसके बारह भेद भी बताये है।[1] भोजराज के परवर्ती आचार्यो शारदातनय, सागरनन्दी, रामचन्द्र-गुणचन्द्र एव विश्वनाथ ने उपरूपको का न केवल उल्लेख किया है, अपितु उनका विधिवत् विवेचन करते हुए अनेक अन्य भेद भी बताये हैं। इन आचार्यो द्वारा उपरूपक के अन्तर्गत परिगणित नाटिका, त्रोटक, छलिक, हल्लीसक आदि जैसे कुछ नाट्यों का अस्तित्व हमें प्राचीनकाल से ही मिलने लगता है।

नाट्यशास्त्र मे प्रसिद्ध १० रूपको से भिन्न कोटि के तथा नाटक एवं प्रकरण के बन्धयोग से बने हुए सकीर्ण नाट्य-'नाटी' का उल्लेख है।[2] नाटी को उसके लक्षणों के आधार पर नाटिका का नामान्तर माना जा सकता है। कुछ आचार्य नाटी का अर्थ नाटिका एव प्रकरणिका दोनो से लेते है।[3] भरत द्वारा नाटी के उल्लेख के आधार पर यह स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नहीं है, कि—नाटिका का अस्तित्व भरत के पहले से था; तभी भरत को उसका लक्षण करने में प्रवृत्त होना पड़ा। कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् को कुछ आचार्य नाटिका की कोटि का मानने के पक्ष में हैं।[4] यदि यह सही है, तो यह नाटिका की प्राचीनता का प्रबलतम् प्रमाण है। महाराज हर्ष ने सातवी शदी में तीन नाट्यों की रचना की, जिसमें प्रियदर्शिका एवं रत्नावली नाटिका कोटि की है; जो नाटिका लेखन की समृद्ध परम्परा का सकेत देती हैं।

---

१. शृङ्गारप्रकाश, अध्याय—४—अतिम अंश।

२. नाट्यशास्त्र—२०/६०-६१

३. नाटी सज्ञया द्वे काव्ये। एको भेदः प्रख्यातो नाटिकाख्यः। इतरस्त्वप्रख्यातः प्रकरणिकासंज्ञः।—गणरत्नमहोदधि, वर्धमान (११४० ई०)— वी० राघवन द्वारा सूचित, शृङ्गारप्रकाश—पृष्ठ ५३९

४. सस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ ३२८

छलिक की प्राचीनता का जहाँ तक प्रश्न है, छान्दोम्य उपनिषद मे सामवेद की गायन विधि को छालिक्य नाम से कहा गया है। हरिवंश पुराण मे भी छालिक्य का उल्लेख है। निश्चय ही यह छलिक का पूर्व नाम है, जिसके विषय मे हरिवश पुराण मे कहा गया है कि—'छालिक्य का सर्वप्रथम प्रचलन देव, गंधर्व तथा ऋषियों ने किया है। श्रीकृष्ण तथा प्रद्युम्न ने उसे भूलोक मे प्रचलित किया, भूलोक मे छलिक के प्रति अगाध रुचि देखकर नाटककारो ने उसे अपनी कृतियो का विषय बनाया।'[१]

इसी प्रकार हरिवंश पुराण में हल्लीसक की प्राचीनता के उदाहरण भी मिलते है। इसमें इसका अर्थ रास लिया गया है—"हल्लीसकक्रीडनम् एकस्यैव पुसः बहुभिः स्त्रीभिः क्रीडन सैव रासक्रीडा।"[२] कालिदास प्रणीत विक्रमोर्वशीयम् नाट्यकृति को उसके लक्षणो के आधार पर त्रोटक कोटि का स्वीकार किया जाता है।[३] हर्ष ने त्रोटक का लक्षण किया है, जिसे शारदातनय ने हर्ष के नाम से प्रस्तुत किया है। इस प्रकार स्पष्ट होता है, कि—विश्वनाथ आदि आचार्यों ने जिन्हें उपरूपक के रूप में स्वीकार किया है, उनमे से कुछ का अस्तित्व आज से कम से कम दो हजार वर्ष पहले भी था।

(ख) उपरूपकों के विकास में कोहल का योगदान—

अनेक विद्वानों ने कोहल को उपरूपकों का प्रवर्तक माना है। जैसा कि डॉ० सुरेन्द्र नाथ दीक्षित महोदय कहते हैं, कि—"सम्भवतः गीत नृत्य-प्रधान रागात्मक उपरूपकों को शास्त्रीय रूप देने का श्रेय आचार्य कोहल को ही है।"[४] इसीप्रकार डॉ० रामजी पाण्डेय महोदय ने अनुमान लगाया है, कि—'कोहल ने उपरूपकों की कल्पना की थी।'[५] कोहल का काल निर्धारण करना कठिन कार्य

१. भावप्रकाशन, भूमिका, पृष्ठ ५३६-३७

२. भावप्रकाशन, भूमिका, पृष्ठ ५३८

३. सस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ ३२९

४. भरत एव भारतीय नाट्यकला, डॉ० सुरेन्द्र नाथ दीक्षित

५. भारतीय नाट्य सिद्धान्त उद्भव एवं विकास, डॉ० रामजी पाण्डेय, पृष्ठ ४५७

है। वर्तमान मे उपलब्ध 'नाट्य-शास्त्र' के परिशीलन से सहज ही अनुमान किया जा सकता है, कि—कोहल वर्तमान नाट्शास्त्रकार के पूर्ववर्ती है, क्योकि नाट्यशास्त्र मे अनेक बार कोहल का उल्लेख हुआ है। कोहल का कोई ग्रथ सम्प्रति उपलब्ध नही है। 'सगीत-मेरु' नामक एक उपलब्ध कृति को कोहल प्रणीत बताया जाता है, किंतु यह परवर्ती कृति है, ऐसा प्रमाणित होता है।[१] नाट्यशास्त्र मे एक पंक्ति है—"शेषमुत्तरतन्त्रेण कोहलः कथयिष्यति"।[२] इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि—'उत्तरतन्त्र' नामक अपनी कृति में कोहल ने नाट्य सम्बन्धी अपनी मान्यताओ को लिखा होगा, जो आज अनुपलब्ध है। आज कोहल के विचारों से परिचित होने का एकमात्र साधन अभिनव-गुप्त की अभिनव-भारती नामक नाट्यशास्त्र की टीका है। इसी के आधार पर कोहल को उपरूपकों का प्रवर्तक बताया जाता है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि—'उपरूपक' शब्द का प्रयोग कोहल सम्बन्धी किसी भी प्रसग मे नही प्राप्त होता, और न ही अभिनवगुप्त ने इस शब्द का प्रयोग किया है। किन्तु इतना अवश्य है कि जिन कमियों या विशेषताओं के कारण उपरूपकों को रूपक से भिन्न कोटि में रखा गया है, लगभग वैसी ही कमियों या विशेषताओं के कारण कोहल ने उन्हें अन्य नाम—'नृत्यात्मक रागकाव्य'[३] देते हुए दश प्रसिद्ध रूपक भेदों से अलग कोटि में रखा है।

अभिनवगुप्त नृत्यात्मक रागकाव्यो के प्रसङ्ग में अक्सर 'कोहलादि'[४] शब्द का प्रयोग करते हैं। 'तदुक्तं चिरन्तनैः'[५] शब्द का प्रयोग भी इन काव्यो के प्रसङ्ग में उन्होंने किया है। अर्थात् कोहल

---

१. शृङ्गारप्रकाश, वी० राघवन, पादटिप्पड़ी मे सूचित – पृष्ठ – ५३६

२. नाट्यशास्त्र ३४/६५

३. अभिनवभारती, भाग—१, पृष्ठ १८२

४. (क) 'कोहलादिलक्षितत्रोटकसट्टकरासकादिसग्रहः'—अभिनवभारती, भाग—दो, पृष्ठ ४४१

(ख) 'कोहलादिभिर्नाममात्र प्रणीतम्।'—अभिनवभारती, भाग–दो, पृष्ठ ४१०

५. अभिनवभारती, भाग–१, पृष्ठ १८३

के अतिरिक्त भी कुछ आचार्य थे, जिन्होने इन रागकाव्यो पर कोहल के समान ही विचार व्यक्त किया रहा होगा। किन्तु ये दूसरे आचार्य कौन थे? चिरन्तन कौन है? आज इनका निर्णय कर पाना कठिन है। परन्तु इतना अवश्य है, कि—इन काव्यो पर प्रमुखता से विचार कोहल ने ही किया होगा, तभी इनका नाम सर्वप्रथम परिगणित है।

विश्वनाथ शारदातनय आदि परवर्ती नाट्यशास्त्रियों ने, जिन मञ्चनीय स्वरूपों को उपरूपको या अन्यरूपकों मे परिगणित किया है, उनमे से अधिकांश के नाम नृत्यात्मक रागकाव्य के रूप मे अभिनवगुप्त ने कोहल को सन्दर्भित करते हुए, इस प्रकार प्रस्तुत किया है—डोम्बिका, भाण, प्रस्थान, भाणिका, विद्गक, रामाक्रीड, हल्लीसक एवं रासक[१]। इनसे भिन्न स्थल पर त्रोटक, सट्टक, रासक आदि को नाटकीय स्वरूप के रूप मे प्रस्तुत किया है।[२] इन तीनों के साथ आदि शब्द के प्रयोग से यह अनुमान किया जा सकता है कि—इनके अलावे प्रकरणिका, नाटिका आदि का भी कोहल के उल्लेख किया होगा। कोहल ने इन सभी काव्य रूपो पर विस्तार से विचार नही किया है। जैसाकि इस सम्बन्ध में अभिनवगुप्त ने कहा है कि 'तेषा परं कोहलादिभिर्नाममात्रं प्रणीतम्।'[३] अभिनवभारती के परिशीलन से ऐसा लगता है कि यहाँ वर्णित डोम्बिका आदि वस्तुतः नृत्त के विविध रूप हैं, क्योकि अभिनवगुप्त ने इनका उल्लेख नाट्यशास्त्र के नृत्त के प्रसङ्ग[४] मे किया है। इनके भेदों मे कुछ के साथ स्पष्टतः प्रयुक्त नृत्त शब्द इस तथ्य को और भी स्पष्ट कर देता है, जैसा कि हल्लीसक का लक्षण है—

मण्डलेन तु यन्नृत्तं हल्लीसकमिति स्मृतम्।
एकस्तत्र तु नेता स्याद्गोपस्त्रीणां यथा हरिः।।

---

१. अभिनवभारती, भाग-१, पृष्ठ १८२

२. 'उक्तव्याख्याने तु कोहलादिलक्षितत्रोटकसट्टकरासकादिसंग्रहः।'—अभिनवभारती, भाग-२, पृष्ठ ४४१

३. अभिनवभारती, भाग-२, पृष्ठ ४०१

४. 'ये गीतकादौ युज्यन्ते सम्यङ्नृत्तविभागकाः।
देवेन चापि सम्प्रोक्तस्तण्डुस्ताण्डपूर्वकम्।।'—नाट्यशास्त्र-४/२६७

नृत्त के सम्बन्ध मे जैसा कहा है, कि—यह ताल और लय पर आश्रित होता है।[1] राग (लग) एव तदनुसार नृत्त की व्यवस्था से युक्त काव्यरूपता को प्राप्त होने के कारण, इन्हें नृत्तात्मक रागकाव्य इस रूप मे सम्बोधित किया गया होगा। दशरूपक के टीकाकार धनिक ने डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, रासक एवं काव्य को नृत्य के सात भेदों के रूप में उल्लेख किया है।[2]

इस प्रकार यहाँ यह स्वीकार करना भी उचित प्रतीत होता है, कि यद्यपि डोम्बिका आदि रूपकों की भाँति रङ्गमञ्च की वस्तु थे, फिर भी ये कोहल के समय नृत्त रूप में ही विद्यमान रहे होगे। कोहल से पूर्व उनकी कोई परम्परा मात्र रही होगी तथा सर्वप्रथम कोहल ने इन लोकनृत्तो का अध्ययन कर, इन्हें शास्त्रीय रूप प्रदान किया होगा। यही कारण है कि निरन्तर विकास करके अततः उपरूपक के स्तर को प्राप्त कर लेने पर भी ये कोहल के नाम से ही आज भी स्मरण किये जाते है। दूसरी विशेष बात यह है कि—सट्टक, त्रोटक, रासक आदि जैसे कुछ अभिनेय काव्य तो कोहल के समय ही उपरूपक की स्थिति मे रहे होगे, जो दश प्रसिद्ध नाट्य भेदों के सकीर्णन की उपज थे; यही कारण है कि कोहल ने इनका अलग से उल्लेख किया है। 'रासक' शब्द यद्यपि दोनों समूहो मे है, किन्तु प्रथम में यह नृत्त रूप में एवं द्वितीय मे नाट्य रूप मे हो सकता है। इसी द्वितीय वर्ग वाले को बाद में 'नाट्य-रासक' नाम दिया गया होगा, जैसा कि अग्निपुराण में उन दोनों को ही 'रासक' एवं 'नाट्यरासक' नाम देते हुए, अलग-अलग नाट्य रूप में ग्रहण किया गया है।[3]

यहाँ यह अनुमान किया जा सकता है, कि कोहल को ये सभी अभिनेय रूप दश प्रसिद्ध नाट्य रूपो से भिन्न, किन्तु मञ्चनीय रूप में उपलब्ध हुए होंगे। अतः सभी को एक वर्ग में परिगणित कर दिया होगा। जिनमें से कुछ तो उस समय ही उपरूपक की कोटि के योग्य थे तथा कुछ विकास की प्रक्रिया में थे, जो बाद में उपरूपक की कोटि को प्राप्त कर सके।

---

१. 'नृत्तं ताललयाश्रयम्'-दशरूपक-१/९

२. दशरूपक-अवलोकटीका, श्रीनिवास शास्त्री, पृष्ठ ९

३. '...रासक...नाट्यरासक...सप्तविशतिश्चैव तत्।'—अग्निपुराण, पृष्ठ ३६९

(ग) उपरूपकों की विकास प्रक्रिया—

उपरूपको के विकास के दो मार्ग परिलक्षित होते हैं, प्रथम—नृत्त एव नृत्य के मार्ग से विकसित एवं दूसरा—नाट्यो के सकीर्णन से उद्भूत।

(१) नृत्त एवं नृत्य के मार्ग से उपरूपक का विकास—डोम्बिका आदि के विषय मे जैसा अनुमान किया गया है, कि ये कोहल के समय नृत्त रूप में विद्यमान थे। धनिक ने इन्हें नृत्य कहा है। विश्वनाथ आदि के समय इन्हे अन्यरूपक या उपरूपक नाम से सबोधित किया गया है। यहाँ प्रश्न उठता है कि—एक ही स्वरूप को कभी नृत्त, कभी नृत्य और कभी अन्यरूपक अर्थात् नाट्य क्यो कहा गया है? इसके समाधान हेतु तीनो का स्वरूप एव उनके आपसी अन्तर को स्पष्ट करना आवश्यक है।

नृत्त, नृत्य एवं नाट्य में अन्तर—नृत्त के सम्बन्ध मे जैसा कहा जा चुका है कि—यह ताल और लय पर आश्रित होता है। यह नृत्य[1] (अन्यदभावाश्रयम् नृत्यम्) एवं नाट्य[2] (अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्) से भिन्न है। यद्यपि अङ्गों का संचालन एव गतिशीलता तीनों विधाओं मे पायी जाती है। किन्तु कुछ अङ्ग सचालन ऐसा होता है, जो भाव विशेष को अभिव्यक्त नहीं करता, केवल ताल और लय का अनुसरण करता है और इस प्रकार आनन्द साधना का कारण होता है; यही नृत्त है।[3] जहाँ नाट्य रसाश्रित एवं अभिनययुक्त होता है; नृत्य भावाश्रित, अभिनय एवं शास्त्रीय अङ्ग संचालन से युक्त होता है; वही नृत्त में न रस होता है, न भाव, न अभिनय। इसमे ताल एवं लय पर आधारित अङ्ग संचालन मात्र होता है और वह भी शास्त्रीय न होकर लोकसरणि पर आधारित होता है। नृत्त किसी अर्थ की अपेक्षा नहीं करता। यह अभिनय की शोभा मात्र बढ़ाता है।[4]

नृत्य का जहाँ तक प्रश्न है, इसमें किसी भाव का अभिनय करते हुए, अङ्ग संचालन किया

---

१. दशरूपक—१/९

२. दशरूपक—१/७

३. भारतीय नाट्यशास्त्र और रङ्गमञ्च, डॉ० रामसागर त्रिपाठी, पृष्ठ १७९

४. वही, पृष्ठ १७९

जाता है। इसमे पदार्थ का अभिनय किया जाता है। इसमें केवल आङ्गिक अभिनय होता हैं। कभी-कभी आहार्य का समावेश भी कर दिया जाता है, किन्तु वाचिक एव सात्विक अभिनय इसमें नहीं होता। यह केवल देखने की वस्तु है, सुनने के लिए इसमें कुछ नही होता।[१]

नाट्य, नृत्य से आगे की स्थिति है, जिसमें सम्पूर्ण अभिनय होता है। इसमे रस की पूरी सामग्री प्रस्तुत की जाती है। विभाव, अनुभाव, सञ्चारी भाव–सब कुछ अनिवार्य रूप से अभिनीत किया जाता है। इसमे चारो प्रकार के अभिनयो का आश्रय लिया जाता है। अनुकरण की पूर्णता ही उसका प्रमुख लक्षण है तथा रसानुभूति इसका चरम उद्देश्य है।[२]

उपरूपकों के विकास में नृत्त एवं नृत्य की भूमिका—इस तथ्य से अस्वीकार नहीं किया जा सकता, कि जनता अपने वातावरण तथा रुचि के अनुकूल विनोद का साधन स्वभावतः निकाल लेती है। अपने समुदाय के अनुरूप जन-काव्य एवं जन-नाटक का सृजन करने के उदाहरण आज भी मिलते है, जिनसे लक्ष-लक्ष सामान्य-जन दृश्य तथा श्रव्य काव्य का रसास्वादन करते रहते है। वस्तुतः काव्य की समस्त विधाओं का मूलस्रोत साधारण जन-समुदाय ही होता है, भले ही परिष्कृत रूप के प्रणेता मनीषी कवि या लेखक माने जायँ। उपरूपकों का विकास भी जन–समुदाय के बीच हुआ है, किन्तु इसके विकास में नृत्त की भूमिका मील के पत्थर की भाँति है। जैसा अनुमान किया गया है कि डोम्बिका आदि प्रारम्भिक चरण मे नृत्त रूप मे थे, जिनमें लोकसरणि के आधार पर ताल और लय के अनुसार अङ्ग विक्षेप मात्र होता था।

अन्य अनेक प्राचीन आचार्यों द्वारा भी कुछ नये एवं कुछ परम्परागत भेदों का नामोल्लेख किया गया है। जैसे कि—भामह ने प्रबन्ध का वर्गीकरण करते हुए शम्पा, द्विपदी, रासक, स्कन्दक का उल्लेख किया है।[३] दण्डी ने लास्य, छलिक, शम्पा का नाम लिया है।[४] वात्स्यायन ने कामसूत्र में

---

१. भारतीय नाट्यशास्त्र और रङ्गमञ्च, डॉ० रामसागर त्रिपाठी, पृष्ठ १७९

२. वही, पृष्ठ १७९

३. शृङ्गारप्रकाश, वी० राघवन, पृष्ठ ५४५

४. वही, पृष्ठ ५४५

हल्लीसक, नाट्यरासक, प्रेक्षणक का प्रसङ्ग उठाया है।[1] कुमारिल के तन्त्रवार्तिक मे द्विपदी और रासक की परिगणना हुई है।[2] हेमचन्द्र ने अभिनवगुप्त द्वारा परिगणित भेदों के साथ श्रीगदित एव गोष्ठी की गणना करके उन्हे गेय-रागकाव्य बतलाया है।[3] इनके विस्तृत विवेचन के अभाव मे उनके तात्कालिक रूप को स्पष्ट पर पाना कठिन है। सभव है उनमे से कुछ नृत्त एवं कुछ नृत्य के रूप रहे हो। दशवीं शदी के दशरूपक के टीकाकार आचार्य धनिक ने स्पष्टतः नृत्य के सात भेद बताये हुए, डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, रासक एव काव्य की गणना की है।[4] इस सन्दर्भ मे यह कहा जा सकता है, कि—धनिक के समय तक नृत्त के कुछ रूपो ने, भावाश्रयता आदि तत्वो को अपने में समाहित कर, नृत्य की स्थिति को प्राप्त कर लिया था। अब इनके माध्यम से आङ्गिक अभिनय एवं उचित भाव-भङ्गिमा द्वारा भावों को जागरित करने का प्रयास किया जाने लगा था। किन्तु अभी भी ये उपरूपकत्व की स्थिति को नही प्राप्त कर पाये थे, उनके विकास की प्रक्रिया अभी जारी थी।

आचार्य धनिक के परवर्ती काल मे, हल्लीसक आदि के माध्यम से सात्त्विक अभिनय की ओर बढ़ते हुए, उचित विभावानुभाव आदि को संयोजित कर रस को उद्बुद्ध करने का प्रयास किया गया होगा। क्योकि अब उपर्युक्त भेदों को हम अग्निपुराण में रूपकों के अन्तर्गत[5] भावकाशन मे अन्यरूपकों के अन्तर्गत[6] एवं साहित्यदर्पण में उपरूपकों के अन्तर्गत[7] परिगणित पाते हैं।

---

१. शृङ्गारप्रकाश, वी० राघवन, पृष्ठ ५४५

२. वही, पृष्ठ ५४५

३ वही, पृष्ठ ५४५

४. दशरूपक—१/८

५. अग्निपुराण, पृष्ठ ३६५

६. भावप्रकाशन—९/२

७. साहित्यदर्पण—६/४-६

(२) रूपकों के सङ्कीर्णन से उपरूपकों की उत्पत्ति—रसानन्द की दृष्टि से नाटक–प्रकरण जैसे रूपको का विशेष महत्त्व रहा है। किन्तु उनके सर्वाङ्ग पूर्ण विस्तृत कलेवर के कारण, उनके मञ्चन हेतु विस्तृत योजना की अपेक्षा एवं मञ्चन के दौरान पूर्णरसानुभूति हेतु, लम्बे समय का समायोजन आवश्यकता होता है। अतएव ऐसे नाट्य रूपों की आवश्यकता महसूस की गयी होगी, जो अपेक्षाकृत कम समय मे यही आनन्द प्रदान करें, जो लम्बी–चौड़ी योजना एव दीर्घ काल की प्रतीक्षा के बाद नाटकों एवं प्रकरणों से मिलता है। नाटिका, प्रकरणिका, सट्टक, त्रोटक जैसे नाट्य रूप मानव मन की उसी भूख के परिणाम प्रतीत होते हैं। नाटिका का उल्लेख 'नाटी' नाम से सर्वप्रथम भरत के नाट्यशास्त्र मे ही मिलता है, जहाँ उसे स्पष्टतः नाटक एवं प्रकरण के सङ्कीर्णन का परिणाम बताया गया है।[1] भरत द्वारा प्रयुक्त नाटी शब्द से कुछ आचार्य प्रकरणिका[2] एवं कुछ सट्टक[3] का अर्थ भी लेते है। नाटिका, प्रकरणिका, सट्टक आदि के लक्षणों मे विभिन्न रूपकों के अनेक प्रमुख तत्त्वो के दर्शन होते है, जो इनकी संकीर्णन के परिणाम स्वरूप हुई उत्पत्ति को प्रमाणित करते हैं।

इस प्रकार उपरूपको के अन्तर्गत एक वर्ग उन उपरूपकों का है जो प्रसिद्ध नाट्य रूपो से उद्भूत है तथा एक वर्ग उन उपरूपको का है, जो नृत्त एव नृत्य के विकास के परिणाम है। उपरूपकों की उत्पत्ति का यह दो वर्ग, इन दो मार्गों का प्रमुखता से आश्रय लेने के कारण ही किया गया है। वैसे प्रत्येक उपरूपक के विकास में दोनों ही मार्गों का सम्मिलित सहयोग रहा है। जैसाकि नाटिका आदि में नृत्य जैसे दूसरे मार्ग के तत्त्व को प्रमुखता प्राप्त है, जबकि हल्लीसक आदि में हम वस्तु, नेता, सन्धि आदि रूपकों के तत्त्वों की योजना भी पाते हैं, जो इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं।

---

१. 'अनयोश्च बन्धयोगादेको भेदः प्रयोक्तृभिर्ज्ञेयः।

प्रख्यातस्त्वितरो वा नाटीसंज्ञाश्रिते काव्ये।।'—नाट्यशास्त्र २०/६०-६१

२. गणरत्नमहोदधि, वर्धमान (११४० ई०)—वी० राघवन द्वारा सूचित, शृङ्गारप्रकाश, पृष्ठ ५३९

३. शृङ्गारप्रकाश, वी० राघवन, पृष्ठ ५४०

उपरूपकों का स्वरूप

उपरूपको को कुछ आचार्यों ने नृत्य माना है, क्योकि इनका मुख्य उद्देश्य दर्शकों के मन मे उचित भाव-भंगिमा द्वारा भावो को जागरित करना है, किन्तु ऐसा नही प्रतीत होता कि नृत्य ही उपरूपक हैं, अन्यथा ये पर्यायवाची शब्द के रूप मे व्यवहृत होते । शारदातनय ने इनके २० भेद बताने के बाद उल्लिखित किया, कि इनमें से श्रीगदित, रासक, भाण, भाणी, प्रस्थानक, नाट्य-रासक एव काव्य ये सात कुछ विद्वानों के अनुसार नृत्य के भेद है और कुछ लोग सभी को नृत्यात्मक कहते है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि नृत्य एवं उपरूपक दोनों में भेद है। नृत्य नाट्य के उपकारक होते है, ऐसे मे यह अलग बात है कि उपरूपक में नृत्य की बहुलता होती है, क्योंकि अधिकाश उपरूपको की उत्पत्ति नृत्यो से हुई है। इसीलिए इन उपरूपको को नृत्यात्मक कहा गया है, जो सर्वथा उचित भी है।

उपरूपको को यह नाम दिये जाने से स्पष्ट है, कि उन्हे द्वितीय श्रेणी का ही माना गया है तो क्या? परन्तु नाट्य कोटि मे ही स्वीकार किया गया है। इन्हें हम रामचन्द्र–गुणचन्द्र द्वारा 'अन्य रूपक' नाम दिये हुए तथा अग्निपुराणकार द्वारा रूपकों मे परिगणित किये हुए तक देख चुके हैं। इस प्रकार उपरूपक में भी अवस्था का कुछ सीमा तक अनुकरण होता है, यह स्वीकार करना चाहिए। नृत्य में जैसा सर्वविदित है कि सब कुछ दर्शनीय रहता है, श्रवणीय कुछ भी नहीं। जबकि नाट्य मे दृश्य के साथ-साथ श्रवणीय भी बहुत कुछ होता है। उपरूपकों में भी यह विशेषतायें पायी जाती हैं।

यद्यपि यह सही है कि इनमें उचित भाव-भङ्गिमा द्वारा भावों को उद्बुद्ध किया जाता है। किन्तु इसमें नृत्य की भाँति मात्र आङ्गिक अभिनय ही नही होता, अपितु वाचिक एवं आहार्य अभिनय भी होता है, साथ ही इनमे सात्त्विक अभिनय एवं रस बोध के प्रति आग्रह भी देखा जा सकता है। नाटिका, सट्टक आदि जैसे कुछ उपरूपक तो केवल भोवोद्बोधन ही नहीं, अपितु बहुत हद तक रसानुभूति कराने में भी समर्थ होते हैं। इस प्रकार उपरूपक को नृत्य एवं रूपक के बीच की कोटि का मानना उचित प्रतीत होता है। लेकिन इनमें उपकारक के रूप में नृत्य की प्रमुख भूमिका होती है, यह अवश्य स्वीकार करना होगा।

उपरूपकों के भेद

उपरूपकों की संख्या के प्रश्न पर आचार्यों मे मतैक्य नहीं है। भोजराज ने बारह उपरूपक बताये है। वह परवर्ती विश्वनाथ आदि आचार्यों द्वारा बताये गये सट्टक एवं नाटिका को उपरूपको के अन्तर्गत नही रखते।[1] रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने नाट्यदर्पण में अन्य रूपक नाम से उनकी सख्या १३ बताई है, जो इस प्रकार है—सट्टक, श्रीगदित, दुर्मल्लिका, गोष्ठी, हल्लीस, प्रेक्षणक, रासक, नाट्य-रासक, काव्य, भाण और भाणिका।[2] साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने उपरूपकों के १८ भेद बताये है, जो इस प्रकार हैं—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्य-रासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खणक, रासक, सलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीस एव भाणिका।[3] आचार्य शारदातनय ने इनके २० भेद बताये है। त्रोटक, नाटिका, गोष्ठी, संलापक, शिल्पक, डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणिका, प्रस्थान, काव्य, प्रेङ्खणक, नाट्रासक, लासक (रासक), उल्लोप्यक, हल्लीस, दुर्मल्लिका, कल्पवल्ली, मल्लिका एवं परिजात।[4]

इन दोनो सूचियो मे १५ नाम ही एक से हैं। विश्वनाथ के तीन भेद सट्टक, विलासिका, प्रकरणिका नये है। शारदातनय के ५ भेद—डोम्बी, भाण, मल्लिका, कल्पवल्ली एवं पारिजात नये है। इस प्रकार दोनों आचार्यों की सूचियों को मिलाने पर उपरूपक के कुल २३ भेद हो जाते हैं। शास्त्रीय ग्रन्थो में उपरूपकों की न्यूनाधिक संख्या इस बात का प्रमाण है, कि—इस विधा पर सामाजिक परिवेश की छाया बहुत अधिक है। जैसा समय आता गया, नये-नये प्रकारों की परिकल्पना की जाती रही और कभी-कभी पुरानी विधाओ का लोप होता गया।[5]

---

१. शृङ्गारप्रकाश, वी० राघवन

२. नाट्यदर्पण, पृष्ठ १९०

३. साहित्यदर्पण—६/४-६

४. भावप्रकाशन—९/२

५. भारतीय नाट्यशास्त्र और रङ्गमञ्च, डॉ० रामसागर त्रिपाठी, पृष्ठ १८७

सट्टक का परिचय एवं लक्षण

शोधार्थ गृहीत कृतियाँ 'कर्पूरमञ्जरी' एव 'भृङ्गारमञ्जरी' को आचार्यों ने दृश्य काव्य के सट्टक नामक भेद के अन्तर्गत स्वीकार किया है। अतएव सट्टक के विषय में विशेष रूप से विचार करना अपेक्षित हो जाता है।

सट्टक का उद्भव—

सट्टक विधा का प्राचीनतम उपलब्ध उदाहरण राजशेखर-रचित कर्पूरमञ्जरी है, सौभाग्य से आज सर्वप्रथम कर्पूरमञ्जरी में ही सट्टक का लक्षण प्राप्त होता है।[१] वैसे अभिनवगुप्त ने कोहल के नाम से सट्टक का उल्लेख किया है,[२] तथा राजशेखर कृत कर्पूरमञ्जरी को इसका उदाहरण माना है।[३] राजशेखर के पूर्ववर्ती काल में साडिक या साटक शब्द का प्रयोग नाट्य अभिनय के लिए मिलता है, किन्तु इसका स्वरूप ज्ञात नहीं है।[४] ई०पू० २०० के भरहुत के स्तूप के लेख मे या साडक साटक शब्द मिलता है, जो सट्टक का पूर्व रूप प्रतीत होता है।[५]

यद्यपि व्याकरणीक रूप से 'सट्टकम्' पद चुरादिगणीय, देने या लेने या रहने या क्षति पहुँचाने अथवा बलवान होने के अर्थ वाली सट्ट धातु से ण्वुल प्रत्यय करके निष्पन्न हुआ है।[६] किन्तु यहाँ सट्टक शब्द को व्याकरण की दृष्टि से सिद्ध करने की अपेक्षा उसके भाषागत विकास के आधार पर, इस पर विचार करना अधिक उचित होगा, क्योंकि उपरूपको के लोक में प्रचलित नृत्त से

१. कर्पूरमञ्जरी—१/६

२. सस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५८१

३. अभिनवभारती, भाग–२, पृष्ठ ५३६

४. नाट्यकला प्राच्य एवं पाश्चात्य, डॉ० सुदर्शन मिश्र, पृष्ठ ११७

५. (क) प्राकृत भाषा एव साहित्य का इतिहास, एन०सी० शास्त्री, पृष्ठ ४१०

(ख) राजशेखर्स कर्पूरमञ्जरी, स्टीन कोनो, पृष्ठ १९५

६. सस्कृत–हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृष्ठ १०६१

उद्भूत होने की संभावना अधिक है तथा शास्त्रीय या नाट्यशास्त्रीय नियमो के आधार पर गढ़कर बने होने की सभावना अत्यल्प। लगभग ऐसा ही विचार रखते हुए डॉ० ए०एन० उपाध्ये महोदय ने 'चन्द्रलेहा' सट्टक की प्रस्तावना[1] मे लिखा है कि—"सभवतः यह (सट्टक) द्रविड़ भाषा का शब्द है, 'क' प्रत्यय को हटा देने पर इसमें दो शब्द रह जाते है–'स' और 'अट्ट' या 'आट्ट'। सभवतः यह पहले किसी लुप्त विशेषण का विशेष्य था। द्रविड़ शब्द आट्ट या आट्टम् का अर्थ नृत्य या अभिनय होता है, जो मूल धातु अड्डु या आडु से बना है, जिसका अर्थ नाचना या हावभाव दिखाना होता है। यदि मूलशब्द नाचना होगा तब लुप्त शब्द रूपक होगा। अतएव नृत्ययुक्त नाटकीय प्रदर्शन को सट्टक कहा जायेगा।"

क्लिष्ट कल्पना से युक्त इस मत को स्वीकार करने में कई आपत्तियाँ हो सकती है। प्रथम यह कि अगर नृत्ययुक्त नाटकीय प्रदर्शन होने के कारण उसे सट्टक कहा गया है, तो सभी उपरूपक नृत्ययुक्त नाटकीय प्रदर्शन ही है, इस प्रकार तो सभी सट्टक कहलाने के अधिकारी थे, तो फिर अन्य उपरूपको से इसकी भिन्नता क्या रही? इस आधार पर सट्टक शब्द उपरूपक का पर्याय मात्र हो सकता था, किन्तु ऐसा बिल्कुल नही है। दूसरी मुख्य आपत्ति यह है कि इसमें उपसर्ग की भाँति जुड़े 'स' एवं प्रत्यय की भाँति जुड़े 'क' का कोई प्रयोजन नही समझ मे आता। इसमे किसी प्रकार काट छाँट कर के, नृत्य अर्थ देने वाले द्रविड़ शब्द अट्ट को प्राप्त करने का प्रयास मात्र दिखाई पड़ता है। तीसरी बात यह कि सट्टक को द्रविड़ शब्द आट्ट से जोड़ने का प्रयास किया गया है, जबकि सट्टक के प्राकृत साहित्य की विधा होने के कारण इसे प्राकृत भाषा से ही सम्बद्ध होना चाहिए, न कि द्रविड़ या अन्य किसी भाषा से।

उपर्युक्त मत के विपरीत सट्टक शब्द के साटक या साडक शब्द का विकसलित रूप होने की सम्भावना अधिक प्रतीत होती है, जैसा कहा गया है कि यह शब्द भरहुत के स्तूप मे मिलता है।

---

1. शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की भूमिका में डॉ० जगन्नाथ जोशी द्वारा सूचित

जैसी प्रसिद्धि है कि हिन्दी भाषा के साड़ी शब्द की व्युत्पत्ति प्राकृत भाषा के साडिआ[1] शब्द से हुई है, जिसका संस्कृत रूप शाटिका है।

शाटिका एवं साटक शब्द में पर्याप्त ध्वनि साम्य है, यह सम्भव है कि शाटिका शब्द साटक शब्द से ही निष्पन्न हो। साटक शब्द एव सट्टक शब्द तो निश्चय ही एक ही है। जिस प्रकार अज्ज शब्द से आज, अग्ग शब्द से आग, पञ्च से पाँच बनता है, उसी प्रकार सट्टक से साटक बनता है। अतः इसकी सम्भावना है कि साटक या सट्टक शब्द आरम्भिक काल में वस्त्र विशेष के लिए प्रयुक्त होता होगा, जो नारी या नर द्वारा धारण किया जाता रहा होगा। अतएव यह सम्भव है कि, साटक वस्त्र की यवनिका बनाकर अभिनीत नृत्य या नाट्य के लिए साटक या सट्टक शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हो गया हो; जो आगे चलकर उस नाट्य भेद के लिए रूढ़ हो गया हो, जिसमे साटक का प्रयोग यवनिका के लिए होता हो।

जैसा कहा गया है, कि उपरूपक जन सामान्य मे प्रचलित परम्पराओं से उद्भूत हैं। सट्टक की प्राकृत भाषा इस मन्तव्य को और पुष्ट करती है, जो कि जन सामान्य की भाषा रही है। जन सामान्य अपने पास आसानी से उपलब्ध सामग्रियों का ही प्रयोग नृत्य, नाट्य आदि में करते रहे होगे। ऐसे सन्दर्भ आज भी मिलते है। अतः सट्टक के सन्दर्भ मे यह सम्भव है कि जन सामान्य किसी नाट्य गृह की अपेक्षा न करते हुए, जहाँ कहीं भी अपने पास आसानी से उपलब्ध हो जाने वाले साटक वस्त्र की यवनिका बनाकर, अपनी लोक भाषा में, नाट्य का अभिनय करते होंगे। यहीं से यह परम्परा साटक वाले नाट्य के रूप में प्रसिद्ध होकर सट्टक इस नाम को प्राप्त कर सकती होगी।

सट्टक में अङ्क के लिए जवनिकान्तर शब्द का प्रयोग इस अनुमान को पुष्ट करता है, कि इसमें

---

१. साडिआ शब्द का प्रयोग स्वयं राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी में साड़ी के अर्थ में किया है—

विचक्षणा—'तहि गच्छ जहिं में पढमा साडिआ गदा।

(तत्र गच्छ यत्र मे प्रथमा शाटिका गता)'—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २४

यवनिका का विशेष महत्त्व रहा होगा, उसमें यह आकर्षण उसकी विशेष बनावट के कारण ही सभव है; जो साड़ी आदि जैसें सामान्य वस्त्र से निर्मित रही होगी। इस सम्बन्ध मे डॉ० सुरेन्द्र नाथ दीक्षित महोदय ने भी अनुमान किया है, कि यवनिका सट्टक वस्त्र की बनी होगी, इसलिए यह सट्टक नाम से प्रसिद्ध हुई होगी।[1] यह भी सभव है कि आसानी से पर्याप्त मात्रा मे साटक (साड़ी) वस्त्र मिल जाने के कारण रोचकता के लिए क्रमशः लगी हुई एकाधिक यवनिकाये बनायी जाती हो, जिनकी संख्या कविकृत सट्टक की जवनिकान्तर सख्या के बराबर निश्चित की जाती हो तथा जिन्हें एक-एक करने हर जवनिकान्तर के प्रारम्भ मे हटाया जाता हो। तभी एक यवनिका से दूसरी यवनिका के बीच प्रदर्शित भाग के लिए जवनिकान्तर शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हुआ होगा।

सट्टक का लक्षण—

आज सर्वप्रथम कर्पूरमञ्जरी मे सट्टक का लक्षण उपलब्ध होता है। जिसके अनुसार जिस प्रबन्ध मे नाटिकाओ का पूरा-पूरा अनुकरण हो, केवल प्रवेशक और विष्कम्भक न पाये जायँ, उसे सट्टक कहते है।[2] सट्टक की भाषा का जहाँ तक प्रश्न है, यद्यपि राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी को प्राकृत भाषा में निबद्ध किया है, लेकिन वे इसलिए उसे प्राकृत भाषा में नहीं लिखते कि सट्टक को प्राकृत मे लिखा जाना चाहिए, अपितु प्राकृत का आश्रय उन्होंने इसलिए लिया है कि, यह संस्कृत की अपेक्षा मृदुलतर है।[3] किन्तु अभिनवगुप्त ने कर्पूरमञ्जरी के प्राकृत भाषा में निबद्ध होने को आधार मानते हुए सट्टक की भाषा को प्राकृत होना स्वीकार किया है—

---

१. भरत एव भारतीय नाट्यकला, डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित

२. 'सो सट्टओ त्ति भणई दूर जो णाडिआइ अणुहरइ।
कि उण एत्थ पबेस अबिक्कभाई ण केवलं हीति।।
(तत् सट्टकमिति भण्यते दूरं यो नाटिका अनुहरति।
कि पुनरत्र प्रवेशकविष्कम्भकौ न केवल भवतः।।)'—कर्पूरमञ्जरी—१/६

३. कर्पूरमञ्जरी—१/७—१/८

तथाहि शृङ्गाररसे सातिशयोपयोगिनि(नी) प्राकृतभाषेति।

सट्टककर्पूरमञ्जर्याख्यः राजशेखरेण तन्मात्र एव निबद्धः।।[१]

भोजराज ने यद्यपि सट्टक के सम्बन्ध मे कुछ अधिक ही लिखा, किन्तु भाषा के सम्बन्ध मे उनकी परिभाषा अस्पष्ट है। सट्टक एक भाषा मे हो इतना तो स्पष्ट है, किन्तु यह भाषा प्राकृत, सस्कृत से भिन्न अपभ्रंश हो या प्राकृत यह स्पष्ट नही है—

विष्कम्भक प्रवेशकरहितो यस्त्वेकभाषयाभवति।

अप्राकृत(प्राकृतया) संस्कृतया(?) स सट्टको नाटिका प्रतिभः।।[२]

भोजराज-रचित परिभाषा में 'अप्राकृतसस्कृतया' पद को नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने यथावत स्वीकार किया है।[३] हेमचन्द्र तथा वाग्भट्ट ने भी 'अप्राकृतसस्कृतया' पद को यथावत प्रस्तुत किया है। इससे सट्टक की परिभाषा सम्बन्धी समस्या का समाधान नहीं हो पाता। अप्राकृतसंस्कृतया के आधार पर चिदम्बरम चक्रवर्ती महोदय ने कल्पना की है कि—अपभ्रन्श मे सट्टक की रचना होती है।[४]

आचार्य शारदातनय ने सट्टक की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए, प्रकृष्टप्राकृतमयी शब्द का प्रयोग कर भाषा सम्बन्धी संदेह को दूर करने का प्रयास किया है।[५] इसके इस विवेचन से स्पष्ट है कि सट्टक की भाषा के सम्बन्ध मे अस्पष्टता उनके पूर्व-काल तक थी, किन्तु उनके समय तक स्पष्ट हो चुकी थी।

---

१. अभिनवभारती, भाग–२, पृष्ठ ५

२. शृङ्गारप्रकाश, पृष्ठ– ५४०-४१, वी० राघवन द्वारा सशोधित।

३. 'विष्कम्भकप्रवेशकरहितो यस्त्वेकभाषया भवति।
अप्राकृतसंस्कृतया स सट्टको नाटिका।।'—नाट्यदर्पण, भाग–१, चतुर्थ विवेक, पृष्ठ २१३

४. इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटर्ली, भाग–७, पृष्ठ १७१-७२

५. '...प्रकृष्टप्राकृतमयी सट्टकं नामतो भवेत'—भावप्रकाशन–८/१५८

आचार्य सागरनन्दी ने 'नाट्लक्षणरत्नकोश' में सट्टक की सविस्तार चर्चा करते हुए कहा है—कि "इसका स्वरूप नाटिका के अनुकरण पर निर्मित किया जाता है। इसमें कौशिकी तथा भारती वृत्ति की प्रधानता रहती है। इसमे रौद्र, वीर, भयानक तथा वीत्स रस एवं अवमर्श सन्धि नहीं होती। जब निकान्तर द्वारा मध्यान्तर होते है। इसके भाषा शौरसेनी, प्राच्या या महाराष्ट्री प्राकृत होती है। नायक राजा होता है, जो स्त्री पात्रो के समान प्राकृत भाषा का व्यवहार करता है, तथा कार्यवश सस्कृत भाषा का भी व्यवहार किया जा सकता है। किन्तु भाषा को प्राकृत रखना ही अधिक अच्छा है; क्योकि यह इसके स्वरूप की प्रंमुख विशेषता है।[1] भावप्रकाशनकार शारदातनय इसके उपर्युक्त लक्षणों के साथ–साथ विष्कम्भक एव प्रवेशक को अस्वीकार करते है।[2] आचार्य विश्वनाथ इसमे नाटिका के सभी तत्वो के साथ-साथ अद्‌भुत रस की योजना आवश्यक मानते है।[3] अलकारसग्रहकार अमृतानन्दयोगी इसमें शृङ्गार एवं अद्‌भुत रस आवश्यक मानते हैं।

सट्टक के लक्षण के प्रसङ्ग में प्रायः सभी आचार्यों ने इसे नाटिकावत् कहा है। अतएव उसके लक्षण का अवलोकन अपेक्षित है। भरत का अनुसार—"नाट्य एवं प्रकरण के बन्धयोग से रूपक का एक अन्य रूप प्राप्त होता है, जिसे नाटी (नाटिका) कहते है।" इसका इतिवृत्त उत्पाद्य होता है। इसमें नायक सम्राट होता है, स्त्री पात्रों की प्रधानता होती है, चार अंक होता हैं। यह ललित अभिनय तथा अच्छी प्रकार से विहित अर्थ से युक्त होती है। अनेक प्रकार के गीत, पाठ तथा रति

---

१. अथ सट्टकम्। तच्च नाटिकाप्रतिरूपक, कैशिकीभारतीप्रधान रौद्रवीरभयानकवीभत्समवमर्शशून्यम्। यथा कर्पूरमञ्जरी। अन्तर्यवनिकान्तम्। यथाङ्के यवनिकाच्छेदा भवन्ति तथात्रापि। शौरसेनीप्राच्यामहाराष्ट्रीयुक्तम् स्त्रीवद् राज्ञोऽपि प्राकृतपाठः कार्यात् सस्कृतपाठः। तत्र रूपकमेवेद कार्यमिति राज्ञापि प्राकृतपाठः कर्तव्यः।' —नाट्यलक्षणरत्नकोशः, पृष्ठ ३०४

२. 'सैव प्रवेशकेनापि विष्कम्भेन विनाकृता'—भावप्रकाशन–८/१५८

३. 'सट्टक प्राकृतशेषपाठ्य स्यादप्रवेशकम्।
न च विष्कम्भोऽप्यत्र प्रचुरश्चाद्भुतो रसः।।
अङ्का जवनिकाख्याः स्युः स्यादन्यन्नाटिकासमम्।'—साहित्यदर्पण—६/२७६–२७७

सभोग इत्यादि इसकी मुख्य विशेषताएँ है। नाटिका राजकीय व्यवहारो से युक्त होती है, तथा इसमे क्रोध, प्रसादन वर्णित होते है। नायक, उसकी देवी, दूती तथा नौकरानियाँ इसमे मुख्य पात्र होते है। इसमे अल्पविमर्शयुक्त अथवा विमर्शशून्य सन्धियाँ होती है।[1] इस प्रकार कहा जा सकता है कि सट्टक मे ये सभी विशेषताएँ होनी चाहिए।

सट्टक एवं नाटिका के वस्तु विधान मे एक प्रमुख अन्तर विष्कम्भक एवं प्रवेशक को लेकर है। सट्टक मे इसका निषेध एव नाटिका मे इसका विधान होता है। सट्टक में इनके निषेध का प्रश्न सम्प्रति विचारणीय है।

विष्कम्भक एव प्रवेशक अर्थोपक्षेपक है, जिनके माध्यम से भूत एव भविष्य के कथा के नीरस या अनुचित अश को सूचित किया जाता है। सट्टक में इनके निषेध के प्रश्न पर यह अनुमान किया जा सकता है कि—चूँकि सट्टक नाट्य विधा जन सामान्य के अधिक निकट रही है, और जन-सामान्य के लिए कोई बात कह कर बताने की अपेक्षा, उन घटनाओ को जिस रूप में घटी है या घटने वाली है, मच पर प्रस्तुत करके दिखाना, उनके लिए ज्यादे आह्लादकारक होता। संभवतः इसीलिए सट्टक मे प्रवेशक एवं विष्कम्भक का विधान न करने के लिए कहा गया है। यहाँ यह भी सभावना की जा सकती है, कि दो जवनिकान्तरों के बीच कथा को नीरसतापूर्वक सूचित करने से भोले सामान्य दर्शको के उद्बुद्ध भाव या रस में विघ्न होता, जो कवि को स्वीकार्य नहीं था, यही कारण है कि इसकी भाषा तक को प्राकृत ही रखा गया है—ताकि जन-सामान्य को आसानी से बोधगम्य हो।

इस प्रकार सट्टक के लक्षणों के अव्याख्यायित अंश के पर्यालोचनोपरान्त कहा जा सकता है कि—'सट्टक की कथावस्तु कविकल्पित होती है। इसका नायक प्रख्यात वंश का राजा होता है, जो धीरललित होता है। इसका अङ्गीरस शृङ्गार होता है। इसमें स्त्री पात्रों की प्रधानता होती है तथा

---

१. (क) साहित्यदर्पण—६/२७०-२७२

(ख) दशरूपक—३/४३-४८

दो नायिकाये होती है। इसमे कैशिकी वृत्ति के चारों अग प्रयुक्त होते है तथा तदुपयुक्त चार जवनिकान्तरो की योजना होती है। प्रवेशक एवं विष्कम्भक का प्रयोग इसमे नही होता। रौद्र, वीर, भयानक एव वीभत्स रस इसमे नही होते जबकि अद्‌भुत रस अनिवार्यतः होता है। अवमर्श सन्धि इसमे या तो होती नही, यदि होती भी है तो अत्यल्प। और इसकी सर्वप्रमुख विशेषता है कि इसकी भाषा प्राकृत होती है।'

सट्टक : रूपक अथवा उपरूपक

सट्टक को भोजराज ने रूपक के अन्तर्गत परिगणित किया है, तो विश्वनाथ जैसे आचार्यों ने उपरूपक माना है। वस्तुतः यह किस कोटि का है—सम्प्रति यह विचारणीय है।

रूपक एव उपरूपक के सम्बन्ध मे जैसा कहा जा चुका है, कि रूपक रसाश्रित एव उपरूपक भावाश्रित होता है। सामान्य रूप से रस को भाव का ही एक रूप माना जाता है, क्योकि यह भी आस्वादित होता है।[1] किन्तु सूक्ष्म रूप से विचार करने पर रस से इसकी भिन्नता स्पष्ट हो जाती है। रस जहाँ आनन्द की चरमस्थिति स्वरूप है, वहीं भाव अपेक्षाकृत अवरकोटि की आनन्दानुभूति कराने वाला होता है। किसी कृति में भाव एवं रस के निर्णय का जहाँ तक प्रश्न है, यह अत्यन्त कठिन कार्य है। क्योकि रसानुभूति के स्तर पर दोनों के मध्य सीमा रेखा खींचने का कार्य अत्यन्त सूक्ष्म परीक्षण द्वारा ही सम्भव है। यह आनन्दानुभूति व्यक्ति की प्रवृति, सहृदयता आदि पर भी निर्भर रहती है। एक ही कार्य विशेष में अलग-अलग व्यक्ति के आनन्द की सीमा अलग-अलग हो सकती है। जैसे एक खिलौने से खेलने मे बालक को जितना आनन्द आ सकता है, उतना किसी प्रौढ़ को नहीं। उसी प्रकार किसी काव्यकृति में एक व्यक्ति को जितना आनन्द आयेगा, कोई आवश्यक नहीं कि दूसरे को भी उतना ही आनन्द आये। इस प्रकार आनन्दानुभूति के स्तर से भाव एवं रस का निर्णय कर पाना कठिन है। वैसे उनकी विभावादि सामग्रियों को

---

१. साहित्यदर्पण, व्याख्याकार-शालिग्राम शास्त्री, पृष्ठ १२४

देखकर मोटा अनुमान अवश्य किया जा सकता है, कि भाव का उद्बोधन मात्र होगा अथवा रस की अनुभूति होगी। किन्तु यह भी तो सभव है, कि उपरूपक विशेष में रसानुभूति के योग्य विभावादि का संयोजन हो। अतः उपरूपक होकर भी वह रसानुभूति मे समर्थ होगा। जैसाकि विक्रमोर्वशीयम् नामक त्रोटक मे रसानुभूति के हेतुओ का पूर्णतः संयोजन मिलता है, फिर भी वह त्रोटक कोटि का उपरूपक है। अतएव यही कहना सही है कि—भावाश्रयता एव रसाश्रयता ही उपरूपक एव रूपक का निर्धारक नहीं है। हाँ यह अवश्य है कि अधिकतर उपरूपक भावाश्रित ही पाये जाते हैं, किन्तु कुछ रसाश्रित भी हो सकते है, इससे इन्कार नही किया जा सकता।

पदार्थाभिनय एव वाक्यार्थाभिनय की जहाँ तक बात है, इनसे तात्पर्य मात्र आङ्गिक एवं सात्त्विक अभिनय से है, क्योकि पद के अनुसार आहार्य एव वाचिक अभिनय का कोई प्रश्न ही नही उठता। नाट्यकार द्वारा अपनी कृति मे मात्र वाचिक अभिनय के विषय मे ही कुछ निर्देश किया गया होता है। आहार्य, आङ्गिक एवं सात्त्विक अभिनय करने का उत्तरदायित्व तो पूरी तरह नट पर नाट्यकारों ने छोड़ रखा है, इसके लिए संस्कृत साहित्य में कोई भी निर्देश संभवतः प्राप्त नही होता। फिर किसी रूपक या उपरूपक को देखकर यह कैसे कहा जा सकता है कि, उसमे पदार्थाभिनय की बात है, अथवा वाक्यार्थाभिनय की। यहाँ भी इन अभिनयों के लिए प्रस्तुत सामग्री के आधार पर ही मोटा अनुमान किया जा सकता है। जिन उपरूपकों में नृत्यों का समायोजन कवि द्वारा किया गया हो, वहीं पदार्थाभिनय संभव है। वैसे प्रायः उपरूपकों में नृत्यों की योजना करने की परम्परा रही है। लेकिन सामान्य रूप से नृत्य का समावेश होना एवं उसकी प्रमुखता होना दोनों ही अलग-अलग बातें हैं। रूपकों में भी नृत्य के प्रसंग दिख जाते हैं। इसी प्रकार उपरूपको में भी दिखते हैं। लेकिन सभी उपरूपकों में उसकी प्रधानता ही है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। निश्चय ही जो उपरूपक नृत्य मार्ग से उपरूपक की स्थिति को प्राप्त किये हैं उनमें नृत्य की प्रधानता

होती है; लेकिन जो रूपको के संकीर्णन के परिणाम हैं, उनमें भी नृत्य की प्रमुखता अनिवार्य रूप से होती है—ऐसा नही कहा जा सकता। अतएव यहाँ यही कहना उचित है कि—उपरूपको मे प्रायः नृत्य की प्रधानता होती है; परन्तु कुछ में उनके सामान्य रूप भी हो सकते है।

वास्तव में उपरूपकों एव रूपकों के विभाजन का प्रमुख आधार क्या है? इसके उत्तर मे यहाँ यही कहना उचित है, कि ये उपर्युक्त दोनो बिन्दु तो इसके निर्धारक हैं ही, क्योकि जहाँ ये दोनो हैं वहाँ तो उपरूपक अवश्य है; जैसाकि अधिकांश उपरूपकों में पाया ही जाता है। लेकिन जहाँ ये दोनो बिन्दु निर्णय नही कर पा रहे हो वहाँ तीसरे का आधार लिया जा सकता है, और वह है सकीर्णता का होना। अर्थात् ऐसे नाट्यों में दश प्रसिद्ध रूपक भेदो की परिशुद्धता को देखा जाना चाहिए। अगर किसी नाट्य कृति में ऐसी परिशुद्धता नही है एवं एकाधिक रूपकों के तत्त्वों का समिश्रण मिलता है, तो वह निश्चय ही उन कोटियो से च्युत है और ऐसा नाट्य उपरूपक ही हो सकता है।

सट्टक का जहाँ तक प्रश्न है, उसमे भावाश्रयता हो अथवा न हो, नृत्य का समायोजन हो अथवा न हो; किन्तु इतना अवश्य है कि उसमें एकाधिक रूपकों का सकीर्णन मिलता है। अतएव च्युत कोटि का होने से सट्टक उपरूपक कोटि में ही परिगणित होने योग्य है।

सट्टक साहित्य की परम्परा

राजशेखर-विरचित कर्पूरमञ्जरी उपलब्ध सट्टकों में सबसे प्राचीन है। यद्यपि इससे पूर्ववर्ती किसी सट्टक का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता, फिर भी राजशेखर को इस विधा का प्रवर्तक नहीं मान सकते। क्योंकि राजशेखर अन्य प्रसङ्गों में अपने विषय में जिस प्रकार की गर्वोक्तियाँ करते हैं उससे यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि—यदि सट्टक विधा के आदि प्रवर्तक राजशेखर होते, तो निश्चित ही इसके प्रणेता का श्रेय अपने आप को देने से नहीं चूकते। दूसरी विशेष बात

यह कि सट्टक किसे कहते है? इस प्रश्न के उत्तर मे उन्होने विद्वानों ने कहा है,[1] यह कहकर सट्टक का लक्षण प्रस्तुत किया है। अतः निश्चय ही राजशेखर से पूर्व सट्टक के लेखन एव मञ्चन की परम्परा रही होगी। जैसाकि अभिनव-गुप्त ने कोहल को सट्टक से परिचित बताया भी है। ई०पू० २०० के भरहुत के शिलालेख मे प्रयुक्त सादिक, सट्टिक, साडक या साटक शब्द सट्टक का पूर्ववर्ती ज्ञात होता।[2]

यह स्वीकार कर लेने पर कि राजशेखर से पूर्व सट्टक लेखन की परम्परा थी, तब भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यह परम्परा ज्यादे प्रचलित नही रही होगी। यही कारण है कि राजशेखर को अपने सट्टक की रचना के साथ-साथ उसका लक्षण भी प्रस्तुत करना पड़ा, जिससे जो सट्टक से अपरिचित हो वे भी इस सट्टक के विषय मे जान जाएँ। यह भी स्पष्ट है कि सट्टक का स्वरूप भी राजशेखर के समय पूरी तरह निर्धारित नही रहा होगा, तभी राजशेखर उसकी भाषा के सम्बन्ध मे स्वतन्त्र दिखते हैं। इन्होने प्राकृत में सट्टक की रचना इसलिए नही की, कि सट्टक प्राकृत मे लिखा जाता है। अपितु अधिकाधिक सरसता के लिए सस्कृत की अपेक्षा प्राकृत का इन्होने आश्रय लिया।[3] बाद के भी कुछ आचार्यों ने सट्टक को संस्कृत या प्राकृत किसी भी भाषा में लिखने की छूट दी है।[4] अतः यह अनुमान किया जा सकता है, कि राजशेखर से पूर्व संस्कृत या प्राकृत में निबद्ध सट्टको का अस्तित्व रहा होगा।

राजशेखर के पूर्व-कालिक सट्टकों के विषय में यह अनुमान करना अनुचित न होगा, कि—

---

१. 'कधिदच्चेब्ब छइल्लेहि' (कथितमेव विदग्धैः)—कर्पूरमञ्जरी, प्रथम जवनिकान्तर, पृष्ठ ६

२. (क) प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, एन०सी० शास्त्री, पृष्ठ ४११

(ख) राजशेखर्स कर्पूरमञ्जरी, स्टीन कोनो, पृष्ठ १९५

३. कर्पूरमञ्जरी—१/८

४. (क) '...अप्राकृतसस्कृतया स सट्टको...।'—शृङ्गार-प्रकाश, बी० राघवन, पृष्ठ ५४०

(ख) "...अप्राकृतसंस्कृतया स सट्टको...।" नाट्यदर्पण, ओरियन्टल इंस्टीट्यूट बड़ौदा, पृष्ठ २१३

हो सकता है उसका अस्तित्व आज के भोजपुरी भाषी क्षेत्रो में प्रचलित 'गोड़नचिया' नामक लोकनाट्य की तरह या उत्तर भारत में प्रचलित 'नौटंकी' की तरह का रहा हो, जो साहित्य का विषय न होकर केवल मञ्च तक ही सीमित रहा हो तथा केवल परम्परा द्वार सुन-सुनकर मञ्चित होता हो अथवा अपरिष्कृत साहित्य के रूप मे निबद्ध होने के कारण उत्कृष्ट कोटि के रूपकों के मध्य अपने अस्तित्व को बचाये रखने में असमर्थ होकर कालकवलित हो गया हो।

वास्तविकता चाहे जो हो इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि—राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी ने बीज रूप मे विद्यमान या मृतप्राय हो चुकी सट्टक विधा को जीवन प्रदान किया। कर्पूरमञ्जरी ने न केवल सट्टक के स्वरूप निर्धारण मे अपना योगदान दिया, अपितु सट्टकों की कसौटी के रूप मे प्रतिष्ठित होकर उस विधा को आगे बढ़ाने वालों के लिए प्रेरणा स्रोत एव पथ प्रदर्शक बनी। रूपक को पूर्णतः प्राकृत में लिखने का यह प्रथम प्रयोग था, जो न केवल सफल रहा अपितु अत्यन्त लोकप्रिय भी हुआ, क्योकि यह लोकभाषा एव लोकजीवन के निकट था।

कर्पूरमञ्जरी के बाद प्राप्त सट्टक साहित्य में नयचन्द्र–विरचित रम्भामञ्जरी, मार्कण्डेय कवीन्द्र-विरचित विलासवती, रुद्रदास-विरचित चन्द्रलेखाँ विश्वेश्वर पाण्डेय-प्रणीत शृङ्गारमञ्जरी तथा कष्ठीरव घनश्याम के तीन सट्टक—आनन्दसुन्दरी, वैकुण्ठचरित एवं एक अज्ञातनामा सट्टक के विषय मे जानकारी प्राप्त होती है।[१] यहाँ पर उन सब सट्टकों का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना प्रासङ्गिक होगा।

(क) कर्पूरमञ्जरी—

राजशेखर-प्रणीत कर्पूरमञ्जरी सट्टक चार जवनिकान्तरों मे निबद्ध है, जिसमें राजा चन्द्रपाल एवं कुन्तलदेश की राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी की प्रणय कथा वर्णित है। इस कृति में सट्टक का अत्यन्त सुन्दर एवं निखरा हुआ रूप प्रस्तुत है; उसने बाद के सट्टकों के रूप, कथानक तथा वर्णन प्रकार

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ ५८१–८३

के ऊपर व्यापक प्रभाव डाला है। इस पर अनेक टीकाएँ लिखी जा चुकी है। इसके टीकाकारो मे कामराज धर्मदास, पीताम्बर, धर्मचन्द्र, कृष्णसूरि, नृसीमहाराज, अनन्तदास आदि विशेष प्रसिद्ध है।[१] इसके कई संस्करण वर्तमान में प्रकाशित हैं।

कर्पूरमञ्जरी नामधारी अन्य कृतियाँ—कर्पूरमञ्जरी सट्टक के प्रसङ्ग में यह कहना अनुचित न होगा कि—कर्पूरमञ्जरी नामक कम से कम दो अन्य कृतियाँ भी सस्कृत साहित्य मे उपलब्ध होती है, जो सट्टक भिन्न विधा से सम्बद्ध हैं।

(i) कर्पूरमञ्जरी नामक एक कृति रजनीवल्लभ द्वारा प्रणीत हैं, जिसमें पौराणिक विषय पर आधारित विविध कविताएँ है।[२]

(ii) बाल कवि (१५३७ ई०) द्वारा प्रणीत कर्पूरमञ्जरी नामक एक अन्यकृति के विषय मे भी सूचना प्राप्त होती है।[३]

(ख) रम्भामञ्जरी—

रम्भामञ्जरी सट्टक पन्द्रहवीं सदी के प्रसिद्ध जैन कवि नयचन्द्र द्वारा रचित है। इसमें काशी के राजा जयचन्द्र के रम्भा नामक सुन्दरी से विवाह करने का विचित्र प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया है। इसमें तीन ही जवनिकान्तर है तथा कहीं-कही सस्कृत के श्लोक भी आते है। यह सट्टक अधूरा प्रतीक होता है। साहित्यिक दृष्टि से यह कर्पूरमञ्जरी की अपेक्षा निम्न कोटि का है। यह निर्णय सागर प्रेस बम्बई से सन् १८८९ ई० मे सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ।[४]

---

१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ ६३०

२. वही, पृष्ठ ३०७

३. वही, पृष्ठ ७९२ एवं ६५६

४. (क) सस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५८२

(ख) प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, एन०सी० शास्त्री, पृष्ठ- ४२६-३०

(ग) विलासवती—

सम्प्रति यह सट्टक उपलब्ध नहीं है। इसके प्रणेता मार्कण्डेय कवीन्द्र ने इसका अपने ग्रन्थ 'प्राकृत-सर्वस्व' मे निर्देश मात्र किया है।[1] वे १७वी शदी के उत्तरार्द्ध के उत्कलनरेश मुकुन्ददेव के समकालीन थे।[2]

(घ) चन्द्रलेहा (चन्द्रलेखा)—

केरलदेशीय पारशववंशीय रुद्रदास द्वारा १६६० ई० के लगभग रचित चन्द्रलेहा सट्टक बहुत ही सुन्दर एव सरस है। इसमे कवि ने अपने आश्रयदाता 'मानवेद' का अग देश की राजकुमारी चन्द्रलेखा के साथ परिणय प्रसङ्ग का वर्णन बड़ा ही रोचक शैली में किया है। कर्पूरमञ्जरी की यत्र-तत्र छाया होने पर भी इस सट्टक की अपनी मौलिकता है। यह उपयोगी भूमिका के साथ डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये के सम्पादकत्व मे भारती विधा ग्रन्थावली से १९४९ ई० में प्रकाशित हो चुका है।[3]

(ङ) शृङ्गारमञ्जरी—

इसके प्रणेता पं० विश्वेश्वर है, जो अपने युग के महान साहित्य स्रष्टा हैं। चार जवनिकान्तरों वाला यह सट्टक, काव्य की दृष्टि से बहुत ही प्रौढ़ रचना है। इसमें पं० विश्वेश्वर ने अपनी प्रतिभा के बल पर नवीन तथ्यों की उद्भावना की है। यद्यपि वे राजशेखर के पर्याप्त ऋणी हैं, परन्तु प्राकृत भाषा की, प्रवाहमयी सरस कविता लिखने मे उनका प्रभुत्व अक्षुण्ण प्रतीत होता है, जो

---

१. 'पाणाअ गओ भमरो लब्भइ दुक्ख गइदेसु।
   सुहाअ रज्ज किर होइ रण्णौ।।—प्राकृतसर्वस्व—५/१३१

२. सस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५८२

३. (क) वही, पृष्ठ ५८२
   (ख) प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, एन०सी० शास्त्री, पृष्ठ ४१८–२२

निश्चय ही चमत्कारी है। इसके कई संस्करण प्रकाशित हो चुके है, जिसमे चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी भी एक है।[१]

भृङ्गारमञ्जरी नामधारी अन्य कृतियाँ—भृङ्गारमञ्जरी सट्टक के प्रसङ्ग मे यह ध्यातव्य है कि—सस्कृत भाषा मे निबद्ध भृङ्गारमञ्जरी नामक अनेक कृतियाँ उपलब्ध होती है। ये सभी सट्टक भिन्न विधा से सम्बद्ध है, जिनका सक्षिप्त परिचय देना प्रासङ्गिक होगा, जिससे भृङ्गारमञ्जरी सट्टक से उनकी भिन्नता स्पष्ट हो सके।

(i) भोज-कृत भृङ्गारमञ्जरी—यह धारा नरेश भोज (१०१८-१०६३ ई०) द्वारा रचित आख्यायिका है।[२]

(ii) राममनोहर-कृत भृङ्गारमञ्जरी—यह गीतकाव्य है।[३]

(iii) मानकवि-प्रणीत भृङ्गारमञ्जरी—यह भी गीतकाव्य है।[४]

(iv) अज्ञात कवि रचित भृङ्गारमञ्जरी—यह नाट्यकृति है, जिसके प्रणेता के विषय में जानकारी नही है। इसके प्रणेता ने 'रामचन्द्रोदय' नामक काव्य भी लिखा है।[५]

(v) अवधन सरस्वती-प्रणीत भृङ्गारमञ्जरी—यह नाट्यकृति है। इसके कवि काञ्ची के निवासी थे।[६]

(vi) गोपालराय-प्रणीत भृङ्गारमञ्जरी—पौढ़देव रायपुरम् निवासी, गोपालराय रचित यह

---

१. (क) सस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५८२

(ख) प्राकृत भाषा एव साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, एन०सी० शास्त्री, पृष्ठ ४३०-३१

२. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ ५०३

३. वही, पृष्ठ ३५६

४. वही, पृष्ठ ३५६

५. वही, पृष्ठ ७०२

६. वही, पृष्ठ ७०२

नाट्यकृति है।[१]

(vii) विश्वनाथ-प्रणीत शृङ्गारमञ्जरी—वेमायमत्री के दरबारी कवि विश्वनाथ प्रणीत यह नाट्यकृति है।[२]

(viii) रतिकर-रचित शृङ्गारमञ्जरी—यह नाट्यकृति भाण है।[३]

(ix) भोगनाथ-प्रणीत शृङ्गारमञ्जरी—विद्यारण्यमाधव (१३०२-१३८७ ई०) के भाई एव राजा सगम द्वितीय के सहयोगी-भोगनाथ द्वारा रचित यह काव्य ग्रन्थ है।[४]

(x) अजितसेन या अजीतनाथ-कृत शृङ्गारमञ्जरी—यह काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है, इसमे तीन अध्याय तथा १२८ श्लोक हैं।[५]

(xi) केरल वर्मा-कृत शृङ्गारमञ्जरी—ट्रावनकोर निवासी केरलवर्मा (१८४५-१९१० ई०) जिन्हें केरल–कालिदास भी कहते है, द्वारा प्रणीत यह काव्यग्रन्थ है।[६]

(xii) अकबरशाह से सम्बन्धित शृङ्गारमञ्जरी—अकबरशाह अथवा बड़े साहब (१६४६-१६७२ या १६७५ ई०, जो गोलकुण्डा के सुल्तान अबुल-कुतुबशाह के गुरु थे) की प्रेरणा से किसी तेलगू विद्वान ने इस काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना मूलतः तेलगू भाषा में की थी, जिसे किसी अन्य ने 'शृङ्गारमञ्जरी' इस नाम से संस्कृत में अनूदित किया। इसमे नायक, नायिका के विषय के साथ मुख्यतः शृङ्गार रस का विवेचन है।[७]

---

१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ ७०३

२. वही, पृष्ठ ७०५

३. वही, पृष्ठ १०४४

४. वही, पृष्ठ २१३

५. (क) वही, पृष्ठ ७५२

(ख) संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ० सुनील कुमार डे, पृष्ठ २४९

६. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ २५८

७. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ० सुनील कुमार डे, पृष्ठ २४७

(च) आनन्दसुन्दरी—

तञ्जौर के भोसलावशीय राजा तुक्को जी (१७२९-१७३५ ई०) के मन्त्री कण्ठीरव घनश्याम (१७००-१७५०) द्वारा, चार जवनिकान्तरो मे निबद्ध, यह प्रेमकथा-मूलक सट्टक है। इसके कथावस्तु का गठन कर्पूरमञ्जरी की शैली से सर्वथा भिन्न है। इसमे कवि ने दो गर्भ नाटकों की अवतारणा की है, जो मूलकथानक से सर्वथा सम्बद्ध है। यही इस सट्टक की नाटकीय विशिष्टता है। इसमे हास्य का पुट बड़े आकर्षक ढंग से दिया गया है। इसकी प्राकृत भाषा अपेक्षाकृत कम स्वाभाविक एव रोचक है। इसमे मराठी शब्दो एवं क्रियाओं का अधिक प्रयोग है।[१] यह सन् १९५५ ई० मे डा० ए०एन० उपाध्ये द्वारा सम्पादित होकर मोतीलाल बनारसीदास द्वारा प्रकाशित है।[२]

(छ) वैकुण्ठचरित—

यह कण्ठीरव घनश्याम द्वारा विरचित है, किन्तु अनुपलब्ध है।[३]

(ज) आज्ञातनामा सट्टक

कण्ठीरव घनश्याम ने उपर्युक्त दो सट्टकों के अतिरिक्त एक अन्य सट्टक का भी प्रणयन किया था,[४] लेकिन उसका कोई प्रमाण नही मिलता। डॉ० बल्देव उपाध्याय ने उस अज्ञातनामा सट्टक का नाम नवग्रहचरित होने की संभावना व्यक्त की है,[५] किन्तु यह अनुमान पूर्णतः अस्वीकरणीय है, क्योंकि घनश्याम विरचित नवग्रहचरित नाम की सट्टक भिन्न विधा की नाट्यकृति उपलब्ध है।[६]

---

१. (क) सस्कृत साहित्य का इतिहास, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ ५८२

(ख) प्राकृतभाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, एन०सी० शास्त्री, पृष्ठ ४२२-२६

२. प्राकृतभाषा एव साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ४२२

३. सस्कृत साहित्य का इतिहास, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ ५८२

४. (क) आधुनिक सस्कृत नाटक, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ ३२८

(ख) संस्कृत साहित्य का इतिहास, बल्देव उपाध्याय (डॉ० उपाध्ये की पाण्डित्यपूर्ण भूमिका के आधार पर), पृष्ठ ५८३

५. सस्कृत साहित्य का इतिहास, रामजी उपाध्याय, पृष्ठ ५८३

६. आधुनिक संस्कृत नाटक, रामजी उपाध्याय, पृष्ठ ३२८

इनमे राजशेखर कृत-कर्पूरमञ्जरी एव पण्डित विश्वेश्वर कृत शृङ्गारमञ्जरी सट्टक, अपने कथागुम्फन, चरित्राङ्कन, रसपेशलता आदि में वैशिष्ट्य के कारण न केवल सट्टक साहित्य मे अपितु सम्पूर्ण रूपक साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है। परिणामतः उनके प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक है। इन दोनो सट्टको मे हर स्तर पर दिखाई पड़ने वाली पर्याप्त समानता इन दोनो के एक साथ अनुशीलन एव पर्यालोचन के प्रति प्रेरित करती है। "राजशेखर-कृत कर्पूरमञ्जरी एव विश्वेश्वर-कृत शृङ्गारमञ्जरी सट्टको का आलोचनात्मक अध्ययन" विषय पर शोध के लिए प्रवृत्त होना इसी प्रेरणा का परिणाम है।

नाट्यशास्त्रियो ने नाट्य के लिए वस्तु, नेता एव रस विषयिणी जिन मान्यताओ को प्रतिस्थापित किया है, उस कसौटी पर कर्पूरमञ्जरी एव शृङ्गारमञ्जरी सट्टक कितने खरे उतरते है। काव्यशास्त्रियो की अलङ्कार, आदि सम्बन्धी मान्यताओ का कितना परिपालन इसमे हो पाया है, यह शोध की प्रमुख अपेक्षाये हैं।

●●●

द्वितीय-अध्याय

कवि-परिचय

राजशेखर

राजशेखर नाम धारण करने वाले कवि

(क) केरल-नरेश राजशेखर
(ख) यायावरवंशीय राजशेखर
(ग) जैन कवि राजशेखर
(घ) गीतगङ्गाधरकार राजशेखर
(ङ) कोल्लुरी परिवार के राजशेखर

कर्पूरमञ्जरीकार राजशेखर

राजशेखर एवं उनका वंश
राजशेखर का समय
राजशेखर की जन्मभूमि एवं कर्मभूमि
राजशेखर का कृतित्व
राजशेखर का व्यक्तित्व

विश्वेश्वर

विश्वेश्वर नाम धारण करने वाले कवि

(क) श्रीधरदास द्वारा उद्धृत विश्वेश्वर
(ख) चमत्कारचन्द्रिकाकार विश्वेश्वर
(ग) चन्द्रालोक के टीकाकार विश्वेश्वर
(घ) लक्ष्मीधर के पुत्र विश्वेश्वर
(ङ) गीतगोविन्द के टीकाकार विश्वेश्वर
(च) बीसवीं सदी में कवि विश्वेश्वर

भृङ्गारमञ्जरीकार विश्वेश्वर

विश्वेश्वर एवं उनका वंश
विश्वेश्वर का समय
विश्वेश्वर की जन्मभूमि एवं कर्मभूमि
विश्वेश्वर का कृतित्व
विश्वेश्वर का व्यक्तित्व

राजशेखर एवं विश्वेश्वर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का तुलनात्मक परिशीलन

द्वितीय-अध्याय

कवि-परिचय

राजशेखर

कर्पूरमञ्जरी सट्टक के प्रणेता के रूप मे राजशेखर का नाम प्रसिद्ध है। किन्तु संस्कृत साहित्य मे 'राजशेखर' अभिधान धारण करने वाले अनेक कवियो के विषय मे जानकारी प्राप्त होती है। अतः कर्पूरमञ्जरीकार राजशेखर का अन्य से भिन्न रूप में परिचय प्राप्त करने हेतु, इस अभिधान को धारण करने वाले सभी कवियो का सामान्य परिचय प्रस्तुत करना अपेक्षित है।

राजशेखर नाम धारण करने वाले कवि—

(क) केरल-नरेश राजशेखर—'शकरदिग्विजय' नामक कृति से सकेत मिलता है कि—राजशेखर नामधारी केरल का शासक हुआ, जिसने तीन नाटकों की रचना करके शङ्कराचार्य को अर्पित किया। चगजाशेरि के समीपवर्ती 'तलइनइल्ल' नामक ग्राम से प्राप्त ७५० से ८५० ई० के शिलालेख मे राजा राजशेखर का नाम उत्कीर्ण है,[१] जो सभवतः शंकरदिग्विजय में उल्लिखित राजशेखर ही है।

(ख) यायावरवंशीय राजशेखर—इन्होने खुद अपना बहुविध परिचय दिया है। यही कर्पूरमञ्जरी सट्टक के प्रणेता है। इनके विषय में आगे सविस्तार चर्चा की जायेगी।

(ग) जैन कवि राजशेखर—राजशेखर[२] के नाम से प्रसिद्ध जैन कवि राजशेखर सूरी का समय १३४८ ई० के लगभग है। इनकी प्रसिद्ध कृति प्रबन्धकोश है, जिसमें २४ व्यक्तियों का प्रबन्ध विद्यमान

---

१. कर्पूरमञ्जरी-प्रस्तावना, चुन्नीलाल.शुक्ल, पृष्ठ ५

२. (क) सस्कृत साहित्य का इतिहास, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ ४५६
   (ख) हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ २७५

है, जिससे यह चतुर्विंशति प्रबन्ध भी कहलाता है। ये तिलकसूरी के शिष्य थे।

(घ) गीतगङ्गाधरकार राजशेखर—ये नन्जराजशेखर या नन्जराज नाम से भी प्रसिद्ध हैं। ये सन् १७३९ से १७५९ ई० तक मैसूर राज्य के सर्वाधिकरण (राजस्व मन्त्री) एव वास्तविकता में सम्राट-निर्माता थे।[१] इसके बाद उनका अधःपतन आरम्भ हुआ। १७७३ ई० में हैदरअली की कैद मे बुरी तरह उनकी मौत हुई। इन्होंने 'गीतगङ्गाधर' नामक लघुकाव्य का प्रणयन किया। इन्होने हलसीमहात्यम् नामक तेलगू गद्य का भी प्रणयन किया था।[२] इनके यशोगान मे नृसिहकवि ने 'नन्जराजयशोभूषणम्' नामक काव्य लिखा है।[३]

(ङ) कोल्लुरी परिवार के राजशेखर—ये आन्ध्र प्रदेश के गोदावरी जिले के कौसीनी नदी के किनारे स्थित पेरूरु (सोमनाथपुर) के रहने वाले नारायण के पौत्र एव वेकटेश के पुत्र थे। ये गौतमगोत्रीय एव कोल्लुरी परिवार से सम्बद्ध थे। पेशवा माधवराव (१७६०–१७७२ ई०) ने इन्हे सम्मानित किया था। इनका एक अन्य नाम सोमेश्वर भी है। इन्होंने साहित्यकल्पद्रुम, भागवतचम्पू, शिवशतक, श्रीसचम्पू, अलङ्कारमकरन्द जैसी रचनाए की।[४]

कर्पूरमञ्जरीकार राजशेखर—

यायावर-वशीय कवि राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी सट्टक का प्रणयन किया है। मध्यकालीन सस्कृत कवियों मे इनका विशिष्ट स्थान है। यद्यपि इन्होने अपने विषय में अनेक संकेत दिये हैं, फिर भी उनसे सम्बन्धित अनेक प्रश्न अनुत्तरित रह जाते हैं, जिनके लिए और अधिक सूचनाओ की अपेक्षा है। विभिन्न स्रोतो से प्राप्त तथ्यों के आधार पर राजशेखर का यथासभव परिचय प्रस्तुत है।

---

१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ ८०१–८०२

२. वही, पृष्ठ ३४४

३. वही, पृष्ठ ८०१–८०२

४. (क) वही, पृष्ठ ५०८ एव ७८८
   (ख) सस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ० सुनील कुमार डे, पृष्ठ २६०

राजशेखर एवं उनका वंश—

"उपाध्यायो यायावरीयः राजशेखरः" बालरामायण के इस कथन से यह प्रतीत होता है, कि राजशेखर यायावरवश के थे। यायावर का अर्थ है, जो निरन्तर चलने वाला हो। प्राचीन समय मे ऋषियो में दो प्रकार के ऋषि होते थे—(१) यायावरीय एव (२) शालीय। यायावरीयो का व्रत था, कि ये एक स्थान में न रहकर प्रायः यात्रा करते रहते थे। यद्यपि सन्यासियों के लिए भी यह नियम है, परन्तु यायावरीय सन्यासी नहीं होते थे, अपितु गृहस्थ या वानप्रस्थी सन्त थे। महाराष्ट्र तथा कुछ अन्य क्षेत्रो मे आज भी कुछ ऐसे सन्त देखे जाते है, जो गौवो और अनेक व्यक्तियों को साथ लेकर प्रायः यात्रा और भजन कीर्तन करते रहते है। ऐसे ही किसी यायावरीय महात्मा के वश मे जन्म लेने के कारण, राजशेखर ने गौरव वृद्धि के लिए अपने वश को यायावरीय शब्द से अलंकृत किया है। राजशेखर का कुल कवियो के प्रसव के लिए प्रसिद्ध था। अकालजलद, सुरानन्द, तरल, कविराज आदि अनेक कवियो ने इस कुल को अलकृत किया है।[१]

बालरामायण-नाटक की प्रस्तावना मे अपना परिचय देते हुए राजशेखर ने स्वय लिखा है, कि—वे महाराष्ट्रचूड़ामणि अकालज़लद के चतुर्थ अर्थात् प्रपौत्र एव दर्दुक के पुत्र थे। उनकी माता का नाम शीलवती था।[२] इस नाटक की प्रस्तावना से यह भी पता चलता है, कि उनके पिता किसी राज्य के महामंत्री थे।[३]

अकालजलद इस यायावरकुल के अधिक प्रसिद्ध व्यक्ति प्रतीत होते है। यही कारण है कि

---

१. समूर्तो यत्रासीद् गुणगण इवाकालजलदः
सुरानन्दः सोऽपि श्रवणपुटपेयेन वचसा।
न चान्ये गणयन्ते तरलकविराजप्रभृतयो
महाभागस्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले।।—बालरामायण –१/१३

१. "तदामुष्यायणय महाराष्ट्रचूडामणेरकालजलदस्य चतुर्थो दौर्दुकिः शीलवतीसूनुरुपाध्यायश्रीराजशेखरः इत्यपर्याप्त बहुमानेन।"—बालरामायण-प्रथम अंक

२. "सूक्तमिद तेनैव मन्त्रिसुतेन।"—बालरामायण-प्रथम अंक

राजशेखर ने अपने पिता के सम्बन्ध में अत्यन्त साधारण परिचय देते हुए और अपने पितामह के लिए मौन रहकर, प्रपितामह का नाम अत्यन्त गौरव के साथ लिया है। उनके नाम से परिचित होने मे वे अपना गौरव समझते हैं। अकालजलद कौन थे और इन्होने क्या-क्या लिखा है, यह पता नही चलता। वल्लभदेव-कृत 'सुभाषितावली'— में अकालजलदांकित एक पाठ्य दाक्षिणात्य के नाम से उद्धृत है, जो शार्ङ्गधर पद्धति मे अकालजलद के नाम से ही सग्रहीत है। सुभाषितावली में और भी दो, तीन पद्य दाक्षिणात्य के नाम से उद्धृत है। सभवतः ये अकालजलद के ही हो। राजशेखर के कथनानुसार 'कादम्बरीराम' नामक कवि ने नाटको की रचना की और उनमें अकालजलद के श्लोकों को इस प्रकार समाविष्ट किया कि वे श्लोक कादम्बरीराम के प्रतीत होते थे।[१] राजशेखर ने अकालजलद की काव्य प्रशस्ति लिखी है, जिससे प्रतीत होता है कि उन्होने मुक्तक शैली के अनेक पद्य लिखे होगे और वे तत्कालीन समाज मे अत्यन्त आदरणीय व्यक्ति थे।[२]

सुरानन्द नामक कवि भी यायावर वंश के थे और राजशेखर के पूर्वजों में थे। उनके सम्बन्ध मे राजशेखर ने लिखा है, कि—सुरानन्द चेदिदेश के राजा रणविग्रह की सभा के रत्न थे।[३] आप्टे महोदय ने सुरानन्द को राजशेखर का पितामह बतलाया है।[४] इनकी रचनाए भू नही मिलती। काव्यमीमांसा में राजशेखर ने अपहरण सम्बन्धी विवेचना में सुरानन्द का मत उद्धृत किया है।[५]

इसके अतिरिक्त यायावर वंश के कवियों में तरल एवं कविराज का नाम भी आता है, जिनके विषय में कोई जानकारी सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। राजशेखर की पत्नी का नाम अवन्तिसुन्दरी

१. अकालजलदश्लोकैश्चित्रमात्मकृतैरिव।
ख्यातः कादम्बरीरामो नाटके प्रवरः कविः।। जल्हण—सूक्तिमुक्तावली

२. अकालजलदेन्दोः सा हृद्या वचनचन्द्रिका।
नित्य कविचकोरैर्या पीयते न तु हीयते।।—जल्हण—सूक्तिमुक्तावली

३. नदीनां मेकलसुता नृपाणां रणविग्रहः।
कवीना च सुरानन्दश्चेदिमण्डलमण्डनम्।।—सूक्तिमुक्तावली

४. राजशेखर द लाइफ एण्ड राइटिंग, आप्टे, पृष्ठ १६

५. 'सोऽयमुल्लेखवाननुग्राह्यो मार्गं' इति सुरानन्दः।—काव्यमीमांसा, अध्याय—१३

था, जो चौहान क्षत्रिय कुल की विदुषी कन्या थी।[1]

राजशेखर ने अपने वर्ण के विषय मे कुछ नही बताया है, अतएव अनुमान के आधार पर कुछ विद्वान उन्हे ब्राह्मण[2] एवं कुछ क्षत्रिय[3] मानने के पक्षधर है। राजशेखर को क्षत्रिय मानने वाले विद्वानो के पक्ष मे एकमात्र प्रबल तर्क उनकी पत्नी अवन्तिसुन्दरी का क्षत्रिय होना है, जो चौहानवशीया थी। सामान्य रूप से एक क्षत्रिय कन्या का विवाह क्षत्रिय पुरुष से ही होता है, अतः राजशेखर क्षत्रिय रहे होंगे, ऐसा इस मत को मानने वालो का विचार है। किन्तु क्षत्रिय होने के सम्बन्ध मे क्षत्रिय कन्या से विवाह के प्रमाण को पुष्ट नहीं माना जा सकता, क्योकि राजशेखर एव अवन्तिसुन्दरी का विवाह अन्तर्जातीय विवाह का उदाहरण भी हो सकता है, जैसा कि प्राचीन एव मध्यकाल मे अन्तर्जातीय विवाह होने के अनेक उदाहरण मिलते है।

दूसरी ओर राजशेखर को ब्राह्मण सिद्ध करने वाले विद्वानों का प्रमुख तर्क यह है, कि— राजशेखर क्षत्रिय राजा के उपाध्याय थे, इसलिए निश्चय ही ब्राह्मण होगे। दूसरी बात यह कि— उनके पिता राजा के अमात्य थे एव अमात्य ब्राह्मण ही होता है, अतएव राजशेखर ब्राह्मण होंगे। यद्यपि इन तर्कों में भी कोई विशेष बल नही है, क्योकि क्षत्रिय वर्ण के भी उपाध्याय एवं अमात्य होने के उदाहरण मिलते हैं। किन्तु सामान्यतः ब्राह्मणों द्वारा ही उपाध्याय एवं अमात्य का पद धारण करने की परम्परा रही है, अतः राजशेखर के ब्राह्मण होने की मान्यता अपेक्षाकृत अधिक

---

१. कर्पूरमञ्जरी–१/११

२. (क) सस्कृत साहित्य की रूपरेखा, प० चन्द्रशेखर पाण्डेय एवं डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास, पृष्ठ २०८

(ख) सस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ ४३३

(ग) प्राकृत भाषा एव साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, एन०सी० शास्त्री, पृष्ठ ४१४

३. (क) कर्पूरमञ्जरी, भूमिका—गंगासरन राय, पृष्ठ ७

(ख) कर्पूरमञ्जरी, भूमिका—चुन्नीलाल शुक्ल, पृष्ठ २

(ग) काव्यमीमासा, भूमिका, पं० केदारनाथ शर्मा सारस्वत, पृष्ठ ५

(घ) सस्कृत नाटक, ए०बी० कीथ (भाषान्तरकार—डॉ० उदयभानु सिंह), पृष्ठ २४४

बलवती है। ऐसी परिस्थिति में कर्पूरमञ्जरी के भरत-वाक्य[1] मे प्राप्त यह वाक्य "भवन्तु ब्राह्मणजनाः सत्याशिष सर्वदा"[2] राजशेखर के ब्राह्मण होने की संभावना को पुष्ट करता है। क्योकि राजशेखर जैसा कवि जो अपने प्रति गर्वोक्तियाँ करता हो, अपने आप को बहुत बड़ा कवि एव विद्वान मानता हो, यदि वह ब्राह्मण नही होता तो यह कथन कदापि न करता। उसके स्थान पर विद्वद्-वर्ग या कवि-वर्ग के लिए ऐसी बात कह सकता था।

यदि हम यहाँ राजशेखर को ब्राह्मण न माने तो यह कथन राजशेखर की गर्वोक्तियों के प्रतिकूल जाता है। दूसरी ओर बौधायन धर्मसूत्र (३-१-१) तथा देवल (याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा टीका-१-१२८) के कथन के आधार पर का काणे महोदय ने यायावर वश को ब्राह्मण माना है।[3] अतः यह कहना सर्वथा उचित है कि राजशेखर ब्राह्मण थे।

राजशेखर के धर्म का जहाँ तक प्रश्न है, तो यद्यपि उन्होने राम के प्रति विशेष आदर प्रदर्शित करते हुए बालरामायण जैसा नाटक लिखा है, कर्पूरमञ्जरी में चण्डी की स्तुति की है।[4] सरस्वती की जयकार ही है।[5] फिर भी शिव के प्रति उनका भक्तिभाव अन्य की अपेक्षा अधिक है। उनकी अधिकांश कृतियो का प्रारम्भ शिव-वन्दना के साथ होता है।[6] अतः उन्हें शैव मतावलम्बी स्वीकार किया गया है। कुछ आचार्यों ने उनके लिए उदारशैव शब्द का प्रयोग किया है।[7]

---

१. हारवर्ड ओरियन्टल सीरीज के सस्करण, (मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी द्वारा प्रकाशित) मे 'भवन्तु ब्राह्मणजनाः सत्याशिषः सर्वदा' वाक्य नहीं मिलता।

२. कर्पूरमञ्जरी, सम्पादक—श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १५५

३. कर्पूरमञ्जरी—भूमिका, गगासरन राय, पृष्ठ ७ पर उद्धृत

४. कर्पूरमञ्जरी—४/१९

५. कर्पूरमञ्जरी—१/१

६. (क) बालरामायण—१/१, १/२
(ख) विद्धशालभञ्जिका—१/१
(ग) कर्पूरमञ्जरी—१/३, १/४

७. सस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ॰ कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ ४३३

राजशेखर का समय—

राजशेखर के समय के विषय मे विभिन्न विद्वानो मे भिन्न-भिन्न विचार है। बोरो महोदय ने भ्रमवश माधवाचार्य कृत शङ्करदिग्विजय मे उल्लिखित केरल-नरेश राजशेखर को यायावर राजशेखर मानते हुए उन्हें शङ्कराचार्य का समकालीन एव सप्तम शतक का माना है, जो अस्वीकरणीय है।

दूसरे मत के अनुसार ७५० ई० के आस-पास राज्य करने वाले काश्मीर-नरेश जयापीड के क्षीर-स्वामी नामक एक गुरु थे। अमरकोश पर टीका लिखने वाले क्षीरस्वामी नाम के एक आचार्य हुए हैं, जिनकी कृति मे राजशेखरकृत विद्धशालभञ्जिका का एक श्लोक उद्धृत है। अमरकोश के टीकाकार क्षीरस्वामी का जयापीड के गुरु क्षीरस्वामी से समीकरण करते हुए, पीटर्सन महोदय ने राजशेखर को अष्टम शदी का मध्यवर्ती माना है, साथ ही महेन्द्रपाल नाम के शासक, जिनका गुरु होना राजशेखर ने स्वीकार किया है, को ७६१ ई० में शासन करता हुआ सिद्ध करने का प्रयास करते हुए, अपने मत की पुष्टि किया है। कनिघम महोदय का भी यही मत है। आप्टे महोदय ने इन सब बातों पर विचार पर सप्तम और अष्टम शतक का मध्य राजशेखर का समय माना है। किन्तु जयापीड के गुरु क्षीरस्वामी ने ही अमरकोश पर टीका लिखी थी, इसके प्रमाण के अभाव के कारण, इस मत को स्वीकार करने में आपत्तियाँ हैं। टीका में भोज का उल्लेख हैं जिनका आविर्भाव काल ११वीं सदी है। अतः अमरकोश के टीकाकार क्षीरस्वामी को भोज के परवर्ती होना चाहिए। इस प्रकार राजशेखर को आठवी शदी के मध्य में रखना सर्वथा अनुचित है।

सोमदेवकृत 'यशस्तिलकचम्पू' (९५९ ई०) एवं सोढ्ढलकृत 'उदयसुन्दरी' (९९० ई०) में राजशेखर का उल्लेख है। 'तिलकमञ्जरी' (१००० ई०) एवं 'व्यक्ति-विवेक' (११५० ई०) में भी राजशेखर को उद्धृत किया गया है। दूसरी तरफ राजशेखर ने अपनी 'काव्यमीमांसा' में अन्य आचार्यों के साथ-साथ उद्भट्ट (८०० ई०) एवं आनन्दवर्धन (८५० ई०) का उल्लेख किया है, जो

क्रमशः काश्मीर नरेश जयापीड (७७९–८१३ ई०) एव अवन्तिवर्मन (८५७–८८४ ई०) के शासन काल मे हुए थे। इस आधार पर राजशेखर का काल नवी सदी के उत्तरार्द्ध से पूर्व दशवी सदी के पूर्वार्द्ध के बाद नहीं होना चाहिए।

राजशेखर के काल–निर्धारण से सम्बन्धित दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य राजशेखर द्वारा अपने को कन्नौज नरेश महेन्द्रपाल का उपाध्याय बताना[१] तथा महेन्द्रपाल के पुत्र महीपाल को भी अपना सरक्षक बताया जाना है। कर्पूरमञ्जरी मे वे अपने को निर्भयराज का उपाध्याय कहते है। विद्वानो ने निर्भयराज एवं महेन्द्रपाल को एक ही व्यक्ति माना है। सीवोंदीन शिलालेख[२] से पता चलता है कि महेन्द्रपाल ने ९०३–९०७ ई० में राज्य किया था तथा उनके पुत्र महीपाल ने ९१७ ई० के लगभग राज्य किया था। इस आधार पर अनुमान किया जा सकता है, कि—राजशेखर का समय नवी सदी का उत्तरार्द्ध एवं दशवीं सदी का पूर्वार्द्ध अर्थात् ८८० ई० से ९२० ई० के मध्य अवश्य रहा होगा। जर्मन विद्वान फ्लीट एव कीलहार्न ने भी राजशेखर को नवम शतक के अत एव दशम शतक के प्रारम्भ में स्वीकार किया है।

राजशेखर की जन्मभूमि एवं कर्मभूमि—

बालरामायण से पता चलता है कि राजशेखर के पूर्वज महाराष्ट्र के रहने वाले थे। संभवतः इसी को आधार मानकर अनेक विद्वानों ने राजशेखर को महाराष्ट्र का निवासी बताया है।[३२] किन्तु

---

१. आपन्नार्तिहरः पराक्रमधनः सौजन्यवारा निधि—
 स्त्यागी सत्यसुधाप्रवाहशशभृत् कान्तः कवीना गुरुः।
 वर्ण्यं वा गुणरत्नरोहणगिरेः किं तस्य साक्षादसौ
 देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः।।

२. इपीग्राफिक इण्डिका, कीलहार्न, आई, १७१ (नानूराम व्यास, संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृष्ठ २०९ पर उद्धृत)

३. (क) संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५५९
 (ख) संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ ४३३
 (ग) संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, चन्द्रशेखर पाण्डेय एव नानूराम व्यास, पृष्ठ २०८

इस कथित महाराष्ट्र क्षेत्र के समीकरण के विषय मे विद्वद्वर्ग मे भ्रम की स्थिति है। प्रो० कोनो ने महाराष्ट्र से विदर्भ और कुन्तलदेश का समीकरण किया है।[1] किन्तु काव्यमीमासा मे स्वय राजशेखर ने महाराष्ट्र को विदर्भ एव कुन्तल से अलग दक्षिणापथ का एक भाग माना है। यद्यपि जार्ज ग्रियर्सन महोदय ने शौरसेनी प्राकृत से निकलने वाली भाषाओं के दक्षिण में पड़ने वाले भू-भाग को, महाराष्ट्र नाम दिया है।[2] इस आधार पर शौरसेनी भाषी मध्यप्रदेश से महाराष्ट्र को मिला हुआ होना चाहिए। किन्तु राजशेखर द्वारा महाराष्ट्र को दक्षिणापथ का हिस्सा मानने वाला विचार ही उचित प्रतीत होता है, क्योकि महाराष्ट्र की एक सर्वथा भिन्न भाषा महाराष्ट्री प्राकृत रही है एव मध्यदेश की उससे भिन्न शौरसेनी।

राजशेखर को महाराष्ट्र अर्थात् दक्षिणापथ का निवासी बताया जाना, सर्वथा उचित प्रतीत नही होता। राजशेखर द्वारा प्रस्तुत विवरण से मात्र इतना ही संकेत मिलता है कि उनके पूर्वज मूलतः महाराष्ट्र के निवासी थे। राजशेखर का अपना कोई सम्बन्ध महाराष्ट्र से रहा है, यह निष्कर्ष इस आधार पर निकालना अनुचित होगा। अगर महाराष्ट्र राजशेखर की जन्मभूमि होती तो अवश्य ही उसके प्रति उनका किसी भी सन्दर्भ मे लगाव परिलक्षित हो जाता, परन्तु ऐसा कहीं से भी प्रतीत नहीं होता। जैसाकि दण्डी ने महाराष्ट्री प्राकृत की प्रभूत प्रशंसा की है, परन्तु राजशेखर के किसी भी कथन से ऐसा नहीं लगता कि वे महाराष्ट्र या महाराष्ट्री प्राकृत को कोई विशेष महत्त्व देते है।

दूसरी ओर कन्नौज[3] और पाञ्चाल[4] के प्रति राजशेखर का पक्षपात परिलक्षित होता है। कन्नौज के सम्बन्ध में राजशेखर ने कहा कि—दिशायें इसी नगर से माननी चाहिए। इस नगर को वे बड़ा

---

१. कर्पूरमञ्जरी—प्रस्तावना, श्री रामकुमार आचार्य, चौखम्बा प्रकाशन, पृष्ठ १०

२. लिम्बिस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, भाग ७, जार्ज ग्रियर्सन, पृष्ठ १२३

३. बालरामायण १०/८८-९०

४. बालरामायण १०/८६

पवित्र मानते हैं, तथा यहाँ की स्त्रियो को वेषभूषा, आभूषण, भाषा और व्यवहार में अग्रगामी बताते हैं।[1] काव्यमीमासा मे राजशेखर ने कहा है, कि—"यो मध्यदेश निवसति स कविः सर्वभाषानिषण्णः।" इस कथन को राजशेखर के अपने सर्वभाषा चतुर होने के कथन से मिलाने पर यह बात अधिक पुष्ट हो जाती है, कि—मध्यदेश ही राजशेखर का जन्मस्थान था।[2] इस मान्यता की पुष्टि इस बात से भी हो जाती है कि—उन्होंने मध्यदेश की भाषा शौरसेनी प्राकृत मे ही कर्पूरमञ्जरी सट्टक का प्रणयन कर, उस भाषा को गौरवान्वित किया। सुरानन्द जिन्हे आप्टे महोदय ने राजशेखर का पितामह स्वीकार किया है, को राजशेखर ने चेदिमण्डलमण्डन कहा है। चेदि देश वर्तमान महाकौशल का एक भाग था, जो नर्वदा तट पर स्थित है। वर्तमान जबलपुर जिले की त्रिपुरी इसकी राजधानी थी। इससे स्पष्ट है कि सुरानन्द मध्यदेशवासी हो गये थे। संभव है कि उसके बाद उनके वशज मध्यदेश मे बस गये हो। इस आधार पर यही कहना उचित है, कि—राजशेखर का जन्मस्थान मध्यदेश मे कहीं था, जहाँ उनके पूर्वज महाराष्ट्र से आकर बसे थे।[3]

जहाँ तक राजशेखर की कर्मभूमि का प्रश्न है, तो इस सम्बन्ध में राजशेखर ने खुद अपने को कन्नौज नरेश महेन्द्रपाल का उपाध्याय बताया है तथा उनके पुत्र महीपाल को भी अपना सरक्षक स्वीकार किया है। अतः यह निर्विवाद है कि उनका कार्य क्षेत्र कन्नौज था। कुछ दिनो के लिए वे लाट नरेश के यहाँ चले गये थे, जिनकी अध्यक्षता में विद्धशालभञ्जिका का अभिनय किया गया था। यहाँ से लौटकर पुनः कान्यकुब्ज आये और महेन्द्रपाल के पुत्र महीपाल के सभासद बनकर रहे।[4] प्रो० कोनो ने किन्हीं शिलालेखों तथा साहित्यिक उल्लेखों[5] के आधार पर ऐसा अनुमान

---

१. बालरामायण —१०/८८-९०

२. कर्पूरमञ्जरी—प्रस्तावना, रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १०

३. वही, पृष्ठ ११

४. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५६०

५. संभवतः "कवीनां च सुरानन्दश्चेदिमण्डलमण्डनम्"—सूक्तिमुक्तावली के आधार पर।

किया है, कि—राजशेखर का अपने जीवन किसी भाग में चेदि राजवश से अवश्य सम्बन्ध था। राजशेखर द्वारा भारत के विभिन्न क्षेत्रो एव वहाँ की सस्कृति, लोगों की अभिरुचि आदि के सम्बन्ध में प्रस्तुत सन्दर्भ, उनके विभिन्न क्षेत्रों मे परिभ्रमण का अनुमान कराते है। हो सकता है इसी क्रम मे वे चेदि राज्य मे जाकर कुछ समय तक रहे हो। अथवा उनका प्रारम्भिक जीवन चेदि राज्य मे ही व्यतीत हुआ हो। कुछ उल्लेखों से अनुमान किया जाता है, कि—उनकी वृद्धावस्था वाराणसी में व्यतीत हुई थी।[१] संभवतः शिव–भक्त राजशेखर ने अपनी अंतिम सास शिव की नगरी में ही लेने के लिए यहाँ निवास किया हो।

राजशेखर का कृतित्व—

राजशेखर ने स्वय अपने बालरामायण में षट्–प्रबन्धो का निर्देश किया है।[२] वर्तमान मे राजशेखर–प्रणीत काव्य–मीमांसा, बालरामायण, बालभारत (अथवा प्रचण्डपाण्डव), विद्धशालभञ्जिका एवं कर्पूरमञ्जरी ये पाँच ग्रन्थ उपलब्ध एव प्रकाशित है। उनकी छठवी कृति उपलब्ध नही है। काव्यमीमांसा मे राजशेखर ने अपने 'भुवनकोश' नामक एक भौगोलिक ग्रन्थ का उल्लेख किया है, जो अनुपलब्ध है।[३] भुवनकोश ही उनकी छठवीं कृति होगी।

कुछ आचार्यो ने राजशेखरकृत ग्रन्थो की संख्या छः से अधिक होने का अनुमान किया है। यह अनुमान बालरामायण के, छः प्रबन्धों के प्रणेता वाले राजशेखर के कथन को आधार बनाकर ही किया गया है। राजशेखर ने किस क्रम से साहित्य सर्जना किया है, यह सुनिश्चित नही। यदि बालरामायण उनकी उपलब्ध कृतियो में अतिम कृति हो, तब तो उसे लेकर छः रचनायें होती

---

१. "कर्णाटीदशनाङ्कितः...सोऽय सम्प्रति राजशेखरकविर्वाराणसी वाञ्छति।" औचित्य–विचार–चर्चा, पृष्ठ २७ (गगासरन राय, कर्पूरमञ्जरी भूमिका मे उद्धृत)

२. "विद्धिः नः षट्–प्रबन्धान्", बालरामायण १/२

३. (क) सस्कृत साहित्य की रूपरेखा, व्यास एव पाण्डेय, पृष्ठ २०९

(ख) संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५६०

है। लेकिन यदि बालरामायण अतिम रचना न होकर उपलब्ध कृतियो में पाँचवीं, चौथी, तीसरी, दूसरी अथवा पहली रचना हो तो? चूँकि उससे पूर्व पाँच रचनाये होनी चाहिए, इस आधार पर उनके कुल ग्रन्थो की संख्या कम से कम छः से लेकर ग्यारह के बीच कोई भी हो सकती है। श्री वी०एस० आप्टे एव प्रो० कोनो महोदय ने राजशेखर की नाट्य रचनाओ का क्रम–कर्पूरमञ्जरी, विद्धशालभञ्जिका, बालरामायण, बालभारत इस प्रकार दिया है। यदि इस क्रम को सही माना जाय तो उनकी कुच रचनाओ की संख्या छः से अधिक सुनिश्चित होती है। श्री रामकुमार आचार्य[1] बालरामायण को, खुद बालरामायण की उक्ति के आधार पर, राजशेखर की प्रथम नाट्यकृति मानते हैं तथा उससे पूर्व कवि द्वारा कुछ काव्यो के प्रणयन का अनुमान करते हैं, जिनका जनता में अधिक स्वागत नही हुआ था। अगर यह अनुमान सही है तो, राजशेखर प्रणीत ५ काव्यो का अस्तित्व बालरामायण की रचना से पूर्व होना चाहिए। जैसाकि काव्यानुशासनकार हेमचन्द्र ने राजशेखर प्रणीत 'हरविलास' नामक एक काव्य का उल्लेख किया है। सम्प्रति यह कृति उपलब्ध नही है। राजशेखर का यह कथन कि–'यद्यपि आलोचक उनके काव्यो को पसन्द नही करेंगे, फिर भी उनके नाटक बड़े आदर से पढ़े जायेंगे।' इस बात की पुष्टि करता कि, राजशेखर–प्रणीत कुछ काव्य ग्रन्थ अवश्य रहे हैं। सदुक्तिकर्णामृत, सुभाषितावलि जैसे सूक्ति ग्रन्थों में राजशेखर के नाम से कई पद्य मिलते हैं, जो इस अनुमान को पुष्ट करते हैं।[2] उन पूर्ववर्ती ५ काव्यों मे से 'हरविलास' काव्य एक माना जाय तो शेष चार और काव्यों को मिलाकर राजशेखर–प्रणीत कुल ११ ग्रन्थ होने चाहिए। इस प्रकार राजशेखर का छः से अधिक ग्रन्थों का प्रणेता होना सिद्ध होता है। प्रस्तुत स्थल पर उनकी उपलब्ध कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना अपेक्षित है।

(i) काव्य-मीमांसा—वस्तुतः यह एक अपूर्ण रचना है, जो अधिकरणों या भागों वाले महाग्रन्थ

---

१. कर्पूरमञ्जरी—प्रस्तावना, पृष्ठ १३

२. (क) कर्पूरमञ्जरी, भूमिका, गंगासरन राय, पृष्ठ १२

(ख) सस्कृत साहित्य की रूपरेखा—पाण्डेय एवं व्यास, पृष्ठ २०९

का कविरहस्य नामक एक अधिकरण मात्र है। यह अठ्ठारह अध्यायो में निबद्ध अलङ्कारशास्त्र (काव्यशास्त्र) का ग्रन्थ है, जिसमें काव्यशास्त्र का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत है। साहित्यशास्त्र के ग्रन्थो की सामान्य रूपरेखा से सर्वथा विलक्षण काव्यमीमासा की रूपरेखा है। यह कवि के लिए उपयोगी जानकारी देने वाला एक विश्वकोश सा प्रतीत होता है। इसमे साहित्यशास्त्र के रस अलकारादि विविध विषयो का स्वतन्त्र विवेचन नहीं किया गया, अपितु कवि तथा आचार्यों का उल्लेख, काव्यस्वरूप, कवि–कर्त्तव्य तथा कवि–समय आदि का विशद वर्णन किया गया है। वस्तुतः यह कवियो का मार्ग निर्देशक ग्रन्थ है। इसके आधार पर राजशेखर एक स्वतन्त्र 'कवि शिक्षा सम्प्रदाय' के प्रवर्तक माने जा सकते है।[१] यह ग्रन्थ चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी से डॉ० गंगासागर राय के सम्पादकत्व में 'प्रकाश' हिन्दी टीका सहित प्रकाशित है।

(ii) **बालरामायण**—राजशेखर की यह कृति दश विशालकाय अंकों में निबद्ध है, जिसमे राम की कथा को भव्य नाटक का रूप दिया गया है। इसमें राम नायक तथा रावण प्रतिनायक है। प्रसिद्ध रामकथा मे आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर नाटक को अधिकाधिक रुचिकर बनाने का प्रयास किया गया है। कवि ने इसमे घटनाओ मे कार्यान्विति दिखलाने का पूर्ण प्रयत्न किया है, परन्तु गत्यात्मकता का नाटक मे नितान्त अभाव है। कवि वर्णन का इतना रसिक है कि, वह हमेशा ऋतु, मनुष्य, युद्ध आदि के वर्णनों में अपनी भारती को उलझाये रखता है। इसीलिए आचार्य बल्देव उपाध्याय को यहाँ तक कहना पड़ा कि—"हम राजशेखर को महाकवि मानते हैं, नाटककार नही।'[२] वीर रस की यह अद्वितीय रचना राजशेखर को महाकवियो की श्रेणी में स्थान देने के लिए अवश्य ही पर्याप्त होगी। इसका विशाल रूप इसे अभिनेय रूप होने से सर्वथा रोकता है। इसमे कथा का अनावश्यक विस्तार किया गया है। यह कृति चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी से डॉ० गगासागर राय के सम्पादकत्व में प्रकाशित है।

---

१. काव्यप्रकाश—भूमिका, आचार्य विश्वेश्वर, पृष्ठ ५५

२. सस्कृत साहित्य का इतिहास, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ ५६३

(iii) बालभारत—यह 'प्रचण्डपाण्डव' नाम से भी प्रसिद्ध है। यह महाभारत कथा का विराट नाटकीय रूप रहा होगा। किन्तु वर्तमान मे इसके प्रारम्भिक दो अक ही उपलब्ध होते हैं, जिसमें द्रौपदी स्वयवर, द्यूतक्रीड़ा तथा द्रोपदीचीरहरण की घटनाये वर्णित है।

(iv) विद्धशालभञ्जिका—यह चार अङ्कों मे निबद्ध नाटिका है। इसमे विद्याधर मल्ल नामक राजकुमार एव मृगाङ्कावली तथा कुवलयमाला नाम की दो राजकुमारियो की प्रणय कथा निबद्ध है। इसका कथानक राजशेखर की अन्यकृति कर्पूरमञ्जरी की भाँति अत्यन्त रोचक है। इसकी रचना कवि ने चेदि नरेश के संरक्षण मे रहकर की थी, जबकि अन्य रचनाये काव्यकुब्जेश्वर के सरक्षण मे रहकर की गयी थीं। यह कृति चौखम्बा ओरियान्टालिया से प्रकाशित है।

(v) कर्पूरमञ्जरी—चार जवनिकान्तरो मे विभक्त, प्राकृत भाषा मे निबद्ध यह सट्टक श्रेणी का उपरूपक है। इसके पद्यो मे महाराष्ट्री एव गद्यो मे शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग किया गया है। इस कृति के वस्तु-निबन्धन पर हर्ष की रत्नावली नाटिका का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। राजशेखर की इस नाट्यकृति का सर्वप्रथम मञ्चन उनकी पत्नी की इच्छा से हुआ था, जबकि अन्य कृतियो का राजाओ के आग्रह पर। इस आधार पर स्टीन कोनो महोदय कर्पूरमञ्जरी को राजशेखर की प्रथम नाट्यकृति मानते हैं।[१] कामराज, धर्मदास, पिताम्बर, धर्मचन्द्र आदि ने कर्पूमञ्जरी पर विद्वत्तापूर्ण टीकायें लिखी हैं। कर्पूरमञ्जरी का प्रकाशन १९वीं शदी के उत्तरार्द्ध में ही अनेक जगहो से हो चुका था। सम्प्रति अनेक प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित इसके कई संस्करण उपलब्ध हैं। शोधार्थ गृहीत इस कृति पर आगे के अध्यायों में सविस्तार चर्चा की जायेगी।

राजशेखर का व्यक्तित्व—

यह एक आधारभूत तथ्य है कि जिस प्रकार की भावना चित्त में उदित होती है, वही एक आकार बनाकर बाह्यजगत में दिखाई पड़ती है। बाह्य जगत और कुछ भी नहीं केवल अन्तर्मन

---

१. राजशेखर्स, कर्पूरमञ्जरी, स्टीन कोनो, पृष्ठ १८४

मे उद्भूत होने वाले विज्ञानो की शृखला मात्र है। ठीक यही बात कवि एव उसकी कृतियों पर भी लागू होती है। कवि के व्यक्तित्व की छाप उसकी कृति पर पड़ना स्वाभाविक है, क्योंकि कृति कवि का कार्य है और कवि उसका कारणभूत तत्त्व। कवि का जो जीवन दर्शन होता है, उसी से वह अपनी कृति का ताना–बाना बुनता है। जगत के यथार्थ अनुभवो को वह अवसर पाकर अपनी कृति में यथास्थान प्रतिष्ठित करता है। अतएव कृति मे कवि के व्यक्तित्व को ढूढ़ना दुःसाध्य नहीं है। इसी प्रकार कविराज राजशेखर की कृतियों के आधार पर उनके व्यक्तित्व की रूपरेखा तैयार की जा सकती है।

अनेक विद्वानो से विभूषित यायावर वश मे उत्पन्न होने के कारण राजशेखर ने अपने पूर्वजो से कविता की दिव्य प्रतिभा को पैतृक रिक्थ के रूप मे प्राप्त किया था। उनकी शिक्षा पूर्ण थी तथा वे उस समय की समस्त विद्याओ से परिचित थे। काव्यमीमासा को देखने से उनकी अद्वितीय प्रतिभा का पता चलता है। उनकी जीवन–संगिनी अवन्तिसुन्दरी उच्चकोटि की विदुषी थीं। राजशेखर ने काव्यमीमांसा मे स्थान–स्थान पर अवन्तिसुन्दरी के मत का सादर उल्लेख किया है। कर्पूरमञ्जरी का प्रथम अभिनय उन्ही के आदेश से किया गया था। हेमचन्द्र के अनुसार वे "देशीशब्दकोश" की प्रणेता हैं।

राजशेखर पर बड़बोलेपन का आरोप लगाया जाता है, कि—उन्होने अपने को खुद वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ एवं भवभूति का अवतार बताया है,[1] वे खुद अपने को कवियों की सर्वोत्तम श्रेणी 'कविराज' की पदवी से अलकृत करते हैं, इत्यादि। परन्तु यह राजशेखर का बड़बोलापन नहीं अपितु वास्तविकता है। वाल्मीकि का काव्य उनकी अनुभूति का विषय है। वाल्मीकि के समक्ष कोई पूर्व निर्मित काव्य मार्ग नहीं था, जिसका वे अनुशरण करते, अपितु उन्हे तो खुद अपना मार्ग खोजना एवं दूसरो के लिए मार्ग निर्मित करना पड़ा था। इसी प्रकार राजशेखर का कृतित्व भी उनकी

---

१. बालरामायण—१/१६

अनुभूति का परिणाम है। उन्होनें अनुभव किया कि समाज के एक समूह विशेष की नृत्यशैली या नाट्य परम्परा तथा भाषा इतनी सामर्थ्यवती है, कि उसके आश्रय मे एक उत्कृष्ट नाट्यकृति की रचना की जा सकती है। कवियो को निर्देशित करने वाले कविशिक्षा ग्रन्थ की आवश्यता की अनुभूति भी उन्हे हुई। इस प्रकार वाल्मीकि की भाँति राजशेखर ने अपनी अनुभूति को कर्पूरमञ्जरी एव काव्यमीमासा के रूप मे मूर्त्त रूप दिया, तथा वे सट्टक एव कविशिक्षा सम्प्रदाय के सस्थापक बन गये।

हयग्रीव-वध महाकाव्य के रचनाकार भर्तृमेण्ठ वाल्मीकि के विपरीत शास्त्रीय कवि है। उन्होंने काव्यशास्त्र की मान्यताओं का पालन करते हुए साहित्य सर्जन किया है। राजशेखर को भी हम शास्त्रीय मान्यताओं का परिपालन करते हुए पाते है। विद्वानो द्वारा सट्टक के लक्षणानुसार उन्होने कर्पूरमञ्जरी सट्टक का प्रणयन किया है, साथ ही इसके प्रारम्भ मे सट्टक का विद्वत्सम्मत लक्षण भी प्रस्तुत किया है।

भवभूति की भाँति राजशेखर पूर्ण आत्मविश्वास एव अपूर्व साहस के धनी कवि हैं। राजशेखर ने प्राकृत भाषा मे नाट्य रचना का जो कार्य किया है, वह कोई साधारण कवि कदापि नही कर सकता, क्योकि उसे सदैव इस बात का भय रहता है कि कदाचित् उसके काव्य को प्रतिष्ठा नही मिल पाये। अतएव वह मात्र वैसी ही रचना मे प्रवृत्त होता है, जो आसानी से प्रतिष्ठित हो सके,अर्थात जिसकी अधिकाश माग हो। राजशेखर ने इसकी परवाह न करते हुए, पूरे आत्मविश्वास के साथ प्राकृत भाषा को अपनी कृति का आधार बनाया। ऐसा ही भवभूति ने भी किया था। भवभूति ने करते हुए कि विद्वत समाज उसकी नाट्यकृति को समादृत करेगा कि नहीं; शृङ्गार या वीर रस प्रधान नाट्य लिखने की अब तक की परम्परा से हटकर, करूण रस का अंगी–रस के रूप में आश्रय लेते हुए 'उत्तररामचरितम्' जैसा महान नाटक लिखा था एवं उस रूप मे अपने को प्रमाणित किया था। राजशेखर ने भी उसी प्रकार नयी परम्परा का प्रवर्तन कर अपने को प्रमाणित किया। उनकी

कृति कर्पूरमञ्जरी जनभाषा मे निबद्ध होने के कारण जन–जन की कण्ठाहार हो गयी।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि राजशेखर मे वाल्मीकि भर्तृमेण्ठ एव भवभूति के गुण समाहित है। ऐसा कवि सामान्य कवि नही,निश्चय ही कविशिरोमणि है। उसे अपने को वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ एवं भवभूति का अवतार बताने का पूरा हक है। निश्चय ही वह कविराज की पदवी पर प्रतिष्ठित होने योग्य है। और फिर वह समय, जब कवि समाज मे अपनी विद्वता प्रदर्शित करने की होड़ सी लगी थी, ऐसी परिस्थिति मे अपने विषय मे सगर्व बताना प्रसगानुकूल ही था।

राजशेखर ने राजसी विलासिता की विषय वस्तु वाली कथा को लोकभाषा मे निबद्ध किया था। निश्चय ही इस रूप मे वे एक साथ उन दोनो ही वर्गों, सामान्य जन एव राजपरिवार के लिए साहित्य सर्जना कर रहे थे। यह एक ही तीर से दो निशाने लगाने का उनका प्रयास था, जिसमें एक तो जन–सामान्य अपनी भाषा के माध्यम से राजाओं की विलासिता से अवगत हो सके। दूसरी तरफ राजकथा वाले नाट्य का,राजदरबारो मे होने वाले मचन के माध्यम से, जनभाषा को राजदरबारो मे प्रतिष्ठा मिल सके। और यह कहा जा सकता है कि वे इसमे सफल रहे होंगे।

राजशेखर वस्तुतः कविराज थे। संस्कृत,प्राकृत पैशाची तथा अपभ्रंश भाषाओं मे उनकी अवाधगति थी तथा इन भाषाओ में उनकी ललित लेखनी कमनीय कविता की सृष्टि करती थी। राजशेखर का बहुभाषाज्ञान एक विलक्षण वस्तु है, जिसे उन्होने स्वय इस प्रकार प्रकट किया है–

गिरः श्रव्यादिव्याः प्रकृतिमधुराः प्राकृतधुराः
सुभव्योऽपभ्रन्स सरसरचनं भूतवचनम्।
विभिन्नाः पन्थानः किमपि कमनीयाश्च ते इमे
निबद्धा यस्त्वेषा स खलु निखिलेऽस्मिन् कविवृषा।।

राजशेखर भूगोल के महान ज्ञाता थे। भारत के प्राचीन भूगोल की अनुपम सामग्री काव्यमीमासा मे भरी पड़ी है। बालरामायण का दशम अक भी भौगोलिक वर्णनों से परिपूर्ण है। उन्होने भूगोल से सम्बन्धित 'भुवनकोश' नामक एक ग्रन्थ भी लिखा था, जो आज उपलब्ध नही है। ये कालिदास एवं महाराज हर्ष से प्रभावित प्रतीत होते है। अतः निश्चय ही इन्होने साहित्य सर्जना से पूर्व साहित्यों का गाढ़ानुशीलन किया रहा होगा। राजशेखर की प्रतिभा महाकाव्य निर्माण के लिए अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है।

विश्वेश्वर

शृंङ्गारमञ्जरी सट्टक के रचनाकार के रूप मे विश्वेश्वर का नाम प्रसिद्ध है। किन्तु राजशेखर की भाँति विश्वेश्वर अभिधान धारण करने वाले भी अनेक सस्कृत कवि हो चुके है। अतः शृङ्गारमञ्जरीकार विश्वेश्वर की पृथक पहचान हेतु विश्वेश्वर नामधारी समस्त कवियो का परिचय प्रस्तुत करना अपेक्षित है।

विश्वेश्वर नाम धारण करने वाले कवि–

(क) श्रीधरदास द्वारा उद्धृत विश्वेश्वर–बगाल के शासक लक्ष्मणसेन के माण्डलिक बटुदास के पुत्र श्रीधरदास ने अपनी कृति–"सदुक्तिकर्णामृत" (१२०५ ई०) मे चुने लेखकों की सूक्तियो को शामिल किया है,[१] जिसमे विश्वेश्वर नामक कवि का उल्लेख है। निश्चय ही ये १२वी या उससे पूर्ववर्ती सदी के कोई कवि होगे।

(ख) चमत्कारचन्द्रिकाकार विश्वेश्वर–विश्वेश्वर या विश्वेश्वर कविचन्द्र नाम से प्रसिद्ध ये वैकटगिरि के शासक शिगभूपाल (१३३० ई०) के दरबारी कवि थे। ये रसमीमांसा के लेखक काशीश्वर मिश्र के शिष्य थे।[२] उन्होने "चमत्कारचन्द्रिका" नामक अलङ्कारशास्त्र विषयक विवेचनात्मक कृति का प्रणयन किया, जिसके उदाहरणो मे शिगभूपाल की प्रसशा है। शिंगभूपाल–रचित रसार्णवसुधाकर के वास्तविक लेखक विश्वेश्वर ही प्रतीत होते है।[३]

(ग) चन्द्रालोक के टीकाकार विश्वेश्वर– जयदेवकृत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ चन्द्रालोक पर 'राकागम' अथवा 'सुधागम' नामक टीका लिखने वाले गंगाभट्ट का उपनाम विश्वेश्वर था। इनका जन्म बनारस के प्रसिद्ध मराठा भट्ट परिवार मे हुआ था। ये "दिनकरोद्योत" नामक ग्रन्थ के प्रणेता मीमासक

---

१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ ३८५ एव १०७३ (इन्डेक्स)

२. सस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ० सुनील कुमार डे, पृष्ठ २५५

३. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ ७७१

दिनकर (या दिवाकर) भट्ट के पुत्र एव रामेश्वर के प्रपौत्र थे। उन्होंने १६७४ ई० मे शिवाजी का राज्याभिषेक किया था। १६८०-८१ई० में सम्भाजी को इन्होंने स्वरचित "समय-नय" समर्पित किया था। इन्होने मीमांसा तथा स्मृति विषयक कई ग्रन्थ भी लिखे।[1]

(घ) लक्ष्मीधर के पुत्र विश्वेश्वर-ये भृगारमञ्जरी सटट्क के प्रणेता है। अपेक्षाकृत अर्वाचीन कवि होने के कारण इनके विषय मे अपेक्षाकृत अधिक जानकारी उपलब्ध है। इनके सम्बन्ध मे सविस्तार चर्चा आगे की जायेगी।

(ङ) गीतगोविन्द के टीकाकार विश्वेश्वर-जयदेवकृत गीतगोविन्द के टीकाकार के रूप मे विश्वेश्वर नाम आता है।[2] इस टीका की पाण्डुलिपि तन्जौर के पुस्तकालय में सुरक्षित है।[3]

(च) बीसवीं सदी के कवि विश्वेश्वर-बीसवी सदी के कवि विश्वेश्वर विद्याभूषण चट्टला नगरी के निवासी थे। इनके पिता का नाम कृष्णाकान्त कृतिरत्न एवं माता का नाम कुसुमकामिनी देवी था। इन्होंने अपने पिता से तथा बाद में चट्टला संस्कृत महाविद्यालय में शिक्षा पायी थी। ये चट्टला सस्कृत महाविद्यालय मे अध्यापन कार्योपरान्त सेवा निवृत्त हुए। इन्होने सस्कृत भाषा मे 'मणिमालिका' नामक कथा 'वनवेणु' नामक गीतकाव्य, 'काव्यकुसुमाञ्जलि' एवं 'गंङ्गासुर तरङ्गिणी' नामक खण्डकाव्यों के साथ-साथ चाणक्याविजय, द्वारावती, भरतमेलन जैसे लगभग १५ रूपको का प्रणयन किया, जिसमें कुछ प्रकाशित एव कुछ अप्रकाशित है।[4]

भृङ्गारमञ्जरीकार विश्वेश्वर—

लक्ष्मीधर के पुत्र विश्वेश्वर भृङ्गारमञ्जरी सटट्क के रचनाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। अपेक्षाकृत अर्वाचीन कवि होने के कारण भृङ्गारमञ्जरीकार के विषय मे पर्याप्त जानकारी उपलब्ध होता है।

---

१. सस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ० सुनील कुमार डे, पृष्ठ १८७-१८९

२. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ ३४२

३. वही, पृष्ठ १०७३ (इण्डेक्स)

४. आधुनिक सस्कृत नाटक-भाग-२, रामजी उपाध्याय, पृष्ठ १०२६

डॉ० जगन्नाथ जोशी जी ने शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की भूमिका मे एव श्री लक्ष्मीदत्त जोशी महोदय नें अवध विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत अपने शोध प्रबन्ध-"सस्कृत काव्यशास्त्र परम्परा मे आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय का योगदान" मे पण्डित विश्वेश्वर के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है।

विश्वेश्वर एवं उनका वंश-

विश्वेश्वर पाण्डेय[1] वर्तमान उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा नगर के समीपवर्ती 'पटिया' नामक ग्राम के निवासी थें। उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले के खोर नामक गाव के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उनके मूलपुरुष गजाधर के चार पुत्र थे-देवदत्त, हरिदत्त, शम्भूदेव तथा श्रीवल्लभ। इनमे श्रीवल्लभ तात्कालिन-चन्द्रवश के राजा के राज्यकाल में खोर गांव से कुमायूँ आये। प्राप्त वशावती के शीर्षभाग मे प्रमाणस्वरूप इस प्रकार एक श्लोक मिलता है-

श्री खोरग्रामवास्तव्यः कान्यकुब्जकुलाग्रणीः।
श्रीवल्लभः समायातः कूर्माद्रौ गणपर्वते।।

इस वंश का गोत्र भरद्वाज था। यह वश चन्द्रवश के शासको का राजगुरु था। राजगुरु होने से पटिया गाव इनके वंशजो को जागीर मे मिला था। विश्वेश्वर पाण्डेय के प्रत्यक्ष पूर्वजो एव वंशजो की वंशावली इस प्रकार उपलब्ध होती है।

गजाधर→श्रीवल्लभ→पद्मदेव→भवदेव→विष्णुदेव→मधुसूदन→जगन्नाथ→महेश्वर→वैकुण्ठ→वेणु (विणि)→भरत→नारायण→लक्ष्मीधर→विश्वेश्वर→जयकृष्ण→जीवनाथ→गङ्गेश्वर (गगाधर)→भुवनेश्वर→मुनीश्वर→देवेश्वर (चुन्नीलाल)। चुन्नीलाल १९१० ई० तक जीवित रहे, इनके

---

१. (क) शृङ्गारमञ्जरी सट्टक-प्रस्तावना, डॉ० जगन्नाथ जोशी

(ख) सस्कृत काव्यशास्त्र परम्परा मे आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय का योगदान, (अवध विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध) डॉ० लक्ष्मीदत्त जोशी।

बाद यह वश नही चल पाया। मुरादाबाद मे इनकी पत्नी ने एक पुत्र को गोद लिया, लेकिन वह परिवार छोड़कर चला गया। विश्वेश्वर के जयकृष्ण के साथ–साथ परशुराम नामक एक अन्य पुत्र का उल्लेख भी प्राप्त होता है। विश्वेश्वर के बड़े भाई का नाम महानन्द एव छोटे भाई का नाम उमापति था। विश्वेश्वर के पिता लक्ष्मीधर के दो बड़े भाई विश्वरूप और रामेश्वर थे। विश्वरूप अल्मोड़ा के चन्द्रवंशीय राजा वाजबहादुर चन्द्र (१६३८–१६७८ ई०) के राजगुरु थे। उन्हे राजदूत के रूप मे औरगजेब के दरबर में भेजा गया था। विश्वरूप के बाद उनके पुत्र श्रीनिवास भी वाजबहादुर चन्द्र के समय राजगुरु रहे।

विश्वेश्वर के पिता पण्डित लक्ष्मीधर साहित्य एव व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होने विश्वेश्वर को स्वय पढ़ाया, जिसकी पुष्टि विश्वेश्वर द्वारा अपने सभी ग्रन्थो के मगलाचरण मे अपने पिता की गुरु रूप में की गयी स्तुतियों से होती है। अपने पिता के अतिरिक्त इन्होंने विश्वरूपात्यज यशोधर जी, जो इनके बड़े चचेरे भाई थे, से भी विद्या अध्ययन किया था, ऐसी कुमायूँ मे प्रसिद्धि है।[1]

विश्वेश्वर का समय—

विश्वेश्वर पाण्डेय को हम, उनके ग्रन्थ 'अलङ्कारकौस्तुभ' और 'वैयाकरण-सिद्धान्तसुधानिधि' मे भट्टोजि दीक्षित एव पण्डितराज जगन्नाथ (१६३०-१६६०) के मतो का खण्डन करते हुए पाते है। किन्तु कही भी उन्होने भट्टोजि दीक्षित के पौत्र हरिदीक्षित अथवा प्रसिद्ध वैयाकरण नागेशभट्ट के मत का उल्लेख का नहीं किया है। अतः विश्वेश्वर निश्चय ही भट्टोजि दीक्षित एवं पण्डितराज जगन्नाथ के परिवर्ती तथा हरिदीक्षित के पूर्ववर्ती या समकालीन है। ऐसा कहा गया है कि हरिदीक्षित काशी मे विश्वेश्वर से मिले थे।

विश्वेश्वर के पुत्र जयकृष्ण ने शक सवत् १६३८ (सन् १७१६) में श्रावण शुक्ला दशमी तिथि को विश्वेश्वर-विरचित 'समञ्जसा' को लिपिबद्ध किया था।[2] 'समञ्जसा' की रचना से पूर्व विश्वेश्वर,

---

१. डॉ० लक्ष्मीदत्त जोशी एव स्थानीय लोगों से प्राप्त सूचनाओ पर आधारित।

२. दिग्गुणर्तुशशलाञ्छनयुक्ते शालिवाहनशके जयकृष्णः।
श्रावणीयसितपक्षदशम्या निर्मितिं पितुरिमां विलिलेख।।—(मन्दारमञ्जरी—भूमिका, पृष्ठ २ पर उद्धृत)

एक नाटिका, दो नाटक, एक सट्टक, अलकारकौस्तुभ, वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधि, तर्ककुतूहल और नैषधभावप्रदीप की रचना कर चुके थे, क्योकि इनका नाम समञ्जसा मे आता है। विश्वेश्वर के द्वितीय पुत्र परशुराम ने शक सवतः १६३८ (सन् १७१६ ई०) मे ही भावप्रदीप नामक नैषधकाव्यटीका को लिपिबद्ध किया था।[1] इस आधार पर कहा जा सकता है, कि—विश्वेश्वर के ग्रन्थो का रचनाकाल १७१६ ई० से पूर्व ही था। कदाचित् उनकी मृत्यु के बाद ही उनके पुत्रो ने अपने पिता के यशस्वी वैदुष्य का प्रसार करने के लिए लिपिबद्ध करने का कार्य किया है।

इन्ही सब प्रमाणो के आधार पर डॉ० जगन्नाथ जोशी महोदय ने उनके ग्रन्थो का रचनाकाल १६९४ से १७११ ई० के मध्य माना है। विश्वेश्वर पाण्डेय के जीवनकाल के सम्बन्ध मे तीन मत प्राप्त होते है—३२ वर्ष, ३४ वर्ष एव ४० वर्ष का। इस आधार पर जोशी महोदर कुछ हेर-फेर के साथ विश्वेश्वर पाण्डेय के जीवनकाल को १६७५ से १७१५ ई० के मध्य मानने के पक्ष मे है।[2] जबकि आचार्य बल्देव उपाध्याय ने इनके जीवनकाल के लिए अट्ठारहवी सदी के प्रथम चतुर्थांश शब्द का प्रयोग किया है।[3]

विश्वेश्वर की जन्मभूमि एवं कर्मभूमि—

अल्मोड़ा के समीपवर्ती पटिया गाव के निवासी लक्ष्मीधर, वृद्धावस्था में पुत्र प्राप्ति की कामना से अपनी धर्मपत्नी के साथ काशी मे रहने लगे। उन्होने मणिकर्णिकाघाट पर कोटिशिवार्चन अनुष्ठान

---

१ अस्मिन् व्याकरणत्रयीरसरसासख्याः समा बिभ्रति
श्रीहालस्य शकेऽधिपञ्चमि सहोमासस्य पक्षे सिते।
श्रीहर्षोक्तिषु नैषधीयचरिते भावप्रदीपा कृति
श्रीताताङ्घ्रिसरोरुहा प्रथयितु प्राक्पर्शुरामोऽलिखत्।।—(भावप्रदीपटीका—अतिमसर्ग (पाण्डुलिपि), सरस्वती भवन ग्रन्थसूची—भाग-२, पाण्डुलिपि न०—४११३४-४१)

२. शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की प्रस्तावना, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ६

३. सस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५८२

विधि को सम्पादित किया। तदननन्तर भगवान विश्वनाथ ने स्वप्न मे दर्शन देकर अपने समान पुत्र प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया। सात मास बाद ही उन्हे पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। विश्वनाथ की कृपा से प्राप्त होने के कारण नवजात शिशु का नाम विश्वेश्वर रखा गया।[1] इस प्रकार विश्वेश्वर पाण्डेय का जन्म काशी मे हुआ था।

विश्वेश्वर के पश्चात् उनके वशजों को हम कूर्माचल मे प्रतिष्ठित पाते है। साथ ही विश्वेश्वर ने अपने को 'कूर्माचल–चक्रवर्ती–गुरु'[2] भी घोषित किया है। इससे प्रतीत होता है कि विश्वेश्वर का कर्मक्षेत्र कूर्माचल ही रहा होगा। पडित विश्वेश्वर ने भट्टोजि दीक्षित के पौत्र हरिदीक्षित को शास्त्रार्थ मे पराजित किया था एव उन दोनो की मुलाकात काशी में हुई थी।[3] इस प्रकार अनुमान किया जा सकता है, कि–विश्वेश्वर का कार्यक्षेत्र काशी भी रहा है। डॉ० लक्ष्मीदत्त जोशी महोदय की सूचनानुसार विश्वेश्वर का अधिकतर समय अनूपशहर मे बीता। इसके अतिरिक्त वे काशी तथा अल्मोड़ा में भी रहे।

विश्वेश्वर का कृतित्व—

विश्वेश्वर पाण्डेय ने अलङ्कारशास्त्र, व्याकरण, दर्शन, नाटक, धर्मशास्त्र एव तन्त्रशास्त्र—इन विभिन्न विषयो पर अनेक ग्रन्थो का प्रणयन किया है, जो उनकी विचित्र प्रतिभा का प्रमाण है। आश्चर्य का विषय है, कि उनके अनेक ग्रन्थ कूर्माचल मे प्राप्त नही हुए, अपितु अनूपशहर, बरेली,

---

१. (क) "अयं च वार्धक्ये एवानपत्यत्वक्लेशसन्तप्तमानसाभ्यां दम्पतीभ्या प्रपप्तव्रततपः प्रसन्नेन यदृच्छया निग्रहानुग्रहयोः प्रभवता पार्वतीजानिना विश्वेश्वरेण मत्सदृशपुत्रमाप्नुहीति वितीर्णवरप्रसादात्समासादित पुत्र इति विश्वेश्वर एव भक्तमनोरथपूरणावतीर्ण इति वदन्ति।"—वैराकरणसिद्धान्तसुधानिधि भूमिका, माधवशास्त्री, पृष्ठ ३

(ख) आर्यासप्तशती—भूमिका, पृष्ठ १ (डॉ० जगन्नाथ जोशी, शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की प्रस्तावना मे उद्धृत)

२. वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधि, पृष्ठ ७१

३. शृङ्गारमञ्जरी—प्रस्तावना, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ५

वाराणसी, अलवर, मद्रास, पूना तथा नेपाल मे सुरक्षित है। अविकल रूप से सब ग्रन्थ एक स्थान पर नही मिलते। वाराणसी मे संस्कृत विश्वविद्यालयीय सरस्वती भवन ग्रन्थागार मे अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं। कुछ ग्रन्थ काशी मे ही गणेशदत्त शास्त्री जी के निजी हस्तलिखित पुस्तक सग्रह मे सुरक्षित है। नेपाल के राष्ट्रीय पुस्तकालय मे भी कुछ ग्रन्थ उपलब्ध हो सकते है। नेपाल के स्वर्गीय राजगुरु हेमराज पण्डित जी ने अपने निजी पुस्तकालय मे इनके अनेक ग्रन्थो की प्रतिलिपि कराई थी। इनके लिखे ग्रन्थो की तालिका 'आफ्रेक्ट' ने अपने 'कैटलागस कैटलागर' (ग्रन्थ और ग्रन्थकारों की सूची) मे दी है, जो इस प्रकार है—(१) अलङ्कारप्रदीप (२) अलङ्कारकौस्तुभ (३) अलङ्कारमुक्तावली (४) रसचन्द्रिका (५) तर्ककुतूहल (६) तत्वचिन्तामणिदीधितिप्रवेश (७) कवीन्द्रकर्णाभरण (८) समञ्जसा (९) काव्यरत्नम् (१०) वैयाकरणसिद्धान्त सुधानिधिः (११) अशौचीयदशश्लोकीविवृत्तिः (१२) अभिधेयार्थचिन्तामणि (१३) आर्यासप्तशती (१४) मन्दारमञ्जरी (१५) रोमावलीशतकम् (१६) नैषधभावप्रदीप (१७) काव्यतिलक (१८) षड्ऋतुवर्णनम् (१९) होलिकाशतकम् (२०) वक्षोजशतकम् (२१) लक्ष्मीविलासः (२२) रुक्मिणीपरिणयम् (२३) अभिरामराघवम् (२४) नवमालिका (२५) शृङ्गारमञ्जरी।[1]

इनमे से कुछ स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं तथा कुछ टीकाये है। इनमे से कुछ उपलब्ध हैं तथा कुछ अनुपलब्ध है। उपलब्ध ग्रन्थो मे भी कुछ अभी अप्रकाशित है। इन सभी कृतियों का विषयानुसार संक्षिप्त परिचय क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) काव्य-शास्त्र विषयक ग्रन्थ—

(i) अलङ्कारप्रदीप—यह ग्रन्थ पहली बार अलङ्कार-शास्त्र को आरम्भ करने वाले पाठको के लिए लिखा गया जान पड़ता है, क्योकि—इसमें केवल अर्थालङ्कारो को सरल शब्दावली मे प्रस्तुत किया गया है। इसमें अलङ्कारो के स्वरूप पर गहन शास्त्रीय विचार नही किया गया है। कुल ११९

१. कैटलागस कैटलागरम—भाग २, डियोकर आफ्रेक्ट, पृष्ठ १३९

अर्थालङ्कारो के सामान्य लक्षण एव स्वरचित पद्यो मे उदाहरण दिये गये है। १९२३ ई० मे विष्णुप्रसाद भण्डारी के सम्पादकत्व मे, चौखम्बा सस्कृत सीरीज वाराणसी से प्रकाशित हो चुका है।

(ii) अलङ्कारकौस्तुभ—यह अलङ्कार-शास्त्र का एक प्रौढ़ ग्रन्थ है। नव्य न्याय शैली मे निबद्ध इस कृति में मम्मट सम्मत ६१ अर्थालङ्कारों के विभिन्न मतों का खण्डन-मण्डन परक शास्त्रीय विवेचन है। इसमे पण्डितराज जगन्नाथ के मतो का अधिकतर खण्डन किया गया है। अप्पय दीक्षित का भी उन्होने उल्लेख किया है। अपने कनिष्ठ भ्राता उमापति का भी लेखक ने उल्लेख किया है। शास्त्रकार ने प्रसङ्गतः इसमे व्याकरण, न्याय, मीमासा, वेदान्त आदि सभी शास्त्रों की चर्चाये की है, अनेक शास्त्रकारो के उदाहरण दिये है। जिससे यह ग्रन्थ सर्वाङ्गपूर्ण बन गया है। विश्वेश्वर ने इस ग्रन्थ पर अपनी स्वोपज्ञ टीका भी लिखी है, जो परिकरालङ्कार तक ही मिलती है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन, लेखक की अपनी मूल शब्दावली सहित, शिवदत्त तथा के०पी० परब महोदयो के सम्पादकत्व मे १८८९ ई० मे, निर्णय सागर प्रेस बम्बई से हुआ है।

(iii) अलङ्कारमुक्तावली—अलङ्कार कौस्तुभ की रचना के उपरान्त, संभवतः उसे समझने के लिए एक अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा का अनुभव करते हुए आचार्य ने इसकी रचना की थी।[1] इसमे प्रस्तुत अलङ्कारो के लक्षण वही है जो अलङ्कारकौस्तुभ में है, परन्तु वृत्ति एवं उदाहरण भिन्न है। इसमे अन्य कवियो द्वारा रचित उदाहरणों के साथ-साथ स्वरचित उदाहरण भी आचार्य ने प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन चौखम्बा सस्कृत सीरीज वाराणसी से विष्णुप्रसाद भण्डारी महोदय के सम्पादकत्व में १९२७ ई० मे हो चुका है। (अलङ्कारमुक्तावली नाम की रामसुधीश्वर, कृष्ण दीक्षित एव लक्ष्मीधर दीक्षित की अन्य कृतियाँ भी उपलब्ध होती हैं।)

(iv) रसचन्द्रिका—यह काव्यशास्त्र का सारभूत ग्रन्थ है। इसका प्रतिपाद्य विषय नायक–नायिका

---

१. नानापक्षविभावनकुतुकमलङ्कारकौस्तुभ कृत्वा।
सुखबोधाय शिशूना क्रियते मुक्तावली तेषाम्।।—अलङ्कारमुक्तावली

के भेद, वृत्ति निरूपण, रसनिष्पत्ति प्रक्रिया, रसभावादि विवेचन, मायारस की स्थापना के साथ-साथ उसका खण्डन आदि है। इसके उदाहरणो मे आचार्य ने स्वरचित पद्यो को भी प्रस्तुत किया है। इसका प्रकाशन चौखम्बा सस्कृत सीरीज वाराणसी से, १९२६ ई० मे विष्णु प्रसाद भण्डारी महोदय के सम्पादकत्व मे हो चुका है।

(v) कवीन्द्रकर्णाभरण—यह कवि शिक्षा सम्प्रदाय का ग्रन्थ है। चार अध्यायो में निबद्ध इस कृति मे चित्रकाव्य के ५८ भेदों का वर्णन है। इसमें पहेलियाँ, चक्रबन्ध, पद्मबन्ध, गोमूत्रिकाबन्ध आदि अनेक कठिन बन्धो का सफलतापूर्वक निबन्धन हुआ है। निर्णय सागर प्रेस बम्बई से१८९१ ई० मे यह प्रकाशित हो चुका है।

(vi) समञ्जसा (रसमञ्जरी टीका)—यह टीका ग्रन्थ है जो भानुदत्त प्रणीत रसमञ्जरी पर लिखी गयी है। इसमे विश्वेश्वर ने रसमञ्जरी के पूर्ववर्ती टीकाकारों के मतो की युक्ति पूर्वक आलोचना करते हुए काव्यशास्त्रीय तत्त्वो का विवेचन प्रस्तुत किया है। इसमें काव्य-स्वरूप, काव्य-भेद, रस-स्वरूप, नायक-भेद आदि का निरूपण है। यह 'व्यङ्ग्यार्थ कौमुदी' नाम से भी प्रसिद्ध है। यह अभी तक अप्रकाशित है, जिसकी पाण्डुलिपि सरस्वती भवन वाराणसी के ग्रन्थागार मे प्रकाशन की प्रतीक्षा मे है।

(vii) काव्यरत्नम्—यह अनुपलब्ध ग्रन्थ है। डॉ० जगन्नाथ जोशी महोदय ने इसके काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ होने का अनुमान किया है।[१]

(ख) व्याकरण विषयक ग्रन्थ—

(viii) वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधिः—यह रचना अष्टाध्यायी सूत्र क्रम में, पातञ्जल महाभाष्य के समान व्याकरण का आकर ग्रन्थ है। इसमे कात्यायन, पतञ्जलि, कैय्यट, भर्तृहरि, हरदत्त, जिनेन्द्रबुद्धि,

---

१ शृङ्गारमञ्जरी—प्रस्तावना, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १६

भट्टोजि दीक्षित आदि अनेक वैयाकरणों के मतो की चर्चा करते हुए शास्त्रीय एव दार्शनिक तत्वो को उद्घाटित किया गया है। इस ग्रन्थ में कात्यायन तथा पतञ्जलि के मतो की लाघव-गौरव चर्चा करते हुए विश्वेश्वर जी नें यथास्थान अनेक अस्पष्ट विषयो को स्पष्ट करतें हुए अपनें मत को स्थापित किया है। इसमे ३३ व्याकरण ग्रन्थ, ५ वेदिक ग्रन्थ, ६ वेदान्त ग्रन्थ, ५ मीमासा ग्रन्थ, ४ न्याय ग्रन्थ एव ७ साहित्य शास्त्र के ग्रन्थो के उद्धरणो को प्रस्तुत किया गया है।[१] इसमे नव्य न्याय की शैली मे व्याकरण शास्त्र के प्रमेयो को तर्क के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रन्थ अधूरे रूप मे (तृतीय अध्याय चतुर्थपाद के प्रथमाह्निक तक), चौखम्बा वाराणसी से प्रकाशित है, शेष अश रघुनाथ पुस्तकालय जम्बू मे प्रकाशन की प्रतीक्षा मे है।

(ग) न्याय-दर्शन विषयक ग्रन्थ—

(ix) तर्ककुतूहल—यह न्याय दर्शन का प्रकरण ग्रन्थ है। यह दो परिच्छेदों एव २४ अशो में विभक्त है। नव्य न्याय शैली से प्रभावित इस ग्रन्थ मे अनेक ग्रन्थकारो के उद्धरण दिये गये है। इसमे अद्वैत मत का खण्डन कर द्वैत मत का प्रबल समर्थन किया गया है। विश्वेश्वर पाण्डेय ने द्वैत मत का समर्थन करने के लिए अद्वैत वेदान्तियो के सिद्धान्तों के मूल में ही करारी चोट की है। वेदान्त दर्शन उपनिषद वाक्यो को प्रमाण मानते है, अतः ग्रन्थकार ने अद्वैत दर्शन की श्रुतिगम्यता का खण्डन कर युक्ति एवं प्रमाणों से उपनिषद वाक्यों का द्वैतपरक अर्थ प्रतिपादित किया है। साथ ही उन्होने ब्रह्मसूत्र, गीता, स्मृतियों, पुराणों आदि मे प्राप्त अद्वैत-परक मतो का भी खण्डन किया है। यह ग्रन्थ तर्कशास्त्र में विश्वेश्वर पाण्डेय की प्रवीणता को व्यक्त कर उन्हें नैयायिक धुरन्धर बतलाने के लिए पर्याप्त है। यह ग्रन्थ श्री नित्यानन्द स्मारक समिति वाराणसी में श्री जनार्दन शास्त्री पाण्डेय के सम्पादकत्व मे प्रकाशित हो चुका है।

(x) तत्वचिन्तामणिदीधितिप्रवेश—यह नव्य न्याय का एक व्याख्यात्मक ग्रन्थ है, जो गंगेशोपाध्याय-

---

१. द्रष्टव्य—प० माधवशास्त्री भण्डारी द्वारा लिखित प्रकृत ग्रन्थ की भूमिका के अंत मे दी गयी सूची।

प्रणीत 'तत्वचिन्तामणि' की 'दीधति' व्याख्या पर टीका है। इसमे तर्कशास्त्रीय विचारो का प्रणयन बड़ी प्रौढ़ता के साथ किया गया है। यह कृति, मूलग्रन्थ तथा उसकी दधीति नामक टीका के दुर्लभ न्याय मतो को प्रस्फुटतया उन्मीलित करती है। यह ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुका है।

(घ) धर्मशास्त्र विषयक ग्रन्थ—

(xi) अशौचीयदशश्लोकीविवृत्ति—धर्मशास्त्र विषयक यह ग्रन्थ सम्प्रति अनुपलब्ध है।

(ङ) तंत्रशास्त्र विषयक ग्रन्थ—

(xii) अभिधेयार्थचिन्तामणि—तन्त्रशास्त्र विषयक यह ग्रन्थ सम्प्रति अनुपलब्ध है।

(च) काव्य विषयक ग्रन्थ—

(xiii) आर्यासप्तशती—यह गीतकाव्य है। यह कृति गोवर्धनाचार्य-विरचित आर्यासप्तशती से भिन्न है। इसमे ७६४ मुक्तक आर्याओ का सकलन है। इसकी प्रारम्भिक आर्याओं में कवि ने देवी-देवताओं, कवियो व अपने गुरु एवं पिता लक्ष्मीधर तथा कुमायूँ नरेश रुद्रचन्द्र की वन्दना की है। बाद की आर्यायो मे वेद, दर्शन, व्याकरण आदि से सम्बन्धित शास्त्रीय चर्चाये सरसता पूर्वक की गयी है। इसमें भाषा तथा भाव दोनों उत्कृष्ट कोटि के है। विश्वेश्वर को अपने आर्या छन्द के प्रयोग पर गर्व था, और यह गर्व निष्कारण नहीं था। भाव तथा शब्द का संतुलन इस छोटे से छन्द मे जिस प्रभावकारी ढंग से विश्वेश्वर ने किया है, वह इनके अभिमान का यथार्थ कारण है। विश्वेश्वर ने इस ग्रन्थ की टीका भी लिखी है। इस कृति का प्रथम प्रकाशन चौखम्बा संस्कृतियाँ सीरीज से एव द्वितीय प्रकाशन उस्मानियाँ विश्वविद्यालय से हुआ है।

(xiv) मन्दारमञ्जरी—यह कथा कोटि का गद्य काव्य है, जिसके वर्णनक्रम एव शैली पर बाण का प्रभाव है। विश्वेश्वर पाण्डेय न्याय एवं व्याकरण का पण्डित होने के कारण शास्त्रीय उपमाओं के प्रदर्शन से अपने आप को रोक नहीं पाये हैं, जिससे यह गद्यकाव्य कादम्बरी की अपेक्षा दुरूह हो गया है। मन्दारमञ्जरी का पूर्वभाग ही विश्वेश्वर द्वारा प्रणीत है, इसके उत्तर-भाग की रचना

उनके पुत्र या शिष्य द्वारा की गयी है, ऐसी कर्णपरम्परा है। इसके पूर्व-भाग का प्रकाशन तारादत्त पत की सस्कृत टीका के साथ प्रोफेसर गोपालदत्त पाण्डेय के सम्पादन मे पर्वतीय प्रकाशन मण्डल, काशी से हुआ है। उत्तर-भाग अभी अप्रकाशित है।

(xv) रोमावलीशतकम्—१०१ शृङ्गार प्रधान पद्यों वाली इस कृति मे नायिका की रोमावली का मनोहारी वर्णन मिलता है, साथ ही रोमावली को जोड़ने वाली अधोवर्ती नाभि—गह्वर एव उर्द्धवर्ती वक्षद्वय का भी शृङ्गारिक वर्णन अति मनोरम लौकिक रूपकों द्वारा किया गया है। यह शतक काव्य, काव्यमाला सिरीज के अष्टम गुच्छक से प्रकाशित है।

(xvi) षड्ऋतुवर्णनम्—यह कृति अनुपलब्ध है। इसके नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें छहो ऋतुओ का वर्णन किया गया होगा।

(xvii) काव्यतिलक—यह शतक कोटि की रचना है। उसकी पाण्डुलिपि सरस्वती भवन वाराणसी के ग्रन्थागार मे सम्पादन की प्रतीक्षा में है।

(xviii) होलिकाशतकम्—यह कृति अनुपलब्ध है।

(xix) नैषधभावप्रदीप—यह श्रीहर्ष-प्रणीत महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' पर लिखित टीका ग्रन्थ है, जो सम्पूर्ण नैषधीयचरित पर उपलब्ध नही है। नैषध की पाण्डित्यपूर्ण दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाने वाले विद्वान विरले ही हैं। यह टीका नैषध के भाव को प्रकाशित करने वाली है। इसमे विश्वेश्वर ने अनेक पूर्ववर्ती टीकाकारों की आलोचना की है। यह सम्प्रति अप्रकाशित है। इसके प्रकाशित होने पर एक बड़े अभाव की पूर्ति होगी। इसकी पाण्डुलिपि सरस्वती भवन वाराणसी के ग्रन्थागार मे सुरक्षित है।

(xx) वक्षोजशतकम्—यह शतक काव्य अभी तक उपलब्ध नहीं हो पाया है।

(xxi) लक्ष्मीविलासः—यद्यपि यह काव्य अभी तक अनुपलब्ध है, किन्तु इसके सम्बन्ध में डॉ० जगन्नाथ जोशी महोदय का अनुमान है कि—यह शतक काव्य था, तथा कवि ने इसमें अपने पिता

एव गुरु लक्ष्मीधर की स्तुति के साथ–साथ उनकी जीवनी लिखी होगी।[१] यह अनुमान सत्य मे कितना निकट है? यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। यहाँ यह अनुमान भी किया जा सकता है कि—कवि ने धन देवी 'लक्ष्मी' के कार्यों, क्रियाओ, परिणामो आदि पर आधारित शतक काव्य लिखा होगा।

(छ) रूपक साहित्य—

(xxii) **रुक्मिणीपरिणयम्**—यह नाट्यकृति सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। अलङ्कारकौस्तुभ[२] एवं अलङ्कारमुक्तावली[३] मे इसके अनेक पद्य मिलते है। नाम के आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि—इसकी कथावस्तु, कृष्ण–रुक्मिणी विवाह से सम्बद्ध होगी। इसी नाम का एक अन्य नाटक उपलब्ध है जो त्रावणकोर के रामवर्मन् (१७३५-८७ ई०) द्वारा रचित है।

(xxiii) **अभिरामराघवम्**—यह कृति भी अनुपलब्ध है। डॉ० जगन्नाथ जोशी महोदय ने इसके नाट्य कृति होने का अनुमान किया है,[४] जबकि डॉ० लक्ष्मीदत्त जोशी महोदय का अनुमान है कि यह खण्डकाव्य रहा होगा।[५] अलंकारकौस्तुभ[६] एव अलकारमुक्तावली[७] मे इसके पद्य मिलते हैं।

(xxiv) **नवमालिका**—यह चार अङ्कों में निबद्ध नाटिका है, जो विजयसेन एवं नवमालिका की प्रेमकथा पर आधारित है। इस नाटिका का प्रधान रस शृङ्गार है। इसकी प्रस्तावना में नाटिकाकार ने नट द्वारा अपने गोत्र का परिचय करवाया है।[८] भाषा के आधार पर इसके कवि की प्रथम कृति

---

१. शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की प्रस्तावना, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १६

२. अलङ्कारकौस्तुभ, पृष्ठ २८१, ३८१

३. अलङ्कारमुक्तावली, पृष्ठ २४, ३६

४. शृङ्गारमञ्जरी प्रस्तावना, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १०

५. "सस्कृत काव्यशास्त्र परम्परा मे आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय का योगदान" डॉ० लक्ष्मीदत्त जोशी, पृष्ठ ९७

६. अलङ्कारकौस्तुभ, पृष्ठ १८०

७. अलङ्कारमुक्तावली, पृष्ठ ९, १८

८. नवमालिका नाटिका, पृष्ठ २

होने का अनुमान किया गया है।[1] यह 'मालवमयूर पत्रिका', मन्दसौर, म०प्र० से प्रकाशित है।

(XXV) शृङ्गारमञ्जरी—यह एक सट्टक है, जिसके विषय मे पिछले अध्याय मे लिखा जा चुका है एव शोधार्थ गृहीत कृति होने के कारण अगले अध्यायो मे इसकी सविस्तार चर्चा की जायेगी। यहाँ मात्र इनना कथनीय है, कि इसके उदाहरण अलङ्कारकौस्तुभ[2] और रसचन्द्रिका[3] में मिलते है। सर्वप्रथम इसका सम्पादन डॉ० ए०एन० उपाध्ये ने पूना विश्वविद्यालय की शोधपत्रिका मे १९६१ के अङ्क मे किया था। इस सट्टक की दो प्रतियाँ पूना के भण्डारकर शोधसस्थान मे विद्यमान थीं, जिसके आधार पर डॉ० उपाध्ये ने इस ग्रन्थ को सम्पादित किया। इसका द्वितीय प्रकाशन चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी से हुआ है, जिसे संस्कृतच्छाया, हिन्दी व्याख्या, साहित्यिक समीक्षा आदि से विभूषित करने का श्रेय कुमायूँ विश्वविद्यालय नैनीताल में (सन् १९९० ई०) उपाचार्य पद पर प्रतिष्ठित, डॉ० जगन्नाथ जोशी जी को है। डॉ० ए०एन० उपाध्ये ने चन्द्रलेहा सट्टक की विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना में विश्वेश्वर की इस कृति के विषय मे पर्याप्त प्रकाश डाला है।

विश्वेश्वर पाण्डेय प्रणीत उपर्युक्त कृतियों के रचनाक्रम के विषय मे निश्चित रूप से कुछ कह पाना कठिन है। कुछ कृतियों के अनुपलब्ध होने से यह समस्या और भी जटिल हो गयी है। फिर भी उनकी उपलब्ध कृतियों मे यत्र तत्र उनकी अन्य कृतियो का उल्लेख होने से, कुछ कृतियो का पूर्ववर्ती एवं परवर्ती होना ज्ञात हो जाता है। कुछ कृतियों का उनकी लेखन शैली, विषय वस्तु आदि के आधार पर पूर्ववर्ती का अनुमान किया जा सकता है। सम्भवतः इसी आधार पर डॉ० जगन्नाथ जोशी महोदय ने प्रकाशित एव कुछ अप्रकाशित कृतियो का क्रम इस प्रकार दिया है— नवमालिका, शृङ्गारमञ्जरी, अभिरामराघव, रुक्मिणीपरिणय, अलंकारकौस्तुभ, अलंकारप्रदीप, अलकारमुक्तावली, रसचन्द्रिका, वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधि, आयर्सिप्तशती, मन्दारमञ्जरी, कवीन्द्रकर्णाभरण, रोमावलीशतकम्, एवं तर्ककुतूहलम्।

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—प्रस्तावना, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ९

२. अलङ्कारकौस्तुभ, पृष्ठ ३४७

३. रसचन्द्रिका, पृष्ठ ९०

विश्वेश्वर का व्यक्तित्व

भगवान विश्वेश्वर के आशीर्वाद स्वरूप काशी मे उत्पन्न हुए, विश्वेश्वर पाण्डेय प० लक्ष्मीधर के सुपुत्र थे। इनका सम्पूर्ण परिवार ही वाग्देवी के वैभव–विलास से परिपूर्ण था। इनके पिता ने खुद ही इनके गुरु के दायित्व का भी निर्वाह किया था, जिसके लिए अपने ग्रन्थो के मगलाचरण मे पण्डित विश्वेश्वर, अपने गुरु एव पिता को असीम श्रद्धा के साथ नमस्कार ज्ञापित करते हुए कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। पंडित लक्ष्मीधर में पाण्डित्य के साथ–साथ कवित्व शक्ति का भी समन्वय था, यह उनके लिए प्रयुक्त विशेषणों से स्पष्ट होता है। विश्वेश्वर को यह शक्ति विरासत में प्राप्त हुई थी। इनके चचेरे भाई यशोधर जी उच्चकोटि के विद्वान थे। उनसे भी विश्वेश्वर ने शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त किया था। अपने छोटे भाई उमापति के प्रौढ़-पाण्डित्य का परिचय स्वय विश्वेश्वर ने 'अलकारकौस्तुभ' के परिकरालकार प्रकरण मे दिया है।

विश्वेश्वर बाल्यकाल से ही मेधावी थे। कहा जाता है कि प्रखर बुद्धि होने के कारण वह जिस शास्त्र का अध्ययन करते, उसी शास्त्र मे ग्रन्थ रचना भी तत्काल प्रारम्भ कर देते थे। दस वर्ष की अवस्था से ही उन्होने शास्त्रों पर ग्रन्थो का प्रणयन आरम्भ कर दिया था। एक किम्बदन्ती के अनुसार उन्होंने यशोधर जी से नैषध के अध्ययन के समय ही उसकी टीका लिखकर, उन्हे आश्चर्यचकित कर दिया था।

संस्कृत के विद्वानों में अनेक शास्त्रो के ग्रन्थ–प्रणयनकर्ता प्रायः कम ही मिलते हैं। सामान्यतः किसी एक शास्त्र पर अधिकार प्राप्त करना भी दुष्कर हो जाता है, और फिर अनेक शास्त्रों पर समान रूप से अधिकार प्राप्त कर ग्रन्थ प्रणयन करना अलौकिक प्रतिभा सम्पन्नता का ही द्योतक है। विश्वेश्वर पाण्डेय ऐसे ही कवियों मे एक है। वे आलोचनाशास्त्र के मर्मज्ञ एवं अपने युग के महान साहित्य स्रष्टा थे। उनका ज्ञान विशाल था। साहित्य, न्याय, व्याकरण, नाटक, गद्य, तन्त्र आदि विषयो पर जो कुछ भी इन्होने लिखा है; वह केवल उत्कृष्ट ही नहीं अपितु इन्हें संस्कृत साहित्य

में अमर बनाने वाला है। इन्होने विविध शास्त्रो पर मौलिक लेखन व्याख्या-रचना तथा खण्डन-मण्डन करके, एक ओर तो शास्त्रज्ञ एव समीक्षा कुशलता का परिचय दिया; तो दूसरी ओर सरस-काव्य-धारा की हर विधा यथा-खण्डकाव्य, शतक-काव्य, स्तोत्र-काव्य, ऋतु-काव्य, गद्य-काव्य, महाकाव्य-व्याख्या, नाटक, नाटिका, सट्टक, आदि पर ग्रन्थ रचना करके उच्चकोटिक प्रतिभामण्डित कवित्य को घोषित, प्रमाणित एवं सूचित किया है। सट्टक की रचना करके विश्वेश्वर जी ने अपनी प्राकृत विषयक क्षमता का परिचय दिया है।

साहित्यशास्त्रीय तत्त्वों की विवेचना एव नाट्य तत्त्वो की समीक्षा के लिए आपकी 'रसचन्द्रिका' एवं भानुदत्तरचित रसमञ्जरी की टीका 'समञ्जसा' पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करती है। अलंकारशास्त्र पर लिखे गये आपके ग्रन्थ अलंकारकौस्तुभ, अलकारप्रदीप तथा अलकारमुक्तावली काव्यशास्त्र पाण्डित्य के प्रतिबिम्ब ही है। नव्य-न्याय-शैली मे निबद्ध आपका अलकारकौस्तुभ ग्रन्थ, पाण्डित्य प्रदर्शन पूर्वक लिखा गया एव काव्यशास्त्रीय तत्त्वो का उद्घाटक है; जो सभवतः पूर्ववर्ती आचार्यो के काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, रसगगाधर आदि की शैली में निबद्ध होने से, उन-उन ग्रन्थो को हतप्रभ करने की दृष्टि से लिखा गया होगा। निश्चय ही विश्वेवर, भट्टोजि दीक्षित एव पण्डितराज जगन्नाथ के अनन्तर प्रधान मौलिक ग्रन्थकार है; जो संस्कृत की चिर-नूतनता को अपनी कृतियो द्वारा सुरक्षित रख गये हैं।

समग्र सस्कृत साहित्य में काव्यकला की मधुरता तथा दर्शनशास्त्र की प्रौढ़ता के समन्वय स्थल के रूप मे श्रीहर्ष का स्थान सर्वथा स्थापित है। इसी शैली के पथिक विश्वेश्वर पाण्डेय भी एक ओर शास्त्रज्ञ दार्शनिक हैं, तो दूसरी ओर सरस-काव्य-कला के धनी। इसीलिए आप ने श्रीहर्ष के प्रौढ़ महाकाव्य नैषधीयचरित पर, विद्वतापूर्ण 'भावप्रदीप' नामक टीका के द्वारा अपने व्याख्या कौशल को दर्शित कर उनसे साम्य स्थापित करने का सफल प्रयास किया है।

व्याकरण एवं न्याय, विश्वेश्वर के वैदुष्य के विशाल स्तम्भ हैं। उनका व्याकरण ग्रन्थ—

'सिद्धान्तसुधानिधि' भट्टोजि दीक्षित के 'सिद्धान्तकौमुदी' से किसी भी अश मे कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, किन्तु खेद है कि यह आज सम्पूर्ण रूप मे प्राप्त नहीं है।

न्याय-शास्त्र-कौशल के परगामी वैदुष्य के परिचायक दो ग्रन्थ 'तत्त्वचिन्तामणि-दीधिति-प्रवेश' एव 'तर्ककुतूहलम्' आचार्य पाण्डेय को विशुद्ध तर्कशास्त्रियो तथा नव्य-नैयायिको की अग्रपक्ति मे समासीन कर देते है। गगेशोपाध्याय जैसे महान नैयायिक की अमरकृति पर टीका लिखने का साहस विश्वेश्वर पाण्डेय के अतिरिक्त कौन कर सकता है।

विश्वेवर की बहुसंख्यक एवं बहुविषयक कृतियो से उनकी भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियो का ज्ञान होता है। सामान्यतः कवि शास्त्रीय या प्रौढ़ रचनाए उम्र के उत्तरार्द्ध में ही कर पाता है, परन्तु विश्वेश्वर के मन्दर्भ मे यह अति आश्चर्य का विषय है कि मात्र ३४ (या ३२ या ४०) वर्ष की उम्र तक के अपने जीवनकाल मे ही कवि ने सामान्य रचनाओ के साथ-साथ अनेक प्रौढ़ रचनाए की, जो उनकी विचित्र प्रतिभा का परिचायक है। निश्चय ही वे वयोवृद्ध होने का सौभाग्य नहीं प्राप्त कर पाये, परन्तु अपने कार्यों द्वारा उन्होने अपने आपको ज्ञानवृद्ध के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है।

राजशेखर एवं विश्वेश्वर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का तुलनात्मक परिशीलन

व्यक्ति अपने काल एवं परिवेश से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। राजशेखर एव विश्वेश्वर के व्यक्तित्व का जहाँ तक प्रश्न है, तो उनकी कालावधि मे लगभग सात शताब्दियों का अन्तर है। राजशेखर का अभ्युदय उस काल मे हुआ, जब कवियों में एक-दूसरे से बड़ा एव श्रेष्ठ कवि अपने को सिद्ध करने की होड़ लगी हुई थी। इसके लिए काव्य-सर्जना के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग हो रहे थे। राजशेखर ने भी अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करने हेतु, शिशु रूप में विद्यमान सट्टक विधा को कर्पूरमञ्जरी जैसा उपहार प्रदान कर, युग प्रवर्तक का कार्य किया। यह नवीं दशवी सदी

के उस परिवेश का ही प्रभाव था, कि—राजशेखर को खुद अपने लिए गर्वोक्तियाँ करनी पड़ी। जहाँ तक विश्वेश्वर की बात है, तो ये उस काल के विभूति है, जब भारत मे सस्कृतेत्तर भाषाओ मे साहित्य सर्जना का दौर उत्कर्ष पर था। ऐसे परिवेश मे सस्कृत एव प्राकृत भाषाओं में साहित्य सर्जना कर उसे लोकप्रिय बनाना, अपने आप न केवल बड़ी उपलब्धि है, अपितु इससे कवि का कवित्व स्वतः प्रमाणित हो जाता है।

राजशेखर एव विश्वेश्वर दोनो ही जन्मजात कवि थे। दोनो का परिवार विद्वानो का परिवार था। अतः दोनों को ही अपनी कवि प्रतिभा को निखारने हेतु तदनुकूल परिवेश के लिए भटकना नही पड़ा। दोनो ही विविध शास्त्रो के मर्मज्ञ एव बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। एक तरफ राजशेखर बहुभाषाविद् थे, तो विश्वेश्वर ने राजशेखर की अपेक्षा अधिक विषयों पर अपनी लेखनी चलाकर, अपनी बहुज्ञता सिद्ध की थी।

राजशेखर यद्यपि प्रतिभाशाली है, उन्होंने न केवल नाट्य कृतियो का प्रणयन किया है, अपितु काव्यशास्त्रों जैसे गभीर विषय पर भी विश्वेश्वर की भाँति अपनी लेखनी चलाई है, किन्तु वे आत्मश्लाघा करके अपने व्यक्तित्व के हल्केपन को उजागर करते हैं। अपने को सर्वभाषाचतुर कहने का प्रसग हो या भर्तृमण्ठ वाल्मीकि एव भवभूति का अवतार या अपने को कवियो मे सर्वश्रेष्ठ पदवी 'कविराज' से सुशोभित करने का प्रसग हो, ये सभी कथन उनके अहंकार को उद्घाटित करते हैं। यद्यपि विश्वेश्वर ने भी शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे अपने को अनेक उत्कृष्ट विद्वानों द्वारा सम्मानित[१], तर्कशास्त्र के शास्त्रार्थ में अजेय, सम्राट के आदेश की भाँति विद्वानों मे सम्मान्य आदेश वाला आदि[२] कहकर राजशेखर के मार्ग का ही कुछ हद तक अनुशरण किया है, फिर भी इनका कथन राजशेखर की अपेक्षा सहज प्रतीत होता है, जो उनकी अपेक्षाकृत सरल हृदयता को द्योतित करता है।

राजशेखर ने क्षत्रिय कन्या से विवाह करके अपनी सामाजिक एव राजनीतिक स्थिति भी

१. शृङ्गारमञ्जरी—१/८

२. शृङ्गारमञ्जरी—१/१२

मजबूत की थीं। 'ब्राह्मण क्षत्रिय कन्या से विवाह कर सकता है,' इस सैद्धान्तिक मान्यता को राजशेखर ने व्यवहारिकता प्रदान की, जो राजशेखर की दृढ़ता एव दृढ़ इच्छाशक्ति को द्योतित करता है। उन्होंने सामान्य परम्परा से हटकर वह कर दिखाया, जो उन्हे समाज की परवाह न करने वाले के रूप मे प्रतिष्ठित करता है। विश्वेश्वर इस दृष्टि से सामान्य एव सरल प्रवृत्ति के प्रतीत होते है।

राजशेखर एव उनके जीवनकाल के सम्बन्ध में विश्वेश्वर की अपेक्षा कम जानकारी है। उनकी कृतियो एवं कथनो के आधार पर अनुमानित उनका व्यक्तित्व विश्वेश्वर की अपेक्षा अधिक रहस्यपूर्ण है। राजशेखर अपने को सर्वभाषाचतुर कहते है। यदि हम विश्वेश्वर पर विचार करें तो इसमें सन्देह नहीं कि विश्वेश्वर सस्कृत एवं प्राकृत के अतिरिक्त अपने काल की सामान्य बोल–चाल की भाषा हिन्दी एवं अल्मोड़ा तथा वाराणसी से सम्बद्ध होने के कारण वहाँ की क्षेत्रीय बोलियों से अवश्य परिचित रहे होगे। परन्तु विश्वेश्वर ने इस प्रकार का कथन करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। विश्वेश्वर ने अपने अल्प जीवनकाल में विविध विषयो पर अनेक कृतियो का प्रणयन किया, जिससे वे विषयगत एव शैलीगत वैविध्य के कारण राजशेखर का अतिक्रमण कर गये है।

राजशेखर में विश्वेश्वर की अपेक्षा मौलिकता की कमी प्रतीत होती है। राजशेखर ने रामायण, महाभारत जैसे कथा के सम्पूर्ण कथानक को अपने नाट्यों का आधार बनाया है। वह स्वतन्त्र कथा का आधार लेकर अथवा रामायण, महाभारत के किसी अश विशेष को आधार बनाकर भी सुन्दर नाट्य लिख सकते थे, परन्तु यह नही कर सके है। कर्पूरमञ्जरी एव विद्धशालभञ्जिका की कथा मे भी वे अपने पूर्ववर्ती हर्ष आदि कवियों से पर्याप्त सहायता लेते हुए दिखते हैं। यद्यपि उन्होने इसमें कुछ परिवर्तन का प्रयास किया है, पर वह इतना स्वाभाविक नहीं बन पड़ा है जितना अपेक्षित है, जिसे कर्पूरमञ्जरी के प्रसङ्ग में आगे के अध्यायों में हम देखेंगे। राजशेखर के सम्बन्ध में यह भी नही कहा जा सकता कि कर्पूरमञ्जरी जैसे सट्टक विधा की कल्पना उनकी अपनी है। यह विधा पहले से विद्यमान थी, जैसा पिछले अध्याय में चर्चा की जा चुकी है, हाँ इतना अवश्य है कि सट्टक

के प्राकृत भाषा मे प्रणयन की परम्परा का सूत्रपात राजशेखर ने ही किया। दूसरी तरफ विश्वेवर मे मौलिकता कूट–कूट-कर भरी है। उन्होने अनेक ऐसे विषयो पर अपनी लेखनी चलाई जो सर्वथा नवीन था। शृङ्गारमञ्जरी मे भी उनके द्वारा कल्पित कथा सर्वथा स्वाभाविकता के साथ आगे बढ़ती है, जिसे हम आगे के अध्यायो मे देखेंगे।

राजशेखर एव विश्वेश्वर मे एक आश्चर्यजनक समानता यह है, कि दोनो का सम्बन्ध जीवन के किसी काल मे वाराणसी से अवश्य रहा है। जहाँ वाराणसी मे राजशेखर ने सभवतः अपनी वृद्धावस्था मे निवास कर देहावसान को प्राप्त किया, वहीं विश्वेश्वर ने वाराणसी में जन्म लेकर, वहाँ अपना बचपन व्यतीत किया।

●●●

तृतीय-अध्याय

कथावस्तु-विवेचन

कर्पूरमञ्जरी सट्टक का वस्तु-विवेचन

कर्पूरमञ्जरी का कथानक

कर्पूरमञ्जरी के कथानक का स्वरूप

(क) बाह्य स्वरूप

(ख) अन्तः स्वरूप

१-आधिकारिक एवं प्रासङ्गिक वृत्त

२-अर्थोपक्षेपक ३-नाट्योक्ति

४-अर्थप्रकृतियाँ ५-कार्यावस्थाये

६-सन्धि-योजना ७-सन्ध्यङ्ग-योजना

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक का वस्तु-विवेचन

शृङ्गारमञ्जरी का कथानक

शृङ्गारमञ्जरी के कथानक का स्वरूप

(क) बाह्य स्वरूप

(ख) अन्तः स्वरूप

१-आधिकारिक एवं प्रासङ्गिक वृत्त

२-अर्थोपक्षेपक ३-नाट्योक्ति

४-अर्थप्रकृतियाँ ५-कार्यावस्थायें

६-सन्धि-योजना ७-सन्ध्यङ्ग-योजना

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों के कथावस्तु का तुलनात्मक विवेचन

तृतीय-अध्याय

कथावस्तु-विवेचन

आचार्यो ने वस्तु, नेता एव रस को नाट्य के भेदक तत्व के रूप मे स्वीकार किया हैं;[1] जो अपनी बहुरूपता एव विभिन्नता के कारण दश प्रकार के रूपको एवं १८ या २० अथवा इससे से अधिक प्रकार के उपरूपको के भेद का आधार प्रस्तुत करते हैं। इनमे जो प्रथम भेदक तत्व वस्तु हैं; उसे ही कथा, इतिवृत्त, कथावस्तु, कथानक आदि नामो से भी जाना जाता हैं। रूपककार सामाजिक के समक्ष रङ्गमञ्च पर पात्रो के माध्यम से विभाव, अनुभाव एव संचारी भावो के द्वारा रस की पुष्टि कराता हुआ, जिन घटनाओ को प्रस्तुत करता हैं; वही उस रूपक की कथावस्तु हैं। इस प्रकार वस्तु का स्वरूप पात्र एवं रस की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं, क्योकि वही पात्र एव रस के लिए आधार प्रस्तुत करता हैं।

सट्टक मे कथावस्तु योजना का जहां तक प्रश्न हैं, यह नाटिका के समान ही हुआ करती हैं, केवल प्रवेशक एवं विष्कम्भक इसमें नही होता। इनके अभाव का कारण सम्भवतः यह हैं, कि इसकी कथानक योजना करते समय दर्शक के रूप मे जन-सामान्य को ध्यान मे रखा जाता होगा। इस दृष्टि से सूचित करने योग्य घटनाओ को भी अभिनीत कर प्रस्तुत करना ही उचित समझा गया होगा, जिससे जन-सामान्य उन घटनाओं को अच्छी तरह समझ सके, जो घटित हुई हैं तथा कथा प्रवाह की कड़ी को विच्छिन्न सा अनुभव करते हुए उनके रसानुभूति मे कोई बाधा न हो।

नाटिका की भांति सट्टक की कथा भी दृश्य विधान की दृष्टि से सामान्यतः चार भागो मे विभाजित होती हैं, जिसे अंक न कहकर जवनिकान्तर नाम दिया गया हैं। नाटिका की भांति इसका नायक भी प्रख्यात वंश में उत्पन्न एवं धीरललित होता हैं तथा कथा कवि-कल्पित होती हैं। इसमे अपने

---

१. वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः।—दशरूपक–१/१०

लक्षणों सहित शृङ्गार रस अङ्गी होता है। इस प्रकार सट्टक मे लघुकथा को नाटिका की अनेक विशेषताओ से युक्त करके प्रस्तुत करने का उद्देश्य कम से कम समय में सामान्य दर्शको को उस रसानन्द की अनुभूति कराना रहा है, जिसका आस्वादन नाटिका के अभिजात्य दर्शक किया करते थे।

कथावस्तु के अन्तर्गत आधिकारिक वृत्त के साथ-साथ आश्यकतानुसार प्रासगिक वृत्तो की भी योजना हुआ करती है। कथानक अर्थप्रकृतियों, कायवस्थाओं, अर्थोपक्षेपको, सधियो, सन्ध्यङ्गों आदि की दृष्टि से निबन्धित रहते हुए, फल की तरफ सतत् अग्रसर रहकर अन्ततः फल प्राप्ति के साथ पूर्ण हुआ करता है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक का वस्तु विवेचन

विवेच्य कृति कर्पूरमञ्जरी में सट्टककार ने जिस कथावस्तु को अपनी लेखनी द्वारा अनुरजित किया है, उसका नाट्यशास्त्रीय मान्यताओ के आधार पर विभिन्न प्रकार से विश्लेषण किया जा रहा है। सम्प्रति इसी सन्दर्भ में कर्पूरमञ्जरी का संक्षिप्त कथानक प्रस्तुत है।

कर्पूरमञ्जरी का कथानक—

चार जवनिकान्तरों मे निबद्ध कर्पूरमञ्जरी–सट्टक के प्रथम जवनिकान्तर मे, प्रस्तावना के बाद राजा चन्द्रपाल, रानी विभ्रमलेखा, विदूषक एव विचक्षणा का प्रवेश होता है। वसन्त के वर्णन को लेकर विदूषक एवं विचक्षणा में विवाद हो जाता है, जिससे विदूषक रुष्ट होकर चला जाता है, एवं पुनः भैरवानन्द नामक सिद्ध योगी को साथ लेकर लौटता है। भैरवानन्द राजा की इच्छा एवं विदूषक के परामर्श से विदर्भ नगर की राजकुमारी को अपनी योगशक्ति से प्रकट करता है। राजा कर्पूरमञ्जरी को देखकर उसके प्रति आकर्षित होता है। शशिप्रभा एवं वल्लभराज की पुत्री कर्पूरमञ्जरी रानी विभ्रमलेखा की मौसेरी बहन है। रानी उससे मिलकर बहुत प्रसन्न होती है एवं भैरवानन्द की अनुमति से उसे कुछ दिनों के लिए अपने पास रख लेती है।

द्वितीय जवनिकान्तर के आरम्भ मे ही ज्ञात हो जाता है कि—राजा एव कर्पूरमञ्जरी एक दूसरे पर आसक्त है। राजा कर्पूरमञ्जरी की स्मृति मे विह्वल है और उसके सौन्दर्य की बार-बार प्रशसा करता है। उधर कर्पूरमञ्जरी भी राजा पर मुग्ध हो उठी है। दासी विचक्षणा कर्पूरमञ्जरी द्वारा केतकी के पल्लव पर लिखित एक पत्र राजा को देकर उससे कर्पूरमञ्जरी की दशा का वर्णन करती है। विदूषक भी कर्पूरमञ्जरी के वियोग में राजा की दशा का वर्णन करता है। विचक्षणा एव विदूषक के सहयोग से राजा मरकतकुञ्ज मे छिपकर कर्पूरमञ्जरी को देखता है, जहाँ कर्पूरमञ्जरी महारानी द्वारा लगाये गये कुरबक, तिलक एव अशोक वृक्षों का क्रमशः आलिङ्गन, कटाक्षपात एव फटापादाघात द्वारा दोहदपूर्ति करती है। सन्ध्याकाल के साथ ही यह जवनिकान्तर समाप्त हो जाता है।

तृतीय जवनिकान्तर में, राजा एवं विदूषक अपने -अपने स्वप्न का वृतान्त सुनाते है। राजा को स्वप्न मे कर्पूरमज्जरी अपनी सय्या पर दिखाई पड़ी थी। किन्तु जैसे ही उसने उसका आंचल पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया था, वह हाथ छुड़ाकर भाग गयी थी एवं राजा की नींद खुल गयी थी। विदूषक के स्वप्नानुसार वह गङ्गजी की धारा मे सो गया और मेघों ने जल के साथ उसे पी लिया। मेघ के अन्दर छिपा हुआ वह जल की बूँदो के रूप मे सीपी मे गया, जहाँ मोती बन गया। विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरते हुए वह मोती की माला के रूप मे रानी के गले में गया था, जहाँ राजा द्वारा किये गये गाढ़ालिगन के कारण स्तनो के बीच दब जाने से उसकी नींद खुल गयी थी। इस प्रसंग में दोनों में प्रेम, यौवन एव सौन्दर्य पर चर्चा होती है। तदनन्तर राजा द्वारा कर्पूरमञ्जरी से मिलने, सुरग के रास्ते प्रेमदोद्यान में जाने तथा राजा द्वारा कर्पूरमज्जरी का आलिङ्गन कर लेने की घटनाये घटित होती हैं। उधर रानी को कर्पूरमञ्जरी का राजा से मिलने का वृत्तान्त ज्ञात हो जाता है। इसलिए कर्पूरमञ्जरी घबराकर सुरंग के रास्ते रक्षागृह में चली जाती है।

चतुर्थ जवनिकान्तर में, रानी ने कर्पूरमञ्जरी को कठोर नियन्त्रण में रख दिया है, जिससे राजा के साथ उसकी मुलाकात न हो सके। राजा वट-सावित्री महोत्सव देखने जाता

है, जहाँ उसे सारंगिका द्वारा सायकाल अपना विवाह होने की बात ज्ञात होती है, क्योकि रानी ने भैरवानन्द से गौरी प्रतिमा मे प्राण-प्रतिष्ठा करवा करके, दक्षिणा स्वरूप घनसारमञ्जरी से राजा का विवाह करवाने का वचन दिया है, जिससे राजा चक्रवर्ती पद प्राप्त कर सके। क्योकि घनसारमञ्जरी का चक्रवर्ती पति की पत्नी होना सुनिश्चित है। अततः घनसारमञ्जरी से राजा की शादी होती है। कर्पूरमञ्जरी ही घनसारमञ्जरी है, यह बात रानी को मालूम नही रहती है। शादी के बाद भेद खुलता है, तथा भरतवाक्य के साथ सट्टक की समाप्ति होती है।

कर्पूरमञ्जरी के कथानक का स्वरूप

(क) बाह्य स्वरूप—

बाह्य स्वरूप को दृष्टि मे रखते हुए स्रोत के आधार पर कथावस्तु के प्रख्यात उत्पाद्य एव मिश्र तीन भेद प्रसिद्ध है।[१] कर्पूरमञ्जरी सट्टक को यदि इस दृष्टि से आकलित किया जाय तो, स्पष्ट है कि इसका कथानक उत्पाद्य[२] कोटि का है। यद्यपि इसमे विदर्भ एवं लाट जैसे ऐतिहासिक स्थलो का नामोल्लेख हुआ है तथा राजा चन्द्रपाल का नाम भी इतिहास मे आता है, किन्तु कर्पूरमञ्जरी के साथ उनकी प्रणय कथा एव विवाह की घटनाएं ऐतिहासिक नही है। इस प्रकार यह नाट्यशास्त्रियों द्वारा सुनिश्चित सट्टक के कवि कल्पित[३]होने की व्यवस्था के सर्वथा अनुरूप है। इस सन्दर्भ मे यह अवश्य कहा जा सकता है, कि कर्पूरमञ्जरी की कथावस्तु पर हर्ष की रत्नावली का व्यापक प्रभाव है।

पात्रों की तीन कोटियाँ है—दिव्य, मर्त्य एवं दिव्यादिव्य। इस दृष्टि से कथावस्तु के भी दिव्य, मर्त्य एव दिव्यादिव्य भेद किये जाते है।[४] इस आधार पर कर्पूरमञ्जरी की कथा को मर्त्यलोकीय

१. प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात्त्रेधापि तत्त्रिधा।—दशरूपक-१/१५

२. उत्पाद्यं कविकल्पितम्—दशरूपक-१/१५

३. द्रष्टव्य—नाटिका का लक्षण, दशरूपक-पृष्ठ २४१, नाटिका की ही भाँति सट्टक की कथा भी होती है।

४. दशरूपक, श्रीनिवास शास्त्री व्याख्यायित, पृष्ठ १६-१७

कथा की कोटि मे रखा जा सकता है, क्योंकि उसके पात्र दिव्य-लोकीय न होकर सासारिक मानव है। यद्यपि कथा का एक पात्र भैरवानन्द दिव्य यौगिक शक्ति से राजा के समक्ष कर्पूरमञ्जरी को उपस्थित करता है, परन्तु इस घटना मात्र से इस कथा को दिव्यादिव्य की कोटि मे नहीं रखा जा सकता। इस कोटि मे परिगणित होने के लिए नायक को दैवीय शक्ति से युक्त होकर, सासारिक कार्यों मे सलग्न होना चाहिए। क्योंकि कथा नायक को ही केन्द्र बिन्दु बनाकर गुम्फित रहती है। जब नायक ही दिव्यादिव्य की कोटि से बाहर है, तो फिर कथा मे चाहे जितने चमत्कारी कार्य हो उसे दिव्यादिव्य की कोटि मे नहीं रख सकते। दूसरी विशेष बात यह है, कि—भैरवानन्द जो चमत्कारी कार्य करता है, वह योगशक्ति से करता है, यह बात स्पष्टतः कही गयी है। यह योगशक्ति यौगिक क्रियाओ के द्वारा सासारिक लोगों को प्राप्त होती रही है, अतः इसका कार्य भी सासारिक कार्य की कोटि मे ही आने योग्य है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कर्पूरमञ्जरी सट्टक का कथानक मर्त्यलोकीय है।

त्रिवर्ग को कथा का फल बताया गया है, जिसे कभी शुद्ध, कभी एक से अनुगत और कभी अनेक से अनुगत कहा गया है।[१] इस आधार पर वस्तु की काम-प्रधान, अर्थ-प्रधान, एव धर्म-प्रधान ये तीन कोटियाँ हो जाती है। इस दृष्टि से कर्पूरमञ्जरी के कथानक पर यदि विचार किया जाय तो इसमें कोई सन्देह नही कि—इसका परम्-प्रयोजन 'काम' है। यद्यपि चक्रवर्तित्व रूप अवान्तर प्रयोजन 'धर्म' की सिद्धि भी नायक को होती है, परन्तु कथानक 'काम' नामक पुरुषार्थ को लक्ष्य मे रखकर ही निरन्तर आगे बढ़ रहा है। जब ज्येष्ठा नायिका, नायक के धर्म रूप प्रयोजन चक्रवर्तित्व की प्राप्ति के लिए अज्ञानवश घनसारमञ्जरी के छद्मरूप में कर्पूरमञ्जरी से राजा की शादी करवाती है, तब काम पुरुषार्थ रूप मुख्य प्रयोजन की सिद्धि होती है। अतः कहा जा सकता है कि—यहाँ धर्म से अनुगत काम कथानक का मुख्य फल है।

---

१. कार्यं त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानुबन्धि च—दशरूपक १/१६

(ख) अन्तः स्वरूप–

भारतीय नाट्य शास्त्रकारो ने आधिकारिक एव प्रासगिक वृत्त, अर्थोपक्षेपक, नाट्योक्ति, अर्थप्रकृतियाँ, कार्यावस्थाये, सन्धि, सन्ध्यङ्ग आदि विन्दुओं को दृष्टि मे रखते हुए कथावस्तु के आन्तरिक स्वरूप पर विचार किया है। अतएव कर्पूरमञ्जरी के कथानक का भी इन्ही दृष्टिकोणो से परिशीलन प्रस्तुत है।

(१) आधिकारिक एवं प्रासङ्गिक वृत्त

कथानक के आधिकारिक एव प्रासङ्गिक दो प्रसिद्ध भेद है।[1] विवेच्य कृति में आधिकारिक वृत्त[2] का जहाँ तक प्रश्न है, नायक चन्द्रपाल एवं नायिका कर्पूरमञ्जरी का विवाह तथा चक्रवर्तित्व की प्राप्ति ही इस रूपक का फल है। अतएव फल से सम्बद्ध सम्पूर्ण वृत्त ही नाटक का आधिकारिक वृत्त मानने योग्य है। भैरवानन्द द्वारा कर्पूरमञ्जरी को उपस्थित करना, नायक का उसके प्रति आकर्षित होना, नायक नायिका का प्रमदोद्यान मे मिलना, इसे जानकर देवी द्वारा कर्पूरमञ्जरी को कठोर नियन्त्रण मे रखना, पुनः भैरवानन्द द्वारा घनसारमञ्जरी के छद्म रूप में कर्पूरमञ्जरी के साथ राजा चन्द्रपाल का विवाह, चक्रवर्तित्व की प्राप्ति आदि सम्पूर्ण घटनाएँ आधिकारिक वृत्त के अन्तर्गत आती है।

प्रासङ्गिक वृत्त दो प्रकार का होता है-पताका एव प्रकरी।[3] इनमें से पताका पर यदि विचार करे तो यह कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे उपलब्ध नहीं होता। यद्यपि विदूषक, भैरवानन्द आदि जैसे अन्य महत्वपूर्ण पात्र इसमे है, तथा विविध प्रकार के कार्यों मे संलग्न भी है, परन्तु इनकी अपनी कोई

---

१. ..... वस्तु च द्विधा । तत्राधिकारिक मुख्यमङ्ग प्रासङ्गिक विदुः।।—दशरूपक–१/११

२. अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्त स्यादाधिकारिकम् ।।—दशरूपक–१/१२

३. प्रासङ्गिक परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः।
सानुबन्धं पताकाख्य प्रकरी च प्रदेशभाक् ।।—दशरूपक–१/१३

अलग कथा नहीं है, और न ही मुख्य प्रयोजन मे सहायक स्वरूप उनका अपना कोई प्रयोजन ही है, जिससे कि वे पताका के अस्तित्व को साकार कर सके। प्रकरी का भी कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे सर्वथा अभाव है।

(२) अर्थोपक्षेपक

कथानक के दृश्य अश का प्रस्तुतीकरण द्वारा चतुर्विध अभिनय के माध्यम से किया जाता है, किन्तु कथानक के सूच्य अश को विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अकास्य एव अकावतार के माध्यम से प्रस्तुत करने की व्यवस्था है, जिसे अर्थोपक्षेपक नाम से अभिहित किया जाता है।[१] कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे अर्थोपक्षेपकों की क्या व्यवस्था है, सम्प्रति यह विचारणीय है।

(अ) विष्कम्भक—

विष्कम्भक वह सूच्य अर्थोपक्षेपक है, जिसमे मध्य श्रेणी के पात्रो द्वारा अतीत या भावी घटनाओ की सक्षिप्त सूचना दी जाती है।[२] कर्पूरमञ्जरी सट्टक कोटि का उपरूपक है। अतः लक्षणानुसार इसमें विष्कम्भक का सर्वथा अभाव है।

(ब) प्रवेशक—

इस अर्थोपक्षेपक मे, नीच कोटि के पात्रो द्वारा, अतीत या भावी घटनाओ की संस्कृतेतर भाषा के माध्यम से संक्षिप्त सूचना दी जाती है। इसकी योजना सदा दो अंकों के बीच की जाती है।[३] सट्टक के लक्षणानुसार कर्पूरमञ्जरी में विष्कम्भक की भाँति प्रवेशक का भी अभाव है।

---

१. अर्थोपक्षेपकैः सूच्य पञ्चभिः प्रतिपादयेत् ।
विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतारप्रवेशकैः।।—दशरूपक १/५८

२. वृत्तवर्तिष्यमाणाना कथाशाना निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।।—दशरूपक-१/५९

३. तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।।
प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः।—दशरूपक-१/६०-६१

(स) चूलिका—

जहाँ यवनिका के उस ओर अन्दर वैठे पात्रों के द्वारा कथा की सूचना दी जाती है, वह चूलिका कहलाता है।[१] कर्पूरमञ्जरी मे चूलिका के अनेक स्थल प्राप्त होते है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है—

(i) प्रथम जवनिकान्तर में एक-एक करके दो वैतालिकों द्वारा नेपथ्य के भीतर से राजा के प्रति उनकी प्रशस्ति एव वसन्त की शोभा का वर्णन किया गया है—

(नेपथ्ये)

वैतालिकः—जअ पुब्वदिअगणाभुअग! चंपाचपककण्णऊर! लीलाणिज्झिअराढदेस। विक्कमक्कतकामरूअ? हरिकेलीकेलिआरअ। अवमाणिअजच्चसुबण्णवण्ण।सब्वगसुदरत्तणरमणिज्ञ! सुहाअ दे होदु सुरहिसमारभो। इह हि-

पडीण गडबालीपुलअणचबला कचिबालावलीणं
माणं दो खडअता रइरहसकला लोचलोचप्पिआण।
कण्णाडीण कुणंता चिउरतरलण कुतलीण पिएसु
गुफता णेहगथि मलअसिहरिणो सीअला बाति बाआ।।

द्वितीयः— जाद...बि दिसाभाएसु लग्गेहि ब।।[२]

अर्थात् नेपथ्य मे वैतालिक कहता है, कि—पूर्व दिशा के स्वामी। चम्पा नगरी का पालन करने वाले! राढ़देश को खेल–खेल में ही जितने वाले! कामरूप देश के विजेता! हरिकेली देश में बिहार करने वाले! पराजित किये हुये लोगो मे सुवर्ण की तरह चमकने वाले! सब अंगो के सौन्दर्य से युक्त हे राजन! तुम्हारी जय हो, वसन्त ऋतु का आगमन तुम्हारे लिए सुखकारक हो। यहाँ पर पाण्ड्य देश की रमणियों के कपोलो में रोमाञ्च उत्पन्न करने वाली, काञ्ची देश की कामनियों के अपने प्रिय सम्बन्धी प्रणयकोप को सायं प्रातः भग करने वाली, चोलदेश की चपल नारियो को संभोग

१. अन्तर्जवनिकासस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना।।—दशरूपक–१/६१

२. कर्पूरमञ्जरी—१/१५–१६

के लिए प्रेरित करने वाली, कर्णाट देश की स्त्रियों के केशपार को शिथिल बनाती हुई, कुन्तल देश की स्त्रियों को अपने प्रेमियो के आलिगन पाश मे बाँधती हुई मलायचल की ठण्डी हवाये चल रही है। (पुन. दूसरा वैतालिक कहता है.........।)

यहाँ राजा की वीरता सुखद वातावरण आदि की सूचना दी गयी है। यह चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक है।

(ii) प्रथम जवनिकान्तर के अन्तिम चरण में दो वैतालिक क्रमशः सन्ध्या के आगमन को राजा के प्रति सूचित करते है।[१] यह चूलिका है, जिसके माध्यम से सामाजिक को सन्ध्या के आगमन की सूचना दी जा रही है।

(iii) तृतीय जवनिकान्तर मे मञ्च पर राजा एवं विदूषक है, तभी नेपथ्य से आवाज आती है–"सहि कुरगिए! इमिरा सिसिरोवआरेण णलिणीविअ काम किलिस्सामि........देहदाहं च मे।[२] अर्थात्, सखि कुरगिके! इस शिशिरोपचार से कमलिनी की तरह अत्यन्त उकता गयी हूँ। कमलनाल विष की तरह मालूम पड़ता है, हार साँपो की तरह लगते है। पखो की हवा भी अपने मित्र अग्नि को ही फैलती है। यन्त्रधाराओं का जल भी तप रहा है। चन्दन का लेप भी शरीर का ताप दूर नही करता है।" इस प्रकार यहाँ नेपथ्य के अन्दर से नायिका के कामपीड़ा की सूचना दी जा रही है। अतः यहाँ चूलिका है।

(iv) तृतीय जवनिकान्तर में दो वैतालिकों द्वारा क्रमशः चन्द्रोदय की सूचना देना[३] चूलिका का उदाहरण है।

इसी प्रकार द्वितीय जवनिकान्तर में अन्त में वैतालिको द्वारा सन्ध्या के आगमन की सूचना

---

१. कर्पूरमञ्जरी–१/३५-३६

२. कर्पूरमञ्जरी–३/२०

३. कर्पूरमञ्जरी–३/२५-२८

देना[1], तृतीय जवनिकान्तर के अतिम चरण मे नेपथ्य मे कोलाहल का होना,[2] जिससे महारानी के आने की सूचना मिलती है आदि, चूलिका के अन्य उदाहरण है।

(द) अङ्कास्य—

जहाँ एक अक की समाप्ति के समय, उस अक मे प्रयुक्त पात्रो के द्वारा किसी छुटे हुए अर्थ की सूचना दी जाती है, वह अङ्कास्य कहलाता है।[3] कर्पूरमञ्जरी सट्टक के किसी भी जवनिकान्तर के अन्त मे, किसी भी पात्र द्वारा, किसी छुटे अर्थ की सूचना से सम्बन्धित कोई कथन, नही किया गया है। अतः इसमे अङ्कास्य का अभाव है।

(य) अङ्कावतार—

जहाँ प्रथम अंक की वस्तु का विच्छेद किये बिना दूसरे अक की वस्तु आगे चले, वहाँ अंकावतार होता है।[4] कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे ऐसा कोई भी जवनिकान्तर नही जो पूर्व जवनिकान्तर के अन्त के बाद अविछिन्न रूप से अवतरित हुआ हो। यहाँ दो जवनिकान्तरो के प्रत्येक स्थल में स्पष्टतः विच्छिन्नता है। प्रत्येक जवनिकान्तर पूर्व जवनिकान्तर से असम्बद्ध स्वतन्त्र रूप से आरम्भ हो रहा है।

---

१. (नेपथ्ये)
वैतालिक-सुहसञ्झा भोदु देवस्स (सुखसन्ध्या भवतु देवस्य)—
लोआणं लोअणेहि सह कमलवण अद्धणिद्द कुणन्तो
मुञ्चन्तो तिक्खभाव सह अ सरभसं माणिणीमाणसेहिं।
मञ्जिठ्ठारत्तसुत्तच्छविकिरण चओ चक्कवाएक्कमित्तो
जादो अत्थाचलत्थी सपदि दिणमणी पक्कणारंगपिंगो।।
(लोकाना लोचनैः सह कमलवनमर्द्धनिद्र कुर्वन्
मुञ्चस्तीक्ष्णभाव सह च सरभस मानिनीमानसैः।
मञ्जिष्ठारक्तसूत्रच्छविकिरणचयश्चक्रवाकैकमित्र
जातोऽस्ताचलार्थी सपदि दिनमणिः पक्वनारङ्गपिङ्गः।।)—कर्पूरमञ्जरी—२/५०

२. कर्पूरमञ्जरी, श्रीरामकुमार आचार्य सम्पादित, पृष्ठ १२४

३. अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात् ।—दशरूपक—१/६२

४. अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः।—दशरूपक—१/६२

(३) नाट्योक्ति

नाट्योक्ति ही वह प्रमुख साधन है जिसके माध्यम से नाट्य की कथावस्तु निरन्तर आगे बढ़ती है। इसे नाट्य धर्म, अभिनय के नियम, नाटकीय सवाद एव कथोपकथन भी कहते है। पाश्चात्य नाट्य शास्त्रियो ने इसे कथानक से अलग तत्त्व माना है, जब कि भारतीय नाट्यशास्त्री इसे कथानक का अग स्वीकार करते है। नाट्योक्ति के आधार पर कथानक के सर्वश्राव्य, अश्राव्य एव नियतश्राव्य रूप तीन विभाजन किये जाते है।[१] कर्पूरमञ्जरी के कथानक में ये तीनो ही रूप प्राप्त होते है।

(अ) सर्वश्राव्य–

मञ्चस्थ सभी पात्रो के सुनने योग्य कथन को सर्वश्राव्य या प्रकाश कहा जाता है।[२] कर्पूरमञ्जरी मे इसका क्षेत्र विस्तृत है। कुछ गिने–चुने अश्राव्य एव नियतश्राव्य अशो को छोड़कर कर्पूरमञ्जरी का सम्पूर्ण कथानक सर्वश्राव्य के अन्तर्गत आता है।

(ब) अश्राव्य–

मञ्चस्थ किसी भी पात्र के ऐसे कथन को, जो मञ्चस्थ अन्य किसी भी पात्र के द्वारा सुनने योग्य न हो, अश्राव्य कहते है। इसे स्वगत एव आत्मगत नाम से भी जाना जाता है।[३] कर्पूरमञ्जरी में स्वगत कथनों का बाहुल्य है, जिसके कतिपय स्थल उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है–

(i) प्रथम जवनिकान्तर में योगबल से उपस्थित की गयी कर्पूरमञ्जरी, अन्य सभी पात्रो को, आकृति, वेश आदि से उनके क्रमशः राजा, रानी, योगीश्वर एवं सेवकगण होने का अनुमान करते हुए मन मे कहती है–"एसो महाराओ को बि इमिणा गंभीरमहुरेण सोहासमुदाएण जाणिज्जदि। एसा बि एदस्स महादेवी तक्कीअदि अद्धणारीसरस्स बिअ अकहिदा बि गोरी। ऐसो को बि जोईसरो।

---

१. नाट्यधर्ममपेक्ष्यैतत्पुनर्वस्तु त्रिधेष्यते—दशरूपक–१/६३

२. सर्वश्राव्य प्रकाश स्यात्—दशरूपक–१/६४

३. अश्राव्य स्वगतं मतम्—दशरूपक–१/६४

एस उण परिअणो। (विचिन्त्य) ता कि ति एदस्स महिलासहिदस्स दिट्ठी म बहु मण्णेदि?[१]

अर्थात्, इस गभीर और मधुर शोभासमुदाय से मालूम पड़ता है कि ये कोई महराज है, अर्द्ध नारीश्वर भगवान शकर की पार्वती की तरह यह भी उनकी रानी प्रतीत होती है। ये कोई योगीश्वर है। ये सेवकगण है। (सोचकर) न मालूम क्या बात है कि स्त्रियों के साथ होते हुए भी उनकी निगाहे मेरी ओर बड़े आदर से लगी हुई है यह कथानक का अश्राव्य अश है। कथानक में इसका समायोजन दर्शक को यह बताने के लिए किया गया है कि–कर्पूरमञ्जरी बिना बताये ही अन्य पात्रो को उनके गुण विशेष से पहचान चुकी है। राजा की गम्भीर एव मधुर आकृति कर्पूरमञ्जरी को प्रभावित कर रही है। राजा कर्पूरमञ्जरी को आदर पूर्वक देख रहा है। राजा द्वारा अन्य स्त्रियो के साथ होने पर भी कर्पूरमञ्जरी को इस प्रकार देखा जाना; कर्पूरमञ्जरी को इस बात का अनुमान कराता है, कि राजा के मन में उसके प्रति विशेष आकर्षण है, इत्यादि। इस प्रकार यह अश्राव्य अश कथा के प्रस्तुतीकरण मे उसी प्रकार सहायक है जिस प्रकार श्राव्य अंश होता है।

(ii) प्रथम जवनिकान्तर मे कर्पूरमञ्जरी द्वारा वल्लभराज एव शशिप्रभा को क्रमशः अपने पिता माता के रूप में बताये जाने पर देवी के स्वगत कथन है–"जो मह माउस्सआए पई होदि। (यो मम मातृष्वसु : पतिर्भवति)" एव "सा वि मे माउस्सिआ (साऽपि मे मातृष्वसा)"[२] ये कथन सामाजिक को इस बात की जानकारी देते है कि–कर्पूरमञ्जरी देवी की मौसेरी बहन है साथ ही देवी का यह कथन "ण क्खु ससिप्पहागब्भुप्पति अन्तरेण इदिसी रूवरेहा होदि। ण क्खु वेदूरिअभूमिगब्भुप्पत्तिं अन्तरेण वेदूरिअमणि सलाआं पिप्पज्जदि। (न खलु शशिप्रभागर्भोत्पत्तिमन्तरेणेदृशी रूपरेखा भवति। न खलु वैदूर्यभूमिगर्भोत्पत्तिमन्तरेण वैदूर्यमणिशलाका निष्पद्यते।)"[३] यह दर्शकों को बता रहा है, कि रानी भी इस बात को स्वीकार करती है, कि कर्पूरमञ्जरी अपूर्वसुन्दरी है, किन्तु

१. कर्पूरमञ्जरी,श्री रामकुमार आचार्य सम्पादित, पृष्ठ ३३-३४

२. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य सम्पादित, पृष्ठ ४०

३. वही, पृष्ठ ४०

वह राजा आदि के समक्ष इस बात को प्रकट नहीं करना चाहती।

(iii) द्वितीय जवनिकान्तर के प्रारम्भ में प्रतिहारी का स्वगत कथन–"कध अज्ज वि सो ज्जेव तालीपत्तसंचओ ताओ विअ अक्खरपतीओ ता वसन्तवण्णणेव सिढिलआमि से तग्गद हिअआवेअ। (कथमद्यापि स एव ताडीपत्रसचय:, ता एव अक्षरपक्तय:, तत् वसन्तवर्णनेन शिथिलयामि अस्य तद्गत हृदयावेगम्।)"[१] यह इस तथ्य को प्रकट कर रहा कि राजा कर्पूरमञ्जरी के विरह मे प्रतिदिन ताड़पत्र पर एक ही तरह की अक्षरपक्तियाँ (चित्र) अकित करता है। उसका हृदयावेग प्रबल हो चुका है। उसके परिचर उसकी इस दशा से चिन्तित है तथा उसके मनोविनोद का प्रयास करने में सलग्न है।

प्रथम जवनिकान्तर की प्रस्तावना मे सूत्रधार का स्वगत कथन–"पण्होत्तरं क्खु एद। (प्रश्नोत्तर खलु एतत् ।)"[२]; तृतीय जवनिकान्तर मे विदूषक के स्वगत कथन–"भोदु एव्व दाव। (भवतु एव तावत्।)"[३] तथा "भोदु, लीलोज्जाण जेव्व गच्छम्ह। (भवतु,लीलोद्यानमेव गच्छाम:।)"[४] चतुर्थ जवनिकान्तर मे भैरवानन्द के स्वगत कथन–"अज्ज वि ण आअच्छदि देवी। (अद्यापि नागच्छति देवी।)"[५] एवं "इअ कप्पूरमञ्जरीठाण अण्णेसिदुं गत। (इयं कर्पूरमञ्जरीस्थानमन्वेष्टु गता।)"[६]; चतुर्थ जवनिकान्तर मे ही महादेवी के स्वगत कथन–"ता पुणो तहिं गमिस्सं। (तत् पुनस्तत्र गमिष्यामि)"[७] एव "झाणविमाणेण णिव्विग्धपरिसप्पिणा तं आणेदि महाजोई। (ध्यानविमानेन निर्विघ्नपरिसर्पिणा तामानयति महायोगी।)"[८] ये सभी अश्राव्य के अन्य उदाहरण है, जो गंभीर अर्थ की व्यञ्जना करते

---

१. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य सम्पादित, पृष्ठ ४६
२. वही, पृष्ठ ६
३. वही, पृष्ठ ९५
४. वही, पृष्ठ ११५
५. वही, पृष्ठ १४७
६. वही, पृष्ठ १४८
७. वही, पृष्ठ १४८
८. वही, पृष्ठ १४९

हुए कथा के विकास एव प्रस्तुनि मे सहायक हुए है।

(स) नियतश्राव्य–

मञ्चस्थ नियत जनो के सुनने योग्य कथन को नियतश्राव्य कहते है।[1] यह दो प्रकार का होना है–जनान्तिक एव अपवारित।[2] कर्पूरमञ्जरी सटट्क मे नियनश्राव्य के दो स्थल उपलब्ध होते है, जिसमे एक अपवारित है एव एक जनान्तिक। प्रथम जवनिकान्तर मे कर्पूरमञ्जरी के सौन्दर्य पर मुग्ध हुआ राजा, उसके द्वारा मनोहरतापूर्वक देखे जाने पर विदूषक मे अपवारित[3] मे कहता है–

"एदाए–

> जं मुक्का सवणतरेण तरला तिक्खा कउक्खच्छडा
>
> शु गाधिट्ठिअकेदअग्गिमदलद्दोणीसरिच्छच्छई।
>
> तं कप्पूररसेण णधवलिदो? ज्योंण्हाअ णण्हाविदो?
>
> मुत्ताण घणरेणुण व्व छुरिदो? जादोम्हि एत्थतरे।।"[4]

अर्थात्, इस नायिका ने कानो तक फैले हुए, चञ्चल तथा केतकी के दल रूपी द्रोणी के समान छवि वाले तीक्ष्ण कटाक्षों से जो मुझको देखा है, उससे ऐसा मालूम पड़ता है कि जैसे मै कर्पूर के जल से धो दिया गया हूँ, या चाँदनी मे मुझे स्नान करा दिया गया है अथवा मोतियो का अंगराग मुझ पर लगा दिया गया है। यहाँ अपवारित के प्रयोग द्वारा दर्शकों को यह बतलाने का प्रयास किया जा रहा है कि–कर्पूरमञ्जरी ने राजा को तीक्ष्ण कटाक्षों से देखा है, जो प्रेम प्रदर्शन का सूचक होता है। यही कारण है कि राजा अपने आप को धन्य समझ रहा है एव इस बात का रानी आदि अन्य पात्रों को आभास नही है। मात्र विदूषक से ही वह अपनी आसक्ति सम्बन्धी बात करता है,

---

१. '..... नियतस्यैव श्राव्यम् ....।'–दशरूपक–१/६४

२. द्विधाऽन्यत्राद्यधर्माख्य जनान्तमपवारितम्–दशरूपक–१/६५

३. रहस्य कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्त्यापवारितम्–दशरूपक–१/६६

४. कर्पूरमञ्जरी–१/२९

जिससे यह स्पष्ट हो जाये कि विदूषक उसके प्रेम प्रसङ्ग का सहयोगी है।

जनान्तिक का उदाहरण चतुर्थ जवनिकान्तर मे मिलता है। कर्पूरमञ्जरी से शादी के प्रसग मे राजा उसे देखता है एव उसके सौन्दर्य का गुणगान सबके सामने करने लगता है। इससे कही देवी रुष्ट होकर शादी मे अवरोध न पैदा कर दे, अतः राजा को चुप कराने के उद्देश्य से विदूषक जनान्तिक[1] मे उससे कहता है–"सच्च किदं तुए आभाणक। तड गदाए वि णावाए ण विससीदव्व; ता तुण्हि चिट्ठ। (सत्य कृत त्वया आभाणकम्। तट गताया अपि नौकाया न विश्वसितव्यम्; तत्तूर्ण्णी तिष्ठ)"[२]

(४) अर्थप्रकृतियाँ

कथानक में फल सिद्धि के लिए जो उपाय अपनाये जाते है, उन्हें अर्थप्रकृतियाँ कहते है।[३] अर्थप्रकृति का शाब्दिक अर्थ है फल का हेतु।[४] ये अर्थप्रकृतियाँ पाँच है–बीज, विन्दु, पताका, प्रकरी एव कार्य। कर्पूरमञ्जरी सट्टक का कथानक, अपने निश्चित लक्ष्यो कर्पूरमञ्जरी एवं चन्द्रपाल का विवाह तथा चक्रवर्तित्व की प्राप्ति के प्रति सतत् प्रयत्नशील है। अर्थप्रकृतियाँ कथावस्तु को सफलता की ओर ले जाती है, जिनका क्रमशः विवेचन प्रस्तुत है।

(अ) बीज–

उस फल का निमित्त बीज कहलाता है, जिसका आरम्भ मे सूक्ष्म रूप से और आगे चलकर अनेक प्रकार से विस्तार होता है।[५] कर्पूरमञ्जरी के प्रथम जवनिकान्तर में भैरवानन्द द्वारा किसी

---

१ त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम् ।।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम् ।–दशरूपक–१/६५–६६

२. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य सम्पादित, पृष्ठ १५१

३. प्रयोजनसिद्धहेतवः अर्थप्रकृतयः।–दशरूपक–सपादक श्री निवास शास्त्री, पृष्ठ २०

४. अर्थः फल तस्य प्रकृतयः उपाया फलहेतवः इत्यर्थः।–अभिनवभारती–१९,२०।

५. स्वल्पोदिष्टस्तु तद्धेतुर्बीज विस्तार्यनेकधा।–दशरूपक–१/१७

भी कार्य को कर सकने की सामर्थ्य सम्बन्धी जो यह कथन है, कि–

"दसेमि त पि ससिण वसुहावइण्ण
थभेमि तस्स वि रविस्स रह णहद्धे।
आणेमि जक्खसुरसिद्धगणगणाओ
त णत्थि भूमिबलए मह जं ण सद्ध।।"[1]

अर्थात्, 'चन्द्रमा को भी पृथ्वी पर उतार कर दिखा सकता हूँ। सूर्य का भी आकाशमार्ग मे रथ रोक सकता हूँ। यक्ष, सुर और सिद्धगणो तक की स्त्रियो को ला सकता हूँ। भूमण्डल पर ऐसा कोई कार्य नही जिसको मै न कर सकूँ।' यही कर्पूरमञ्जरी सट्टक का बीज है, जो आदि से लेकर अन्त तक विद्यमान रहता है। यहाँ चन्द्रमा को पृथ्वी पर उतार सकने सम्बन्धी कथन से राजा चन्द्रपाल के पृथ्वी के अधिपति होने, एव सूर्य के रथ को रोक सकने सम्बन्धी कथन से राजा के चक्रवर्ती पद प्राप्त करने की अभिव्यञ्जना हुई है। कथन के उतरार्द्ध से अपूर्व स्त्रीरत्न प्राप्त करने की अभिव्यञ्जना हुई है। इसी कथन से प्रेरित होकर राजा विदूषक से अपूर्व स्त्रीरत्न के विषय मे पूँछकर एव उसके विषय में जानकर उसे उपस्थित करने की प्रार्थना करता है। अपूर्व सुन्दरी कर्पूरमञ्जरी के उपस्थित हो जाने पर सम्पूर्ण कथा उसी के चतुर्दिक आगे बढ़ती है। इस प्रकार भैरवानन्द के इस कथन में बीज नामक अर्थप्रकृति विद्यमान है।

(व) बिन्दु–

अवान्तर प्रयोजन की समाप्ति से कथावस्तु के मुख्य प्रयोजन में विच्छेद प्राप्त हो जाने पर, जो उसके सातत्य का कारण होता है, वह बिन्दु कहलाता है।[2] अवान्तर बीज[3] नाम से प्रसिद्ध बिन्दु का उदाहरण तृतीय जवनिकान्तर मे प्राप्त होता है, जहाँ विदूषक द्वारा अपने स्वप्न का वृत्तान्त

१. कर्पूरमञ्जरी–१/२५
२. अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्–दशरूपक–१/१७
३. दशरूपक, व्याख्याकार–श्रीनिवास शास्त्री

बताने एव उसके बाद प्रेम और सौन्दर्य सम्बन्धी शास्त्रीय चर्चा रूप अवान्तर प्रयोजन से, और कर्पूरमञ्जरी की प्राप्ति रूप मुख्य प्रयोजन मे विच्छेद आ जाता है। मुख्य प्रयोजन मे आये विच्छेद के सातत्य का कारण नेपथ्य मे कथित कर्पूरमञ्जरी का यह कथन है–'सखि कुरगिके इस शिशिरोपचार से कमलिनी की तरह अत्यन्त उकता गयी हूँ, कमलनाल विष की तरह मालूम पड़ता है, हार सापो की तरह लगते है। पखो की हवा भी अपने मित्र अग्नि को ही फैलाती है, यह यन्त्रधाराओं का जल भी तप रहा है, चन्दन का लेप भी शरीर का ताप दूर नही करता।'[1] इसे सुनकर एव विदूषक द्वारा प्रेरित होकर राजा कर्पूरमञ्जरी की प्राप्ति रूपी फल के लिए पुनः उद्यत हो जाता है। इस प्रकार अवान्तर प्रयोजन की समाप्ति से कथावस्तु के मुख्य प्रयोजन के अविच्छेद्य का कारण रूप यह कथन ही सट्टक का विन्दु है।

(स) पताका–

अनुवन्ध सहित, प्रधान वृत्त के साथ दूर तक चलने वाला प्रासंगिक वृत्त पताका कहलाता है।[2] जैसा की पहले ही कहा जा चुका है कि कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे पताका नामक प्रासगिक वृत्त नही प्राप्त होता है।

(द) प्रकरी–

जो प्रासंगिक वृत्त मुख्य कथा में मात्र थोड़ी दूर तक चलता है वह प्रकरी कहलाता है।[3]

१ (नेपथ्ये)
सहि कुरगिए! इमिणा सिसिरोवआरेण णलिणीविअ काम किलिस्सामि–
विसं व्व विसकन्दली विसहरो व्व हारच्छडा
वअस्समिव अत्तणो किरइ तालवेण्टाणिलो।
तहा अ करणिम्मलं जलइ जन्तधाराजल
ण चन्दणमहोसहं हरइ देहदाह च मे।।–कर्पूरमञ्जरी-३/२०

२. सानुवन्ध पताकाख्यं........।–दशरूपक-१/१३

३. '.....प्रकरी च प्रदेशभाक्।'–दशरूपक-१/१३

कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे प्रकरी का भी अभाव है।

(य) कार्य–

फल के अधिकारी व्यक्ति का व्यापार ही कार्य नामक अर्थप्रकृति है।[1] कर्पूरमञ्जरी सट्टक में, राजा का कर्पूरमञ्जरी से विवाह एवं चक्रवर्तित्व की प्राप्ति रूपी फल के लिए, फलाधिकारी राजा द्वारा नायिका से विवाह करने का जो उद्योग किया गया है, वही कार्य नामक अर्थप्रकृति है।

(५) कार्यावस्थायें

फल को लक्ष्य करके किये गये, नायक के व्यापार की भिन्न-भिन्न अवस्थाये ही कार्यावस्थाय कहलाती है, जो पाँच है– आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एव फलागम।[2] कार्यावस्थाओ की दृष्टि से कर्पूरमञ्जरी सट्टक का परिशीलन प्रस्तुत है।

(अ) आरम्भ—

प्रचुर फल की प्राप्ति के लिए उत्सुकता मात्र का होना ही आरम्भ कहलाता है।[3] कर्पूरमञ्जरी के प्रथम जवनिकान्तर मे, अद्वितीय स्त्री रत्न देखने की उत्सुकता राजा में पैदा होती है। विदूषक द्वारा ऐसे स्त्री रत्न के विषय मे जानकर, वह भैरवानन्द से उसे उपस्थित करने का अनुरोध करता है। नायिका के उपस्थित हो जाने पर, राजा उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है, जो विदूषक के प्रति राजा की उक्तियों से स्पष्ट है।

राजा विदूषक से अपवारित मे कहता है कि—"इस नायिका ने कानों तक फैले हुए, चञ्चल तथा केतकी के दलरूपी द्रोणी के समान छवि वाले तीक्ष्ण कटाक्षों से जो मुझको देखा है, उससे

---

१. दशरूपक, व्याख्याकार-श्रीनिवास शास्त्री, पृष्ठ २१

२. अवस्थाः पञ्चकार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः।।—दशरूपक-१/१९

३. औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे।—दशरूपक-१/२०

ऐसा मालूम पड़ता है कि—जैसे मै कर्पूर के जल से दो दिया गया हूँ या चाँदनी मे मुझे स्नान करा दिया गया है, अथवा मोतियो का अगराग मुझ पर लगा दिया गया है।"[1] नायिका मे भी राजा के व्यक्तित्व के प्रति औत्सुक्य प्रकट होता है, जो उसके स्वगत कथन से प्रतीत हो रहा है। नायिका अपने मन मे कहती है कि—"इस गभीर और मधुर शोभा–समुदाय से अनुमान लगता है, कि ये कोई महाराज है।...न मालूम क्या बात है कि स्त्रियो के साथ होते हुए भी इनकी निगाहे मेरी ओर बड़े आदर से लगी हुई है।"[2] नायिका द्वारा राजा को देखने सम्बन्धी राजा के कथन से भी, नायिका मे राजा के प्रति औत्सुक्य का होना स्पष्ट होता है, जिसमे राजा ने अपवारित मे यह कहा कि— "..तीक्ष्ण कटाक्षो से (नायिका ने) जो मुझको देखा है।"[3] इस प्रकार प्रस्तुत स्थल पर आरम्भ नामक कार्यावस्था है।

(ब) यत्न—

फल के प्राप्त न होने पर उसके लिए अत्यन्त वेग पूर्वक उद्योग करना ही यत्न या प्रयत्न कहलाता है।[4] द्वितीय जवनिकान्तर मे विचक्षणा नायिका का प्रेमपत्र लेकर राजा के पास आती है। इस घटना से प्रारम्भ करके तृतीय जवनिकान्तर मे राजा द्वारा नायिका का साक्षात्कार एव प्रेमालाप पर्यन्त, यत्न नामक कार्यावस्था है। क्योकि इस बीच नायिका द्वारा नायक को प्रेमपत्र भेजना, चित्र मे देखने की भाँति राजा द्वारा नायिका के नख से शिखा तक आभूषित आभरण के सौन्दर्य का वर्णन सुनना एव तत्सम्बन्धी कल्पनाये करना, नायक द्वारा नायिका को मरकतकुञ्ज के प्रासाद से

---

१. कर्पूरमञ्जरी—१/२९

२. नायिका—(सर्वानवलोक्य स्वगतम्) एसो महाराओ को बि इमिणा गभीरमहुरेण सोहासमुदाएण जाणिज्जदि।..........(विचिन्त्य) ता कि ति एदस्स महिलासहिदस्स दिट्ठी मं बहु मण्णेदि?— कर्पूरमञ्जरी, रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ३३–३४

३. ज मुक्का सवणतरेण तरला तिक्खा कडक्खच्छडा...।—कर्पूरमञ्जरी–१/२९

४. प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः।—दशरूपक–१/२०

झूलते हुए देखना, आदि घटनाएँ; नायक एव नायिका दोनो द्वारा एक दूसरे की प्राप्ति के लिए योजनापूर्वक किये गये प्रबल प्रयास की परिणाम है। अतएव यह यत्न (या प्रयत्न) नामक कार्यावस्था है।

(स) प्राप्त्याशा—

उपाय के होने तथा विघ्न की आशका होने मे जो फल प्राप्ति की सभावना मात्र है, वह प्रात्याशा कहलाता है।[1] तृतीय जवनिकान्तर के उत्तरार्द्ध मे, नायिका के साक्षात्कार एव आलिगन के उपरान्त प्रमदोद्यान में प्रेमालाप के प्रसंग मे, नायिका के आत्यन्तिक प्राप्ति रूप फल के सभी उपायो के विद्यमान होने पर, फलागम स्पष्टतः झलकता हुआ सा प्रतीत होता है। ऐसी परिस्थिति मे रानी विभ्रमलेखा रूपी विघ्न की आशका से नायिका कर्पूरमञ्जरी सुरग के मार्ग से रक्षागृह मे लौट जाती है। तब फलागम आशा और निराशा के बीच झूलने लगता है। अर्थात् फलप्राप्ति के सम्बन्ध मे निश्चय नही हो पाता, उसकी आशा मात्र रह जाती है। यही अवस्था प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था है।

(द) नियताप्ति—

विघ्नो के हट जाने पर फलप्राप्ति का नितान्त निश्चय ही नियताप्ति है।[2] चतुर्थ जवनिकान्तर के उत्तरार्द्ध मे राजा को घनसारमञ्जरी (जिसका पति चक्रवर्ती होगा) से अपना विवाह होने की सूचना मिलती है। राजा यह जानकर कि—यह भैरवानन्द के कार्यों का परिणाम है, अर्थात् भैरवानन्द घनसारमञ्जरी के छद्म रूप मे कर्पूरमञ्जरी से उसकी शादी करवाने की योजना बनाये हुए है, उसे कर्पूरमञ्जरी एवं चक्रवर्ती पद रूप फल की प्राप्ति का निश्चय सा हो जाता है। कथानक मे यही नियताप्ति नामक कार्यावस्था है। भैरवानन्द द्वारा दक्षिणा के लिए रानी को वचनबद्ध करके एव कर्पूरमञ्जरी को घनसारमञ्जरी के रूप मे प्रस्तुत करके राजा से उसके विवाह की स्वीकृति लेकर, विघ्न का

---

१. उपायापायशङ्काभ्याम् प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः।—दशरूपक-१/२१

२. अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता।—दशरूपक-१/२१

निवारण कर दिया गया है। राजा के प्रति जनान्तिक मे कहे विदूषक के कथन—"सच्च किद नुए आभाणक। (सत्य कृत त्वया आभाणकम्)"[1] से स्पष्ट है कि—रुकावटें टल गयी है। राजा को सारगिका द्वारा उसी दिन सायकाल उसके विवाह होने का समाचार बताने से नियताप्ति का प्रारम्भ होता है तथा कर्पूरमञ्जरी के साथ राजा द्वारा अग्नि की भाँवरें लेने तक उसकी स्थिति रहती है।

(य) फलागम—

पूर्ण रूप से फल की प्राप्ति फलागम नामक कार्यावस्था है।[2] चतुर्थ जवनिकान्तर के अतिम चरण मे राजा का कर्पूरमञ्जरी से विवाह सम्पादित हो जाता है एवं उसे चक्रवर्तित्व की प्राप्ति होती है, यही समग्रफल की प्राप्ति है। यही फलागम नामक कार्यावस्था है। राजा ने फलप्राप्ति के आनन्दातिरेक मे स्वय ही उसे स्पष्ट करते हुए कहा है—

कुन्तलेस्सरसुआकरफस्सप्फारसोक्खमिढिलीकिदसग्गो।
पालएमि वसुहातलरज्जचक्क वट्ठिपदवीरमणिज्जं।।[3]

अर्थात्, कुन्तलदेश के राजा के पुत्री कर्पूरमञ्जरी के करस्पर्श के निरतिशय आनन्द से मुझे स्वर्ण भी तुच्छ जान पड़ता है और चक्रवर्ती के साथ सारे महीतल पर मै राज्य कर रहा हूँ।

६. सन्धि-योजना

नाट्य की कथावस्तु मे किसी एक प्रयोजन से अन्वित होने पर, किसी अवान्तर प्रयोजन से सम्बन्ध होना पाया जाता है, यह सन्धि कहलाता है।[4] इनकी सख्या पाँच है—मुख, प्रतिमुख-गर्भ, अवमर्श एवं निर्वहण।[5] कर्पूरमञ्जरी मे क्रमशः इनका विवेचन प्रस्तुत है।[4]

---

१. कर्पूरमञ्जरी, श्रीरामकुमार आचार्य, पृष्ठ १५१
२. समग्रफलसंपत्तिः फलयोगो......।—दशरूपक–१/२२
३. कर्पूरमञ्जरी–४/२२
४. अन्तरैकार्थसबन्धः सन्धिरेकान्वये सति।—दशरूपक–१/२३
५. मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसहृतिः।—दशरूपक–१/२४

(अ) मुखसन्धि–

जहाँ अनेक प्रकार के प्रयोजन और रस को निष्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति होती है, वह मुखसन्धि है। कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे भैरवानन्द का कथन रूप जो कथा का बीज है, वह नायक एव नायिका के एक दूसरे के दर्शन से उद्भूत हुए प्रेम रूप आरम्भ नामक कार्यावस्था के साथ मिलकर, दूसरे प्रयोजन यत्न जिसमे नायिका द्वारा राजा को प्रेम पत्र दिया जाता है, से जोड़ता है। कथा की यह सन्धि मुखसन्धि[1] है, जो भैरवानन्द के कथन से लेकर नायिका द्वारा प्रेम पत्र भेजने के कथाश के पूर्व तक विद्यमान है। यह बीज एव आरम्भ के योग से निष्पन्न है। यह आरम्भ नामक एक प्रयोजन से सम्बद्ध बीज रूप मे स्थित कथा को, प्रयत्न नामक दूसरे एक प्रयोजन से सम्वद्ध कर रही है।

(ब) प्रतिमुखसन्धि–

जहाँ बीज का कुछ लक्ष्य रूप मे एवं कुछ अलक्ष्य रूप मे उद्भेद होता है, वह प्रतिमुखसन्धि कहलाता है।[2] कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे राजा एवं कर्पूरमञ्जरी के मिलन का हेतु जो अनुराग रूपी बीज है, उसका प्रथम जवनिकान्तर मे उपक्षेप किया गया है। द्वितीय जवनिकान्तर मे राजा द्वारा कर्पूरमञ्जरी का स्मरण करते हुए किये गये तत्सम्बन्धी कथन, जैसे "उस समय मेरा लगातार ध्यान करती हुई, उस नायिका का लता की तरह सुकुमार शरीर, चार तरह का हो गया,"[3] इत्यादि द्वारा वह अनुराग कुछ लक्ष्य है, अर्थात् दिखाई पड़ रहा है। प्रतिहारी के स्वगत कथन–"क्यो आज वही ताड़पत्र और वे ही अक्षर पक्तियाँ है,"[4] द्वारा वह अनुराग कुछ–कुछ समझा भर गया है, अतः अलक्ष्य है। पुनः विदूषक के कथन कि–"अरी विचक्षणे क्या यह सब सच है?"[5] द्वारा यह

---

१. मुख बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा।—दशरूपक–१/२४

२. लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुख भवेत्।—दशरूपक–१/३०

३. जाआ तीअचउव्विधा तणुलआ णिज्झाअअती अ मं।—कर्पूरमञ्जरी–२/१

४. कध अज्ज वि सो ज्जेव तालीपत्तसंचओ,ताओ विअ अक्खरपतीओ।—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ४६

५. अइ विअक्खणे! सव्व सच्च एद?—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ५१

अनुराग कुछ-कुछ अलक्ष्य एव विचक्षणा के कथन-"सब सच ही समझो।"[1] द्वारा लक्ष्य है। इस प्रकार बीज का कुछ लक्ष्य एव कुछ अलक्ष्य रूप मे उदभेद होना है, अतः यहाँ प्रतिमुखसन्धि है।

(स) गर्भसन्धि-

जहाँ दिखाई देकर खोये गये बीज का बार-बार अन्वेषण किया जाता है, वह गर्भसन्धि है।[2] कर्पूरमञ्जरी सटट्क के तृतीय जवनिकान्तर मे राजा द्वारा बताये गये अपने स्वप्न की घटना के अनुसार-राजा की सय्या पर कर्पूरमञ्जरी के आने से उसके प्राप्ति की आशा होती है, हाथ छुड़ाकर भाग जाने पर नीद के भंग होने से स्वप्न का मिलन बाधित होता है। पुनः कर्पूरमञ्जरी के साथ राजा का साक्षात्कार होता है, जिससे उसकी प्राप्ति की पुनः आशा होती है। किन्तु ज्येष्ठा नायिका विभ्रमलेखा के आगमन का समाचार आशा भग कर देता है। यहाँ दिखायी देकर खोये हुए बीज का बार-बार अन्वेषण किया गया है। अतः यहाँ गर्भसन्धि है। यहाँ पताका नामक अर्थप्रकृति नही है, केवल प्रात्याशा नामक कार्यावस्था है, जो गर्भसन्धि का आवश्यक तत्व है।

(स) अवमर्शसन्धि-

जहाँ क्रोध से व्यसन से अथवा प्रलोभन से फलप्राप्ति के विषय मे विमर्श किया जाता है, तथा जिसमे गर्भसन्धि द्वारा निभिन्न बीजार्थ का सम्बन्ध दिखाया जाता है, वह अवमर्शसन्धि कहलाती है।[3] प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रथम-अध्याय मे सटट्क के लक्षण के प्रंसग में जैसा कि सुनिश्चित किया जा चुका है कि—इसमे या तो अवमर्श सन्धि, नही होती अथवा होती है तो अत्यल्प कर्पूरमञ्जरी सटट्क का जहाँ तक प्रश्न है, उसमे अल्प विमर्श प्राप्त होता है। चतुर्थ जवनिकान्तर के प्रारम्भ में राजा कर्पूरमञ्जरी का हाल जानने के लिए उत्सुक है, वह विदूषक से उसके विषय मे जिज्ञासा

---

१. सव्व सच्चअरं।—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ५१

२. गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः।—दशरूपक-१/३६

३. क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः।।—दशरूपक-१/४३

करता है। तदनन्तर विदूषक द्वारा कर्पूरमञ्जरी को कड़े पहरे मे रखने सम्बन्धी कथन[1] से विघ्न की उपस्थिति बताई गयी है। इस विघ्न के हटने पर फल प्राप्ति सुनिश्चित है। अततः विघ्न दूर करने का उपाय खोजा जाता है, जिसके तहत छद्म रूप मे राजा की कर्पूरमञ्जरी से शादी करवाने के लिए रानी को तैयार करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। भैरवानन्द के प्रयास से नियताप्ति सुनिश्चित होती है। यहाँ फलप्राप्ति हेतु विमर्श किया गया है। प्रकरी का यहाँ अभाव है, परन्तु नियताप्ति नामक कार्यावस्था है। अतः यहाँ अवमर्शसन्धि है।

(य) निर्वहणसन्धि–

जहाँ बीज से सम्बन्ध रखने वाले मुख सन्धि आदि मे, अपने स्थान पर बिखरे हुए प्रारम्भ आदि अर्थों का, मुख्य प्रयोजन के साथ सम्बन्ध दिखाया जाता है; वह निर्वहणसन्धि कहलाती है।[2] कर्पूरमञ्जरी सट्टक के चतुर्थ जवनिकान्तर के अंतिम चरण मे राजा का कर्पूरमञ्जरी से विवाह सम्पन्न होता है, साथ ही उसे चक्रवर्तित्व की प्राप्ति भी होती है। यहाँ पञ्चम कार्यावस्था फलागम का कार्य अर्थात् नायक-व्यापार नामक अर्थप्रकृति के साथ समन्वय हो रहा है। इस प्रसग मे भैरवानन्द,

---

१. राजा–(विदूषक प्रति) वअस्स! अत्थि तग्गदा का वि वत्ता? (वअस्य! अस्ति तद्गता काऽपि वार्ता?)
विदूषकः–अत्थि, सुणादु पिअवअस्स, कधेमि सुहासिद दे। जदो पहुदि कप्पूरमञ्जरी रक्खाभवणादो सुरगादुआरे देवीए दिट्टा, तदो पहुदि त सुरगादुआर देवीए बहलसिलासञ्चएण णीरन्ध कदुअ पिहिद। अणंगसेणा कलिगसेणा कामसेणा वसन्तसेणा विब्भमसेण त्ति पञ्चसेणाणामधेआओ चामरधारिणीओ फारप्फुरक्किदकरवालहत्थपाइक्कसहस्सेण सह कारामन्दिरस्स रक्खाणिमित्तं पुव्वदिसाए णिउत्ताओ।........सेणाए अज्झक्खीकिदाओत्ति। (अस्ति, शृणोतु प्रियवयस्यः, कथयामि सुभाषितं ते। यतः प्रभृति कर्पूरमञ्जरी रक्षाभवनात् सुरङ्गाद्वारे देव्या दृष्टा, ततः प्रभृति तत् सुरङ्गाद्वार देव्या बहुलशिलासञ्चयेन नीरन्ध्र कृत्वा पिहितम्। अनङ्गसेना, कलिङ्गसेना, कामसेना, वसन्तसेना, विभ्रमसेनेति पञ्च सेनानामधेयाश्चामरधारिण्यः स्फारस्फुरत्करवालहस्तपदातिसहस्रेण सह कारामन्दिरस्य रक्षानिमित्त पूर्वदिशि नियुक्ताः।......सेनायाः अध्यक्षीकृता इति।)–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ३४–३७

२. बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहण हि तत्।।–दशरूपक–१/४८–४९

विदूषक आदि के कार्यों का, जो मुखसन्धि मे बिखरे पड़े है, राजा के एक कार्य कर्पूरमञ्जरी समागम के लिए समाहार होता है, जो भैरवानन्द एव राजा के इस वार्तालाप द्वारा दिखाई पड़ रहा है–

भैरवानन्द–महाराज ! और आप की क्या इच्छा पूर्ण करूँ?

राजा–योगीश्वर! इससे बढ़कर और प्रिय क्या हो सकता है। क्योंकि कुन्तल देश के राजा की पुत्री कर्पूरमञ्जरी के कर स्पर्श के निरतिशय आनन्द से मुझे स्वर्ग भी तुच्छ जान पड़ता है और चक्रवर्ती सम्राट होकर महीतल पर मै राज्य कर रहा हूँ।[१] प्रस्तुत स्थल पर निर्वहणसन्धि है।

७. सन्ध्यङ्ग-योजना

पाँचो सन्धियों में प्रत्येक के अनेक अङ्ग होते है, जिनकी कुल संख्या ६४ बताई गयी है। विभिन्न नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में उनके नाम एव क्रम भिन्न–भिन्न प्राप्त होते है। कर्पूरमञ्जरी सटट्क मे प्रयुक्त पाँचों सन्धियों के प्रमुख सन्ध्यङ्गो का विवेचन प्रस्तुत है।

(अ) मुखसन्धि के प्रमुख अङ्ग–

(i) उपक्षेप– बीज का शब्दो मे रखना उपक्षेप कहलाता है।[२] कर्पूरमञ्जरी सटट्क में भैरवानन्द का जो यह कथन है कि---चन्द्रमा को पृथ्वी पर उतार कर दिखा सकता हूँ।---भूमण्डल पर ऐसा कोई कार्य नही जिसे मै न कर सकूँ। कहिए क्या करूँ?[३] यहाँ बीज को शब्दों में रखा गया है, अतः यहाँ मुखसन्धि का उपक्षेप नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ii) परिकर–बीज की वृद्धि परिकर है।[४] राजा भैरवानन्द से कुछ भी कर सकने की बात सुनकर, विदूषक से जो यह कहता है कि–"वयस्य! तुमने कही कोई अद्वितीय स्त्री रत्न देखा है?–

---

१. कर्पूरमञ्जरी–४/२२

२. बीजन्यास उपक्षेपः।–दशरूपक–१/२७

३. कर्पूरमञ्जरी–१/२७

४. तद्बाहुल्य परिक्रिया।–दशरूपक–१/२७

--बतलाओ।"[१] यह परिकर है, क्योकि यहाँ बीज की उत्पत्ति का ही बाहुल्य दिखाया गया है।

(iii) परिन्यास– बीज की निष्पत्ति परिन्यास कहलाती है।[२] विदूषक द्वारा वैदर्भ नगर मे कन्या रत्न देखने एव उसे बुलाने की बात कहने पर, राजा उस कन्या रत्न को बुलाने की बात दुहराता है।[३] यहाँ उक्षिप्त बीज अङ्कुरोत्पादन के लिए समर्थ हो गया है, जो फल की सिद्धि मे समर्थ है। अतएव यहाँ परिन्यास नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iv) परिभावना–अद्‌भुत बात का समावेश होना ही परिभावना है।[४] भैरवानन्द के द्वारा कर्पूरमञ्जरी को प्रकट किये जाने पर, राजा उसके प्रकट होने की घटना एव उसके सौन्दर्य को देखकर कौतुहल पूर्वक कह उठता है–"अहह! आश्चर्य है! आश्चर्य है!! इसकी आँखों का अजन धुला हुआ है, इसकी आँखें लाल हैं, इत्यादि।"[५] यहाँ अद्‌भुत भाव का समावेश होने से परिभावना है।

(v) विलोभन–गुणों का वर्णन विलोभन कहलाता है।[६] कर्पूरमञ्जरी को देखकर विदूषक कहता है–"अहो! क्या सौन्दर्य है? त्रिवली से युक्त इसकी कमर बच्चे की मुठ्ठी मे पकड़ी जा सकती है, इत्यादि।[७]" यहाँ नायिका के गुणो के वर्णन में नायक का विलोभन किया गया है, जो नायक नायिका के समागम का हेतु अनुराग रूपी बीज का जनक है। अतएव यहाँ विलोभन नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vi) समाधान–सक्षेप मे उक्षिप्त बीज का पुनः स्पष्ट रूप से आधान ही समाधान है।[८] भैरवानन्द के द्वारा उपस्थित की गयी नायिका राजा के सम्बन्ध में मन मे कहती है–"स्त्रियों के साथ रहने

---

१. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ३०

२. तन्निष्पत्तिः परिन्यासः।–दशरूपक–१/२७

३. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ३१

४ (क) परिभावोऽद्‌भुतावेशः।–दशरूपक–१/२९

(ख) कुतूहलोत्तरा वाचः प्रोक्ता तु परिभावना।–साहित्यदर्पण–६/८६

५. कर्पूरमञ्जरी–१/२६

६. गुणाख्यान विलोभनम्।–दशरूपक–१/२७

७. कर्पूरमञ्जरी–१/३०

८ पुनर्न्यासः समार्हितिः।–नाट्यदर्पण–१/५३

पर भी उसकी निगाहे मेरी ओर बड़े आदर के साथ लगी है।" उधर राजा भी विदूषक से अपवारित में कहता है कि–"उस नायिका के कानो तक फैले हुए चञ्चल तथा केतकी के दल रूपी द्रोणी के समान छवि वाले कटाक्षो से जो मुझको देखा है,----।"[1] इन दोनो के कथनों से यहाँ स्पष्ट हो रहा है कि एक दूसरे के प्रति दोनो मे प्रेमाङ्कुर फूट चुका है। यहाँ बीज का स्पष्टतः आधान होने से समाधान है।

(vii) प्राप्ति–बीज के सम्बन्ध मे सुख का प्राप्त होना प्राप्ति है।[2] नायिका द्वारा देखे जाने पर नायक अपनी अनुभूतियो को इस प्रकार व्यक्त करते हुए कहता है–"ऐसा ज्ञात होता है जैसे जल द्वारा धो दिया गया हूँ या चादनी मे मुझे स्नान करा दिया गया है अथवा मोतियो का अङ्गराग मुझ पर लगा दिया गया है।[3] यहाँ नायक की सुख की अनुभूतियाँ वर्णित है, अतः प्राप्ति नामक सन्ध्यङ्ग है।

(viii) युक्ति–प्रयोजन का निर्णय करना युक्ति कहलाता है।[4] कर्पूरमञ्जरी का अपनी मौसेरी बहन के रूप मे परिचय प्राप्त कर देवी उसके लिए भैरवानन्द से कहती है–"पन्द्रह–बीस दिन के लिए इसको यही रहने दो, बाद में अपने ध्यान रूपी विमान से इसको वापस ले जाना।" भैरवानन्द निवेदन स्वीकार कर लेता है।[5] यहाँ नायक नायिका के आत्यन्तिक मिलन रूप प्रयोजन के उद्देश्य से देवी के कथन द्वारा उपाय का समायोजन किया गया है। अतः युक्ति नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ix) भेद–पात्रों का रङ्गस्थल से भिन्न–भिन्न उद्देश्यो से बाहर जाना भेद कहलाता है।[6] यह

---

१. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ३४

२. प्राप्तिः सुखागमः।–दशरूपक–१/२८

३. कर्पूरमञ्जरी–१/२९

४. सम्प्रधारणमर्थानां युक्तिः।–दशरूपक–१/२८

५. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ४१

६. (क) भेदन पात्रनिर्गमः।–नाट्यदर्पण–१/४४

(ख) सघातभेदनार्थो यः सः भेदः।–नाट्यशस्त्र, अध्याय–१९

नायक के रङ्गभूमि से निकलने का भी निमित्त होता है। प्रथम जवनिकान्तर के अतिम चरण मे राजा भैरवानन्द के उचित सत्कार हेतु सुलक्षणा से कहने विचक्षणा को भेजना है। देवी कर्पूरमञ्जरी के वस्त्राभरण आदि ठीक करने के लिए अतःपुर मे जाने की आज्ञा राजा से माँगती है एव राजा अनुमति देता है।[१] इस प्रकार यहाँ विभिन्न उद्देश्य से पात्रो के सघात का भेदन हो रहा है, अतः भेद नामक मुखसन्धि का अङ्ग है।

(ब) प्रतिमुखसन्धि के प्रमुख अङ्ग–

(i) विलास–रति के लिए जो इच्छा होती है वह विलास कहलाती है।[२] द्वितीय जवनिकान्तर के प्रारम्भ मे नायक, नायिका के प्रति रति भाव की ईहा मे उन्मत्त सा हो गया है। वह कहता है–"चचल नेत्रो वाली वह तरुण नायिका, सदा मेरे चित्त मे बसी रहती है, उसके गुण सदा मुझे याद आते रहते है, वह मेरे सय्या पर सोती हुई सी प्रतीत होती है, इत्यादि।"[३] यहाँ नायिका के प्रति नायक की ईहा का वर्णन होने से विलास नामक प्रतिमुखसन्धि का अङ्ग है।

(ii) परिसर्प– पहले देखे गये एव पुनः नष्ट हुए बीज का अन्वेषण परिसर्प कहलाता है।[४] द्वितीय जवनिकान्तर के प्रारम्भ मे नायक, नायिका के विरह में व्यथित है, किन्तु असमय मे भैरवानन्द द्वारा केतकी पुष्प खिलाने सम्बन्धी प्रसग से बीज नष्ट सा हो जाता है। ऐसी स्थिति मे विचक्षणा नायक को नायिका का प्रेमपत्र देती है, जिसे वह पढ़ता है।[५] उसके माध्यम से पुनः बीज का अन्वेषण किया गया है। अतएव यहाँ परिसर्प है।

(iii) विधूत–सुखप्रद पदार्थों के प्रति अरूचि ही विधूत कहलाती है।[६] कर्पूरमञ्जरी की दशा का

---

१. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ४२

२. रत्यर्थेहा विलास स्याद्।–दशरूपक–१/३२

३. कर्पूरमञ्जरी–२/४

४. दृष्टनष्टानुसर्पणम्।–दशरूपक–१/३२

५. कर्पूरमञ्जरी–२/८

६. विधूत स्यादरतिः।–दशरूपक–१/३३

वर्णन करते हुए कहा गया है कि–"चन्दन रस उसके शरीर में जलन उत्पन्न कर रहा है। चन्द्रमा उसकी देह को जलाता है, इत्यादि।"[१] एव राजा की अवस्था सम्बन्धी कथन है कि–"चाँदनी गर्म मालूम पड़ती है, चन्दन का रस विष की तरह लगता है, इत्यादि।"[२] यहाँ सुखप्रद पदार्थों के प्रति अनादर प्रदर्शित है, अतः विधूत है।

(iv) शम–अरति की शान्ति शम कहलाती है।[३] नायिका का पत्र पढ़कर राजा कहता है कि–"यह कथन तो काम के वेग को शान्त करने वाली औषधि के समान है।"[४] यहाँ अपने प्रति कर्पूरमञ्जरी के प्रेम को जानकर राजा की अरति शान्त हो जाती है। अतः शम नामक सन्ध्यङ्ग है।

(v) नर्म–परिहास युक्त वचन नर्म कहलाता है।[५] विदूषक राजा से क्रोधित सा होकर कहता है–"मैने तो उस (कर्पूरमञ्जरी) का सब अलङ्कारो के साथ वर्णन किया और आप को वह उस अवस्था मे याद आती है जब स्नान करके उसके सारे प्रसाधन बिगड़े रहते है।"[६] यहाँ बीज के उद्घाटन सम्बन्धी परिहास का वर्णन है, अतः नर्म नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vi) नर्मद्युति—उस नर्म से उत्पन्न धृति ही नर्मद्युति मानी गयी है।[७] विदूषक का परिहास युक्त वचन सुनकर राजा कहता है—"बड़े दुख की बात है कि सुन्दर नितम्बो वाली स्त्रियाँ अपनी अनोखी वेश रचना के द्वारा मुग्धो का मन अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है।"[८] यहाँ से प्रारम्भ करके "युवास्था मे बिना शृङ्गार के ही शरीर सुन्दर रहता है।"[९] तक विदूषक के परिहास से उत्पन्न धृति का वर्णन

१. कर्पूरमञ्जरी–२/१०
२. कर्पूरमञ्जरी–२/११
३. तच्छमः शमः।—दशरूपक–१/३३
४. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ५५
५. परिहासवचो नर्मः।—दशरूपक–१/३३
६. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य–पृष्ठ ६४
७. धृतिस्तज्जा द्युतिर्मता।–१/३३
८. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ६५
९. वही, पृष्ठ ६८

है। अत नर्मद्युति नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vii) प्रगमन–बीज के सम्बन्ध में उत्तरोत्तर वचन ही प्रगमन है।[1] विचक्षणा का कथन कि– "कर्पूरमञ्जरी महाराज से प्रेम करती है, यह बात महाराज को सन्तोष पहुँचाती है, परन्तु उसे चन्द्रमा की किरणों से अपने को बचाने का समाचार डर उत्पन्न करता है, इत्यादि"[2] से लेकर विदूषक के कथन है, कि–"कामदेव रूपी चतुर चित्रकार उपर वर्णन किये गये विलास पूर्ण झूला झूलने के विस्तृत चित्र को किसके हृदय पर चित्रित नहीं करता"[3] तक; राजा, विदूषक, विचक्षणा के मध्य वार्ता के माध्यम से बीज के सम्बन्ध मे उत्तरोत्तर कथन किया गया है। अतः यहाँ प्रगमन है।

(viii) निरोधन–हित का रुक जाना निरोधन है।[4] झूला झूलती हुई नायिका झूले से उतरकर चली जाती है, जिससे राजा द्वारा उसे देखकर आनन्दित होने का हित बाधित हो जाता है, जैसा कि वह खुद कहता है–राजा (दुख के साथ) "अरे! कर्पूरमञ्जरी उतर पड़ी, झूला खाली हो गया और उसे देखने के लिए लालायित मेरी आँखे भी खाली हो गयी।"[5] यहाँ निरोधन नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ix) उपन्यास–उपाय सहित कथन ही उपन्यास कहलाता है।[6] कर्पूरमञ्जरी एव राजा दोनो काम ज्वर से पीड़ित है। इसके उपचार एव एक दूसरे का दर्शन कराने के उपाय के रूप मे विचक्षणा विदूषक से कहती है, कि–"महाराज के साथ मरकतकुञ्ज के द्वार पर कुछ देर ठहरो, ताकि दोनो को एक दूसरे का दर्शन हो जाने पर शिशिरोपचार सामग्री छोड़ दिया जाय।"[7] यहाँ उपन्यास है।

---

१. उत्तरा वाक्प्रगमनम्।–दशरूपक–१/३४
२. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ६९
३. वही, पृष्ठ ७८
४. हितरोधो निरोधनम्।–दशरूपक–१/३४
५. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ७८
६. उपन्यासस्तु सोपायम्।–दशरूपक–१/३५
७. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ८३

(स) गर्भसन्धि के प्रमुख अंङ्ग—

(i) मार्ग—प्रकृत विषय के सम्बन्ध मे यथार्थ कथन मार्ग है।[१] तृतीय जवनिकान्तर के प्रारम्भ मे नायक प्रकृति विषय नायिका प्राप्ति से सम्बन्धित अपने स्वप्न की यथार्थ बात यथावत विदूषक से कहता है, कि-"मुझे याद पड़ता है कि कमल के समान मुखवाली वह कर्पूरमञ्जरी मेरी विहार सय्या पर आयी और नीलकमल जैसे अपने नेत्रों से प्रहार करने की इच्छा से एकाएक मेरी भुजाओं मे बैठ गयी, तब मैने भी कुतूहल से एकदम अपने अचल में धीरे से उसको पकड़ा, लेकिन वह छुड़ा कर भाग गयी और मेरी निद्रा टूट गयी।"[२] यहाँ यथार्थ कथन होने से मार्ग है।

(ii) क्रम—सोची हुई वस्तु की प्राप्ति क्रम कहलाती है।[१] ३राजा और विदूषक एकाएक खिड़की के द्वार से अन्तःपुर मे विरहव्यथित कर्पूरमञ्जरी के पास पहुँचते है। राजा को देखकर नायिका कह उठती है—"अरे! यह एकाएक चन्द्रमा कैसे उतर आया।"[४] यहाँ से लेकर महाराज के कथन—"मेरी जिन आँखो ने तुमको देखा है उनकी मै सुवर्ण के फूलो से पूजा करूँगा।"[५] तक नायिका एव नायक को उनकी सोची हुई वस्तु अर्थात् एक दूसरे की प्राप्ति होती है, अतः यहाँ क्रम नामक गर्भसन्धि का अङ्ग है।

(iiii) अनुमान—किसी चिह्न से किसी बात का निर्णय करना अनुमान कहलाता है।[६] नेपथ्य मे कोलाहल को सुनकर, विदूषक महारानी के आने का अनुमान करते हुए कहता है—"महारानी ने प्रियसखी को धोखा दिया ऐसा समझा हूँ।"[७] यहाँ अनुमान नामक सन्ध्यङ्ग है।

---

१. मार्गस्तत्त्वार्थकीर्तनम्—दशरूपक-१/३८
२. कर्पूरमञ्जरी-३/३
३. क्रमः सचिन्त्यामानाप्तिः।-दशरूपक-१/३९
४. कर्पूरमञ्जरी,रामकुमार आचार्य, पृष्ठ-११२
५. वही, पृष्ठ-११४
६. अभ्यूहो लिङ्गतोऽनुमा।—दशरूपक-१/४०
७. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १२४

(iv) अभूताहरण—प्रकृत विषय से सम्बद्ध छलपूर्वक कार्य ही अभूताहरण है।[१] तृतीय जवनिकान्तर के अत मे नायक-नायिका के मिलन प्रसग मे महारानी के आगमन की सूचना मिलती है, जिस पर कुरगिका कहती है—"प्रिय सखि धोखा देकर, तुमसे महाराज के मिलने का समाचार पाकर, महारानी आ रही है" इत्यादि। अतत. कर्पूरमञ्जरी कहती है—"महाराज मुझे आज्ञा दे जिससे मै सुरग मार्ग से रक्षागृह मे चली जाऊँ और महारानी को आप से मिलने का वृतान्त मालूम न हो।"[२] यहाँ सूचित है कि सर्वप्रथम कर्पूरमञ्जरी महारानी से छल करके महाराज से मिलने आयी है। पुनः सुरग मार्ग से रक्षागृह मे जाकर महारानी से छल कर रही है। अतः यहाँ छलपूर्वक कार्य होने से अभूताहरण है।

(v) उद्वेग—शत्रु से उत्पन्न भय उद्वेग है।[3] तृतीय जवनिकान्तर के अत मे महारानी के आगमन का समाचार सुनकर नायिका भयभीत होती है एव जाने की अनुमति चाहती है।[४] यहाँ कर्पूरमञ्जरी के लिए महारानी प्रेम मे विघ्नकारी होने से शत्रु रूप ही है। यहाँ उद्वेग नायक सन्ध्यङ्ग है।

(द) अवमर्शसन्धि के प्रमुख अङ्ग—

(i) विद्रव—वध, बन्धन आदि का वर्णन विद्रव है।[५] चतुर्थ जवनिकान्तर मे कर्पूरमञ्जरी को कड़े पहरे मे अर्थात् बन्धन में रखने की बात कही गयी है।[६] अतएव विद्रव नामक अवमर्शसन्धि का अङ्ग है।

(ii) आदान—कार्य संग्रह आदान कहलाता है।[७] सारंगिका राजा से कहती है कि—"महारानी

---

१. अभूताहरण छद्म।—दशरूपक-१/३८
२. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १२५
३. उद्वेगोऽरिकृता भीतिः।—दशरूपक-१/४२
४. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १२५
५. विद्रवो वधबन्धादिः।—दशरूपक-१/४५
६. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १३४-१३७
७. आदानं कार्यसग्रहः।—दशरूपक-१/४८

कहती है कि आज शाम को आप का विवाह कराऊँगी।"[1] यहाँ कार्य का सग्रह दिखलाया गया है, अतः आदान नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iii) प्रसङ्ग—गुरुजनो का कीर्तन प्रसङ्ग कहलाता है।[2] महारानी द्वारा महाराज का विवाह घनसारमञ्जरी से करवाने के निर्णय की बात सुनकर राजा कहता है कि—"यह सब भैरवानन्द का काम है ऐसा सोचता हूँ। चन्द्रमा के अतिरिक्त कौन चन्द्रकान्त मणि की पुतली को पिघला सकता है। शरद् ऋतु में शेफालिका के पुष्पो को पवन के अतिरिक्त कौन खिला सकता है।"[3] यहाँ श्रेष्ठ भैरवानन्द का गुण कीर्तन किया गया है, अतः प्रसङ्ग नामक अवमर्शसन्धि अङ्ग है।

(य) निर्वहणसन्धि के प्रमुख अङ्ग—

(i) ग्रथन—फल के उपक्षेप को ग्रथन कहा जाता है।[4] सारगिका राजा को सदेश देती है कि—"महारानी के द्वारा बनवाये गये प्रमदोद्यान के मध्य मे स्थित वटवृक्ष के नीचे चामुण्डा देवी के मंदिर मे भैरवानन्द और महारानी आयेगी, आज दक्षिणा मे कौतूहल से विवाह किया जायेगा, महाराज यही ठहरें।"[5] यहाँ पर फल की सूचना दी जा रही है, अतः ग्रथन है।

(ii) सन्धि—बीज का सधान ही सन्धि कहलाता है।[6] सुरग से निकलकर कर्पूरमञ्जरी भैरवानन्द को प्रणाम करती है, जिसके आशीर्वाद स्वरूप वह कहता है कि—"उचित वर पाओ।"[7] यहाँ बीज का फलागम से अन्वित करके सधान किया गया है, इस प्रकार यहाँ सन्धि नामक सन्ध्यङ्ग है।

---

१. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १४३
२. गुरुकीर्तन प्रसङ्गः।—दशरूपक—१/४६
३. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १४५
४. ग्रथनं तदुपक्षेपो।—दशरूपक—१/५१
५. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १४५
६. सन्धिर्बीजोपगमनम्।—दशरूपक—१/५१
७. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १४७

(iii) समय—दुःख का दूर हो जाना समय कहलाना है।[1] विदूषक विवाह के अवसर पर राजा से जनातिक में कहता है—"तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया।"[2] इसमे दुःख का दूर हो जाना स्पष्ट हो जाता है, अतएव समय नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iv) प्रसाद—प्रसन्न करने का प्रयास प्रसाद कहलाता है।[3] विवाह के प्रसग मे विदूषक द्वारा कर्पूरमञ्जरी का नाम उच्चारण करने एवं इसे सुनकर रानी द्वारा चौकने पर भैरवानन्द रानी के उस भाव को जानकर उसे प्रसन्न करने के उद्देश्य से विदूषक से कहता है—"तुम तो भूल मे हो, घनसारमञ्जरी को कर्पूरमञ्जरी का दूसरा नाम समझते हो।"[4] यहाँ प्रसन्न करने का प्रयास होने से प्रसाद नामक सन्ध्यङ्ग है।

(v) आनन्द—अभीष्ट की प्राप्ति होना आनन्द कहलाता है।[5] राजा एव कर्पूरमञ्जरी का विवाह सम्पन्न होता है, जिसमे राजा घूमने का अभिनय करता है।[6] यहाँ नायक को अभीष्ट की प्राप्ति होती है। अतः आनन्द नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vi) कृति—लब्ध अर्थ का स्थिरीकरण कृति कहलाता है।[7] विवाहोपरान्त दक्षिणा पाकर विदूषक आशीर्वाद देता है—"कल्याण हो।"[8] इस आशीर्वचन द्वारा राजा को प्राप्त चक्रवर्तित्व एवं नायिका रूपी फल का स्थिरीकरण किया गया है। अतः यहाँ कृति नामक सन्ध्यङ्ग है।

---

१. समयो दुःखनिर्गमः।—दशरूपक-१/५२
२. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १५१
३. प्रसादः पर्युपासनम्।—दशरूपक-१/५२
४. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १५२
५. आनन्दो वाञ्छितातिः।—दशरूपक-१/५२
६. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १५३
७. लब्धस्थिरीकरणं कृति।—प्रतापरुद्रीय-३/२१
८. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १५४

(vii) काव्यसंहार—वरदान की प्राप्ति काव्यसंहार है।[1] चतुर्थ जवनिकान्तर में अन्तिम चरण में भैरवानन्द राजा से कहता है कि—"महाराज' और आपकी क्या इच्छा पूर्ण करूँ।"[2] यहाँ इस कथन द्वारा काव्यार्थ का उपसंहार किया गया है। अतएव यहाँ काव्यसंहार नामक निर्वहणसन्धि का अङ्ग है।

(viii) आभाषण—प्राप्त हुए फल का अनुमोदन करना आभाषण या भाषण कहलाता है।[3] राजा प्राप्त हुए फल का अनुमोदन करते हुए भैरवानन्द से कहता है—"योगीश्वर! इससे बढ़कर और प्रिय क्या हो सकता है, क्योंकि कुन्तल देश के राजा की पुत्री कर्पूरमञ्जरी के कर स्पर्श के निरतिशय आनन्द से मुझे स्वर्ग भी तुच्छ जान पड़ता है और चक्रवर्ती होकर सारे महीतल पर मै राज्य कर रहा हूँ।"[4] इस प्रकार यहाँ आभाषण नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ix) प्रशस्ति—शुभ का कथन प्रशस्ति कहलाता है।[5] चतुर्थ जवनिकान्तर के अंत मे राजा भैरवानन्द के प्रति कहता है—"तब भी ऐसा हो जाए—सारे सज्जन वृन्द सत्यभाषण तथा सदाचार में आनन्द का अनुभव करे। दुष्ट गण हमेशा दुःख भोगते रहे। ब्राह्मणो के आशीर्वाद सर्वदा सत्य निकले, इत्यादि।"[6] यहाँ शुभ अर्थ का कथन किया गया है, अतः प्रशस्ति नामक निर्वहणसन्धि का अङ्ग है।

---

१. वराप्तिः काव्यसंहारः।—दशरूपक–१/५४
२. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १५४
३. प्राप्तकार्यानुमोदनमाभाषणम्—प्रतापरुद्रीय–३/२१
४. कर्पूरमञ्जरी–४/२२
५. प्रशस्तिः शुभशंसनम्।—दशरूपक–१/५४
६. कर्पूरमञ्जरी–४/२३

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक का वस्तु-विवेचन

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की कथावस्तु चार जवनिकान्तरो मे विभाजित है। वस्तु को विवेचित करने से पूर्व उसे सक्षेप मे प्रस्तुत करना अपेक्षित है, जो इस प्रकार है।—

शृङ्गारमञ्जरी का कथानक

प्रथम जवनिकान्तर मे राजा राजशेखर एव विदूषक, उद्यान मे अपने-अपने स्वप्न की बाते कहते है। राजा स्वप्नदृष्ट एक सुन्दरी का उल्लेख करता है, जिसकी रूपमाधुरी पर वह मोहित है। विदूषक ने राजा को स्वप्न में ऐरावत हाथी पर बैठा हुआ देखा था। राजा स्वप्न की सुन्दरी को पाने का अभिलाष विदूषक से व्यक्त करता है, जिसे शृङ्गारमञ्जरी की अतरङ्ग परिचारिका एव सहेली वसन्ततिलका सुन लेती है। कहीं वह रानी को बता न दे, इससे राजा आशकित है। अतएव उसे विश्वास मे लेकर स्वप्न की बात उससे स्पष्टतः बताता है, एव उसका चित्र बनाकर दिखाता है, जिसे वसन्ततिलका अन्तःपुर मे रहने वाली शृङ्गारमञ्जरी के रूप मे पहचान करती है। वह नायिका की तरफ से एक कवित्वपूर्ण पद्य राजा से निवेदित करती है, जिसमे उसने महाराज के प्रति अपना प्रेम व्यक्त किया है। यहाँ नायक एव नायिका का एक-दूसरे के प्रति प्रेम स्पष्ट हो जाता है। वसन्ततिलका शृङ्गारमञ्जरी को सन्देश पहुँचाने चली जाती है।

द्वितीय जवनिकान्तर मे नायक नायिका की स्मृति में विह्वल है। शृङ्गारमञ्जरी के दर्शन के लिए विदूषक उपाय सोचता है। देवी के संदेशानुसार राजा मदनपूजा के लिए, विदूषक के साथ मदनोद्यान मे जा रहा है। इस अवसर पर विदूषक की आँख फड़कती है, जिस पर वसन्ततिलका व्यङ्गय करती है। परिणामतः दोनो मे विवाद हो जाता है, जो शास्त्रीय विवाद का रूप धारण कर लेता है। इसके निर्णय हेतु देवी शृङ्गारमञ्जरी को बुलवाती है। महाराज शृङ्गारमञ्जरी को देख लेते हैं, विदूषक का उपाय सफल हो जाता है। अंततः रानी को दोनों के प्रेम का पता चल जाता है। प्रेम सहयोगी होने के कारण विदूषक एवं वसन्ततिलका का मिलना बन्द करवा दिया जाता है, एवं नायिका को

वन्दी वनाकर रख दिया जाता है।

तृतीय जवनिकान्तर में नायिका पर महारानी की कड़ी निगरानी वर्णित है। विदूषक किसी तरह वसन्ततिलका से मिलता है, जिससे उसे ज्ञात होता है कि—नायिका का विरह संताप असह्य है। वह काम संताप के कारण लतापाश से गला घोंट कर मरना चाहती है, तथा मात्र इस आश्वासन पर जीवित है कि—माधवी लता के मण्डप में महाराज से उसका मिलन होगा। अतः विदूषक की प्रार्थना पर राजा नायिका की रक्षा हेतु उस स्थान पर जाता है। शृङ्गारमञ्जरी को वसन्ततिलका ले आती है। नायिका, नायक बाते करते है। राजा नायिका को प्रेम का पूरा आश्वासन देता है। जब वह जाना चाहती है, उस समय भी राजा उससे प्रेम बनाये रखने को कहते है।

चतुर्थ जवनिकान्तर मे राजा नायिका के मिलन को याद करता है, साथ ही रानी के क्रूर व्यवहार से दुःखी एवं निराश है, क्योकि रानी ने वसन्ततिलका एव विदूषक को भी बन्दी बना रखा है। किसी प्रकार कारागार से मुक्त विदूषक भाग्य को कोसता दिखाई पड़ता है एवं राजा के पूछने पर बताता है, कि—पार्वती की पूजा करके लौटते हुए महारानी को दिव्य वाणी सुनाई पड़ी कि—"पति की सेवा करना ही पतिव्रता का धर्म है।" ऐसी वाणी सुनते ही महारानी ने हम सभी को कारागार से छोड़ दिया। इसके बाद महारानी, वसन्ततिलका एव शृङ्गारमञ्जरी के साथ महाराज के पास आती है, एवं शृङ्गारमञ्जरी को राजा के लिए उपहार के रूप मे प्रस्तुत करती है; राजा उसे स्वीकार करता है। इसी समय मन्त्री चारुभूति आकर राजा का चक्रवर्ती के रूप में अभिवादन करता है तथा शृङ्गारमञ्जरी का पूर्व वृतान्त बताता है, जिसके अनुसार वह अवन्तिराज जटाकेतु की पुत्री है। मातङ्ग ऋषि से यह ज्ञात होने पर कि—'उसका पति चक्रवर्ती राजा होगा'; उसने शृङ्गामञ्जरी को ले आकर रानी के पास रखा था। महारानी यह जानकर दुःखित होती है, कि–उसने आत्मीय को कष्ट दिया। पश्चात्ताप के साथ वह शृङ्गारमञ्जरी एव राजा का विवाह करवा देती है। नायिका देवी को धन्यवाद देती है। महाराज अभीष्ट प्राप्ति से प्रसन्न होते हैं तथा अंत में सभी के मंगल की कामना करते हैं।

शृङ्गारमञ्जरी के कथानक का स्वरूप

(क) बाह्य स्वरूप–

शृङ्गारमञ्जरी का कथानक स्रोत की दृष्टि से उत्पाद्य कोटि का है। इस प्रकार यह सट्टक के लक्षण के पूर्णतः अनुरूप है, जिसमें कहा गया है कि—सट्टक का कथानक कवि कल्पित होना है। यद्यपि इसमें अवन्ति जैसे ऐतिहासिक स्थल एव इतिहास मे वर्णित राजा राजशेखर का उल्लेख है, किन्तु इसके अन्य पात्रो एव कथा का इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं है और न ही कथा पुराणों या महाभारत–रामायण जैसे महाकाव्यों की उपजीवी है। यह भी कर्पूरमञ्जरी की भाँति उन तमाम घटनाओं को इकट्ठा करके नये ढग से गुम्फित हुई है, जिसका समायोजन भास के नाटकों एव हर्ष की नाटिकाओं मे किया गया है।

पात्र की दृष्टि से यह कथा मर्त्य की कोटि में रखी जा सकती है, क्योकि इसके सभी पात्र मानवीय गुणो वाले विशुद्ध इहलोक के प्राणी है। यद्यपि आकाशवाणी की घटना दैवीय है, परन्तु मात्र इस घटना के कारण यह दैवीय या दिव्यादिव्य की कोटि में रखने की पात्रता नही प्राप्त कर लेता, क्योकि इस घटना में मानवीय व्यवहार का ही उद्‌घाटन किया गया है, जो कथानक मे आवश्यक मोड़ ले आने हेतु अपेक्षित था।

प्रयोजन की दृष्टि से विचार करने पर इसमे धर्म एव काम दोनों प्रयोजन परिलक्षित होते है। मन्त्री राजा के चक्रवर्तित्व की प्राप्ति हेतु ही नायिका को ज्येष्ठा नायिका के पास अन्तःपुर में रखता है, जिससे राजा से उसकी शादी हो सके। इस प्रकार चक्रवर्तित्व रूप धर्म नामक पुरुषार्थ परम प्रयोजन के रूप मे दिखाई पड़ता है, किन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करे तो काम ही परम प्रयोजन के रूप में परलिक्षित होता है। क्योंकि काम नामक पुरूषार्थ को लक्ष्य में रखकर ही कथा निरन्तर आगे बढ़ रही है राजा जो फल का अधिकारी है, वह काम नामक पुरुषार्थ की प्राप्ति हेतु ही सतत् प्रयत्नशील है। कथा के अन्तिम चरण तक नायक को इस बात का आभास तक नही

है, कि—जिस मार्ग पर वह आगे बढ़ रहा है, उसके द्वारा उसे चक्रवर्ती पद की प्राप्ति भी होने वाली है। इस प्रकार चक्रवर्तित्व रूप 'धर्म' की प्राप्ति को अवान्तर प्रयोजन एव 'काम' को परम प्रयोजन मानना ही उचित है। निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है, कि—'धर्म' से अनुगत 'काम' कथा का प्रयोजन है।

(ख) अन्तःस्वरूप–

१. आधिकारिक एवं प्रासङ्गिक वृत्त

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक का फल है, राजा का शृङ्गारमञ्जरी से विवाह एव चक्रवर्तित्व की प्राप्ति। अतएव इस फल तक पहुँचने वाला सम्पूर्ण वृत्त ही, नाटक का आधिकारिक वृत्त है। पताका एव प्रकरी उपभेदो वाले प्रासगिक वृत्तो मे से, शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे प्रकरी का गुम्फन प्राप्त होता है। चतुर्थ जवनिकान्तर के अतिम चरण में, अमात्य चारुभूति द्वारा मातग ऋषि की कृपा से, राक्षस (पूर्व जन्म का मणिमाली पार्षद) के चगुल से शृङ्गारमञ्जरी को पाने एवं राजा के कल्याण के लिए उसे अन्त.पुर मे रखने की कथा प्रकरी[1] है। इस लघु कथा का मुख्य कथा के साथ नैरन्तर्य नहीं है, अपितु पुष्प के ढ़ेर के समान[2] एक स्थान पर एकत्र करके रखी गयी है। नाट्य एव इस कथा के पात्र चारूभूति के लिए इसका फल नहीं है; अपितु अन्य पात्र राजा के लिए इसका फल है। प्रकरी का पात्र चारुभूति, प्रधान नायक के सहयोग के बिना ही, उसके फल प्राप्ति हेतु कार्य सम्पादित करता है।[3]

---

१. सानुबन्ध पताकाख्य प्रकरी च प्रदेशभाक्।—दशरूपक–१/१३

२. पुष्पप्रकरवन्निहिता या शोभा जनयति सा प्रकरी।—नाट्यलक्षणरत्नकोश, पृष्ठ–२१

३. फल प्रकल्प्यते यस्याः परार्थायैव केवलम्।
अनुबन्धविहीनत्वात् प्रकरीति विनिर्दिशेत्।।—नाट्यशास्त्र–२०/२४

२. अर्थोपक्षेपक

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे कथानक के दृश्य एव सूच्य भागो मे से, दृश्य अशो को पात्रो द्वारा चतुर्विध अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। सूच्य अशो को प्रस्तुत करने वाले अर्थोपक्षेपकों का विवेचन क्रमशः इस प्रकार है–

(अ) विष्कम्भक–

सट्टक के लक्षणनुसार शृङ्गारमञ्जरी मे विष्कम्भक का अभाव है।

(ब) प्रवेशक–

सट्टक के लक्षणानुसार प्रवेशक भी इसमें प्राप्त नही होता।

(स) चूलिका–

शृङ्गारमञ्जरी मे चूलिका के कुल पाँच प्रयोग प्राप्त होते है। सर्वप्रथम प्रस्तावना को ही दो वार चूलिका का प्रयोग करके प्रस्तुत किया गया है। मूल कथा मे तीन स्थलो पर चूलिका का प्रयोग हुआ है। प्रथम जवनिकान्तर के अंतिम चरण में, चूलिका के माध्यम से भगवान शंकर की स्तुति के बहाने, सायंकाल के आगमन की इस प्रकार सूचना दी गयी है–

(नेपथ्य में)

"सन्ध्यानृत्य के समय, शकर की जटाओ की भारी-भारी गाठें के छूट जाने और शरीर के घुमाव के कारण गले मे स्थित नागराज के शिथिल पड़ जाने के कारण, उनके ललाट पर बिखरा हुआ पिंग वर्ण का जटा–समूह ऐसा लगता है–मानो ललाट के तीसरे नेत्र से उत्पन्न आग की लपटे हो। ऐसा सन्ध्यानृत्य आप को श्री देने वाला हो।"[१] यह चूलिका है। इसी प्रकार द्वितीय जवनिकान्तर

---

१. जूडे मुक्के भमणसिढिलीहूअणाइददाए
जस्सि पिगं विलसइ जडामडलं विप्फइण्णं।
भालूद्देसोदिअसिहिसमुत्थं व जालावअबं
सझाणच्च तिउररिउणो होउ त वो सिरीए।।–शृङ्गारमञ्जरी–१/४०

के अन्त मे कामदेव के आशीर्वाद-परक-स्तुति[1] के माध्यम मे, 'मनोकामना पूर्ण होगी' इसकी अभिव्यञ्जना की गयी है। तृतीय जवनिकान्तर के मध्य मे, चूलिका के माध्यम से प्रदोषकाल के प्रकट होने की सूचना दी गयी है;[2] जिससे दर्शको को उस तथ्य से अवगत कराया जा सके, कि–राजा सकेत स्थल पर नायिका से मिलने अधेरा घिरने पर जा रहा है।

(द) अङ्कास्य–

शृङ्गारमञ्जरी सटट्क मे अङ्कास्य का प्रयोग नहीं हुआ है।

(य) अङ्कावतार–

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में अङ्कावतार का भी सर्वथा अभाव है।

३. नाट्योक्ति

नाट्योक्ति के सर्वश्राव्य,अश्राव्य एव नियतश्राव्य ये तीनो ही रूप शृङ्गारमञ्जरी मे उपलब्ध है।

(अ) सर्वश्राव्य–

मञ्चस्थ सभी पात्रों के सुनने योग्य कथन की शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे बहुलता है। कुछ गिने चुने अश्राव्य एव नियतश्राव्य अशो को छोड़कर सम्पूर्ण कथाश सर्वश्राव्य के अन्तरगत आता है।

(ब) अश्राव्य–

शृङ्गारमञ्जरी में अश्राव्य या स्वगत कथनों के अनेक मनोरजक स्थल उपलब्ध हैं, जिनकी कथा के विकास में महत्वपूर्णस्थल भूमिका है। कतिपय महत्वपूर्ण स्थल उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है–

(i) प्रथम जवनिकान्तर में राजा विदूषक से अपने स्वप्न के वृतान्त को बताने के बाद वसन्ततिलका को देखकर आशका के साथ मन में कहता है–"कह देईए वीसंभभाअणं बसन्ततिलआ। मा णाम

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–२/४१

२. शृङ्गारमञ्जरी–३/१५

एद एदाए सुद भोदु अहो एक्कदेशे मिविणअम्म सवाओ।"[1] अर्थात् यह तो देवी की विश्वासपात्र वसन्ततिलका है। क्या उसने हमारी बात सुन तो नहीं ली? आश्चर्य है कि मेरे स्वप्न के एक अश का सादृश्य मिल चुका। यहाँ इस कथन के माध्यम से राजा द्वारा मूलतः महारानी से भयभीत होना एव स्वप्न सुन्दरी के मिल सकने की सभावना व्यञ्जित की गयी है।

(ii) द्वितीय जवनिकान्तर मे, विदूषक एवं वसन्ततिलका के मध्य, रस विषय पर शास्त्रार्थ के निर्णय के लिए शृङ्गारमञ्जरी को बुलाने के निर्णय सम्बन्धी रानी का स्वगत कथन है–"कध णिम्मूलम्म वि.. .. ण मनेदि। भोदु । का गई।[2]" अर्थात् कैसे बिना किसी कारण के ही साधारण सी बात का कितना विषम परिणाम हो जाता है। अन्तःपुर मे शृङ्गारमञ्जरी रहती है, जिसने रस निरूपण मे अच्छा परिश्रम किया है और उसकी इस विषय की अनेक बार परीक्षा भी ली जा चुकी है। वह असाधारण सौन्दर्यशालिनी है, अतः मैने उसे महाराज की दृष्टि से प्रयत्नपूर्वक बचाया है। यहाँ अब किसी बाहरी व्यक्ति का प्रवेश उचित नही है। मैने इन दोनो के वाद-विवाद की परीक्षा करवाने की बात सोची है। यह गौतम ब्राह्मण मूर्ख है, जो हम पर विश्वास नही करता। ठीक है, अब क्या किया जाय? विवशता है।" इस स्वगत कथन से शृङ्गारमञ्जरी की अपूर्वसुन्दरता, असाधारण विद्वत्ता, उसे देखकर राजा द्वारा शृङ्गारमञ्जरी पर मुग्ध होने की रानी की आशका आदि, कथा के महत्त्वपूर्ण अश प्रकट हो रहे है।

(iii) तृतीय जवनिकान्तर में राजा द्वारा नायिका का हाथ पकड़ने पर नायिका की मनोदशा की सुन्दर अभिव्यक्ति नायक के स्वगत कथन द्वारा हो रही है, जो इस प्रकार है–

"जइ वि ण करेइ जत्त मम करमालविड मुद्धा।
तह वि गहिअ णिअकरं ण मम करादो विओएइ।।"[3]

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १९

२. शृङ्गारमञ्जरी–डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ५०

३. शृङ्गारमञ्जरी–३/५२

(यद्यपि यह भोली मेरे हाथ का सहारा लेने का प्रयत्न नहीं कर रही है, परन्तु फिर भी मेरे द्वारा पकड़े हुए अपने हाथ को मेरे हाथ में नहीं छुड़ा रही है।)

(iv) चतुर्थ जवनिकान्तर मे देवी का स्वगत कथन है–"अहो! अइक्कमो। मम आवुत्तस्स अवन्तिपइणो दुहिदा, ण पहवामि लज्जाए मुह दावेउ।[1]" (अरे यह तो मर्यादा का अतिक्रमण हो गया। यह तो मेरे बहनोई अवन्तिराज की बिटिया है। मै तो लज्जा के कारण अपना मुँह दिखाने के योग्य नही रही।) इसके द्वारा शृङ्गारमञ्जरी को निकट सम्बन्धी के रूप मे पहचान कर, उसके प्रति किये गये अपने व्यवहार के कारण शर्मिन्दगी महसूस कर रही है। यद्यपि यह सर्वश्राव्य कथन भी हो सकता था, किन्तु वह बनावटी जैसा लगता, जबकि स्वगत कथन होने के कारण देवी की शर्मिन्दगी की अभिव्यञ्जना कई गुना बढ़ जाती है। उसके चरित्र की महनीयता स्पष्ट झलकने लगती है।

(स) नियतश्राव्य–

नियतश्राव्य के भी कुछ स्थल शृङ्गारमञ्जरी मे उपलब्ध होते है। जैसे–

(i) द्वितीय जवनिकान्तर मे विदूषक, राजा, वसन्ततिलका, माधविका आदि के मध्य देवी, माधविका से जनान्तिक के माध्यम से, शृङ्गारमञ्जरी को ले आने के लिए कहती है–"हज्जे माहविए, सिगारमजरि गहिअ लहु आअच्छ।"[2] (सखी माधविका! शृङ्गारमञ्जरी को लेकर यहाँ शीघ्र आओ।) यह कथन केवल माधविका के लिए कहा गया है, ताकि जिसे निर्णायक के रूप में बुलाया जा रहा है उसका नाम आदि सुनकर राजा की उसमे उत्सुकता न हो सके।

(ii) तृतीय जवनिकान्तर में राजा वसन्ततिलका एवं शृङ्गारमञ्जरी की उपस्थिति मे विदूषक से जनान्तिक द्वारा कहता है–"एसो ज्जेव पिअअमासगमाणुरूओ मुहुत्तो।............दुक्खमइवेल।।[3]

१. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १०७

२. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ५०

३. शृङ्गारमञ्जरी–३/४६–४७

अर्थात् यही प्रियतमा से मिलने का समय होता है, क्योंकि इसने मेरे लिए ही सदैव इतना कष्ट सहन किया, तो स्वाधीन होकर भी मै इस उपयुक्त वेला की अवहेलना क्यो करूँ। पहला वियोग अब दुखदायक नही होगा, क्योकि मनोरथ रूपी अमृत से इसके शरीर को, अधिक शाति प्राप्त हुई है। इस मनोरथ के विना इस सकेतिक समय मे इसे अवश्य ही अधिक दुख होता है। यहाँ राजा विदूषक से समय परिस्थिति के अनुकूल जो बाते कर रहा है, उसे किसी अन्य पात्र को सुनाना अपेक्षित नही है, जबकि दर्शको एव विदूषक को राजा की मनोदशा एव विचारो का भान कराना आवश्यक है।

४. अर्थप्रकृतियाँ

शृङ्गारमञ्जरी की कथावस्तु में पताका के अतिरिक्त अन्य अर्थप्रकृतियो का सुन्दर समायोजन प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है–

(अ) बीज–

शृङ्गारमञ्जरी के प्रथम जवनिकान्तर मे राजा[१] एव विदूषक[२] की उक्तियो मे बीज नामक अर्थप्रकृति है। नायक राजशेखर स्वप्न मे एक सुन्दरी को देखता है तथा उसके रूप लावण्य पर

---

१ राजा–सुट्ठु भणिद केनावि। त जहा (सुष्ठु भणित केनापि। तद्यथा)–

अत्थाण असताण वि इह अणुहवगोअरे अराण पि।
णिद्दा जणेइ बोह अदिट्ठसक्कारमाहप्पा।।
(अर्थानामसतामपि इहानुभवगोचरेतराणामपि।
निद्रा जनयति बोधमदृष्टसत्कारमाहात्म्या।।)–शृङ्गारमञ्जरी–१/१५

२ विदूषक–उववण्ण भणइ पिअवअस्सो। कहमण्णहा (उपपन्नं भणति प्रियवयस्यः। कथमन्यथा)–

गअणसरिआइ सोत्ते अब्भमुवल्लहगइंदमारूढो।
अर–अंबर–संवाओ दिट्ठो सि भव पसुत्तेण।।
(गगनसरितः स्रोतसि अभ्रमुवल्लभगजेन्द्रमारूढः।
वर–अम्बर–सवीतो दृष्टोऽसि भवान् मया प्रसुप्तेन।।)–शृङ्गारमञ्जरी–१/१६

मोहित होकर उसे प्राप्त करना चाहता है। विदूषक स्वप्न में राजा को ऐरावत पर बैठा हुआ देखता है, जो राजशेखर के चक्रवर्ती होने का सूचक है। इस प्रकार राजा एवं विदूषक की उक्तियों में, नायिका प्राप्ति एव राजा के चक्रवर्ती होने की व्यजञ्जना है। यही बीज नामक अर्थप्रकृति है, जो वृक्ष की तरह अकुरित होकर नायक के फलप्राप्ति की ओर बढ़ता है

(ब) बिन्दु—

शृङ्गारमञ्जरी के द्वितीय जवनिकान्तर में विदूषक एव वसन्ततिलका के कलह से कथा का सूत्र शिथिल पड़ जाता है। विदूषक एव वसन्ततिलका के मध्य प्रारम्भ हुए शास्त्रीय विवाद का निर्णय करने के लिए नायिका मध्यस्थता का कार्य करती है,जहाँ नायक एव नायिका एक दूसरे को देखते है। तदनन्तर देवी की आज्ञा से नायिका चली जाती है। यहाँ से कथा पुनः चल पड़ती है। यही कथा का बिन्दु है, क्योकि विच्छिन्न हुए कथासूत्र को जोड़ने एव आगे बढ़ाने का यही कारण है।

(स) पताका—

इसका शृङ्गारमञ्जरी सटट्क मे अभाव है।

(द) प्रकरी—

चतुर्थ जवनिकान्तर के अतिम चरण मे प्रकरी का समायोजन किया गया है। सामान्य रूप से प्रकरी का समायोजन गर्भ या अवमर्श सन्धि में होता है, किन्तु यहाँ निर्वहण सन्धि में प्रकरी का समायोजन हुआ है। पताका के सन्दर्भ मे 'नाट्यलक्षणरत्नकोश' मे कहा गया है कि–"सा गर्भेऽवमर्शे च निवर्तते इति नात्यन्तिकमेतदवगन्तव्यम् ।"[१] अर्थात् पताका की स्थिति गर्भ या अवमर्श के बाद नहीं रहती; यह कथन एकदम नियम के रूप में नहीं लेना चाहिए। यही कथन प्रकरी के सम्बन्ध मे भी किया जा सकता है। अतः यहाँ निर्वहण सन्धि में प्रकरी का समायोजन सामान्य परम्परा

---

१. नाट्यलक्षणरत्नकोश, पृष्ठ २०

से अलग हट कर है।

प्रस्तुत प्रकरी मे अमात्य चारुभूति द्वारा मातग ऋषि की कृपा से राक्षस (जो पूर्व जन्म का मणिमाली पार्षद है) के चगुल से शृङ्गारमञ्जरी को पाने एव राजा के कल्याण के लिए उसे अन्तःपुर मे रखने की कथा वर्णित है।[1] इस लघु कथा का मुख्य कथा के साथ नैरन्तर्य नहीं है, अपितु यह एक स्थान पर रखी गयी है। इस कथा का प्रमुख पात्र चारुभूति प्रधान नायक राजा के लिए फल प्राप्ति हेतु कार्य सम्पादित करता है। इस प्रकार यह हर प्रकार से प्रकरी के लक्षणो से युक्त है।

(स) कार्य–

शृङ्गारमञ्जरी सटट्क के चतुर्थ जवनिकान्तर के अतिम चरण मे नायक राजशेखर का नायिका शृङ्गारमञ्जरी के साथ महारानी की अनुमति से विवाह होता है[2] साथ ही उसे चक्रवर्ती पद की प्राप्ति होती है।[3] यही कार्य नामक अर्थप्रकृति है।

५. कार्यावस्थायें

आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम नामक कार्य व्यापार की पाँच अवस्थाओं की दृष्टि से शृङ्गारमञ्जरी सटट्क की कथावस्तु का सुव्यवस्थित गुम्फन द्रष्टव्य है–

(अ) आरम्भ–

शृङ्गारमञ्जरी के प्रथम जवनिकान्तर में राजा विदूषक से अपने स्वप्न के विषय मे बताता है; जिसमे उसने एक अपूर्व सुन्दरी को देखा था। वह उस सुन्दरी के सौन्दर्य पर मुग्ध है एवं उसे प्राप्त

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०६–१०८

२. देवी–गधव्वविहिणा करीअदु परिणओ इमीए। (गान्धर्वविधिना क्रियता परिणयोऽस्याः।)
राजा–ज देवी आणवेदि। (यद्देव्याज्ञापयति।)
(इति सर्वे यथोचितपरिणयसमाप्तिमभिनयन्ति)–शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०५

३. अमात्य–देव, दिठ्ठिआ वड्ढसि चक्कवत्तिपएण।
(देव! दिष्ट्या वर्धसे चक्रवर्तिपदेन।)–शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०६

करना चाहता है। राजा एक तरफ विदूषक से स्वप्न की उस सुन्दरी के प्रति प्रेम का प्रकाशन करता है, तो दूसरी तरफ वसन्ततिलका से इस बात को छिपाना चाहता है, किन्तु यह गोप्य-गोपन का प्रयास अधिक देर तक स्थिर नहीं रह पाता। अततः वह अपने स्वप्न के रहस्य को वसन्ततिलका के सामने खोलते हुए कह उठता है–"वसन्ततिलए! अज्ज सिविणए अउव्वगुणगणसोहिरी का वि णाइआ मए आलोइदा। तीए प्पसगेण अअ वुत्तंतो उवक्कतो आसी।"[1]

अर्थात् वसन्ततिलका! आज मैनें स्वप्न मे कोई अपूर्व गुणो वाली एक सुन्दर नायिका देखी। उसी के सम्बन्ध मे यहाँ चर्चा हो रही थी। इस उक्ति मे नायिका के प्रति नायक का औत्सुक्य स्पष्ट है। अतः यहाँ आरम्भ नामक कार्यावस्था है।

(ब) यत्न–

नायक, नायिका की प्राप्ति रूपी लक्ष्य के प्रति यत्नशील होता है। इस हेतु तेजी के साथ योजनायुक्त व्यापार किया जाता है। इसके अन्तर्गत प्रथम जवनिकान्तर मे नायक द्वारा नायिका का चित्रावलोकन एव योजनाबद्ध ढंग से बसन्ततिलका के साथ विदूषक के शास्त्रीय वाद–विवाद के निर्णय के लिए मध्यस्थता हेतु नायिका का बुलाया जाना आदि कार्य किये जाते है। यही कथावस्तु की यत्न नामक कार्यावस्था है।

(स) प्राप्त्याशा–

शृङ्गारमञ्जरी के दूसरे जवनिकान्तर के अन्त में रानी को राजा एवं शृङ्गारमञ्जरी के प्रेम की वात पता चल जाती है। अतः वह शृङ्गारमञ्जरी को कड़े पहरे में रख देती है। इस प्रेम के सहायक विदूषक एंव वसन्ततिलका का भी मिलना बन्द करवा दिया गया है। यह नायक की फल प्राप्ति के लिए निराशा की स्थिति है। तीसरे जवनिकान्तर में किसी प्रकार विदूषक एवं वसन्ततिलका की मुलाकात होती है, जिससे राजा के पास तक यह सन्देश पहुँचता है, कि–"नायिका अपना गला

१. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ २४

घोटकर प्राणों को छोड़ना चाहती है, किन्तु इस आश्वासन पर जीवन धारण किये है, कि–माधवी लतामण्डप में राजा से उसकी मुलाकात होगी।" अंततः लतामण्डप मे दोनों की क्षणिक मुलाकात होती भी है, किन्तु आत्यन्तिक मिलन के प्रति अभी भी सन्देह की स्थिति है। यहाँ फल प्राप्ति निराशा एव आशा के बीच झूलती है। यहाँ नायिका की प्राप्ति रूप फलागम, वसन्ततिलका एव विदूषक के प्रयास से झलकता प्रतीत होता है; अर्थात् फलप्राप्ति की आशा है। अतएव यहाँ प्रप्त्याशा नामक कार्यावस्था है।

(द) नियताप्ति–

चतुर्थ जवनिकान्तर में नायिका, विदूषक एव वसन्ततिलका के कारागार मे बन्दी रहने पर फलप्राप्ति के प्रति राजा निःसहाय हो गया है। किन्तु जैसे ही महारानी आकाशवाणी द्वारा पतिव्रताधर्म का उपदेश सुनती है, एव खुद विचार करके यह सुनिश्चित करती है, कि–'महाराज से होने वाले शृङ्गारमञ्जरी के मिलन मे विघ्न डालना ठीक नहीं है।' इसके साथ ही नियताप्ति का आरम्भ हो जाता है, सारी रुकावटें टल चुकी है। नायक द्वारा नायिका के प्राप्ति की संभावना निश्चित स्थिति में पहुँच जाती है। नायक स्वय कह उठता है–

मज्जतस्य महण्णवम्मि सहसा पोअस्स आसाअणं
अत्यक्के वि महधआरकवलीभूअस्स दीवाअमो।
कठे सठिअजीअणस्स अमआसारो सरीरंतरे
उज्जतस्स अ मम्महेण दइआलाहस्स संभावणा।।[1]

इस प्रकार यहाँ नियताप्ति नामक कार्यावस्था है।

---

१. मज्जतो महार्णवे सहसा पोतस्य आसादन–
मकाण्डेऽपि महान्धकारकवलीभूतस्य दीपागमः।
कण्ठे संस्थितजीवनस्यामृतासारः शरीरान्तरे
उ्यन्तश्च मन्मथेन दयितलाभस्य सम्भावना।।(संस्कृत छाया)–शृङ्गारमञ्जरी–४/१५

(य) फलागम–

शृङ्गारमञ्जरी के चतुर्थ जवनिकान्तर मे नायक का नायिका के साथ विवाह होता है एव उसे चक्रवर्तित्व की प्राप्ति होती है। इस प्रकार नायक को सम्पूर्ण फल की प्राप्ति हो जाती है, यही फलागम नामक कार्यावस्था है। जो राजा के कथन से स्पष्ट हो रहा है–"मेरी आज्ञा राजाओ के मुकुटमणियो के प्रभामञ्जरी के अतिम किनारे तक पहुँची है। भृगुटी के केवल भगिमा से समुद्र तक पृथ्वी सीमा वन चुकी है। इस मृगाक्षी ने अभी तक अज्ञान तनुता के साथ स्थिरता वाली योग्य कन्या को वर रूप मे दिया।[१]"

६. सन्धि-योजना

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे कथावस्तु का, सन्धियों के आधार पर सुन्दर गुम्फन प्राप्त होता है, जिनका क्रमशः विवेचन प्रस्तुत है–

(अ) मुखसन्धि–

प्रथम जवनिकान्तर में नायक स्वप्न में नायिका का चित्र बनाकर अपनी प्रणय दशा की अभिव्यक्ति करता है। यहाँ अनेक प्रकार के प्रयोजन और रस को निष्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति हो रही है। यहाँ बीज एवं आरम्भ का योग है। इस प्रकार स्वप्न दर्शन से लेकर नायक द्वारा नायिका को अंकित करने तक मुखसन्धि है।

(ब) प्रतिमुखसन्धि–

प्रथम जवनिकान्तर मे नायक द्वारा सूचित प्रेम–द्वितीय जवनिकान्तर में नायक एवं नायिका के मिलन का कारण है, जो विदूषक एवं वसन्ततिलका को विदित है। यहाँ नायक एवं नायिका के प्रेम लक्ष्य है। नायिका एवं नायक को रूपलेखा एक साथ देखकर उनके प्रेम का अनुमान करती

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–४/२४

हुई अपने मन में कहती है–'बहुत समय तक उन दोनों का साथ रहना मुझे उचित नहीं लग रहा है, क्योंकि पहले तो इन दोनों के परस्पर दर्शन नहीं हुए, किन्तु किसी प्रकार मेरे ही अनुरोध से वशीकृत हुए उन दोनो के नेत्रों की गति कुछ ऐसे अनोखे ढग से आन्तरिक अनुराग से स्फुरित हो रही है, जो केवल सूक्ष्म बुद्धि से जानने योग्य है।'[1] यहाँ यह प्रेम अलक्ष्य है। इस प्रकार बीज का सूक्ष्म रूप कुछ लक्ष्य एव कुछ अलक्ष्य रूप मे विकसित है। इसके तृतीय जवनिकान्तर मे विदूषक एव वसन्ततिलका के मिलने पर रोक लग जाने से, फलसिद्धि के उपाय शिथिल पड़ जाते है। वसन्ततिलका समय निकालकर एकान्त मे विदूषक से मिलती है। राजा के पास नायिका की प्राणरक्षा का सन्देश भेजती है, जिससे फलसिद्धि के उपाय पुनः दिखाई देने लगते है। इस प्रकार इसमे विन्दु एव यत्न का योग है, अतः यहाँ प्रतिमुखसन्धि है।

(स) गर्भसन्धि–

तृतीय जवनिकान्तर में माधवी लताकुञ्ज मे नायक एव नायिका की मुलाकात होती है। यहाँ नायिका की आत्यन्तिक प्राप्ति रूपी फलागम मे देवी का भय बाधक है। यहाँ प्राप्ति की सभावना तो है, किन्तु फल का ऐकान्तिक निश्चय नही हो पाता। यहाँ दिखाई देखकर खोये गये बीज का बार-बार अन्वेषण किया जा रहा है। यहाँ यद्यपि पताका नही है, फिर भी प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था है; जो गर्भसन्धि के स्वरूप को साकार करती है।

(द) अवमर्शसन्धि–

अवमर्शसन्धि के अभाव में भी शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की कोटि मे आ सकती थी। किन्तु सट्टक मे अल्प विमर्श रह सकने वाले विकल्प का लाभ लेते हुए, शृङ्गारमञ्जरी में अवमर्श सन्धि की संक्षिप्त योजना की गयी है; जो इस प्रकार है–

---

१. चिरआलं एदाणं एक्कदेसावत्थाणं दाव अम्हाणं अणुइदं। जदो–
पूव्वं पि.........णेत्त-जुअ-पआरो।–शृङ्गारमञ्जरी–२/३३

चतुर्थ जवनिकान्तर में विदूषक, वसन्ततिलका सहित शृङ्गारमञ्जरी को बंदी बना दिये जाने से, शृङ्गारमञ्जरी की प्राप्ति रूप साध्य विघ्न युक्त जान पड़ता है। राजा कहता है—"वह प्राणप्यारी तो शेरनी की पकड़ में आयी हुई हरिणी की भाँति असहाय सी महल के किसी ऐसे अन्दरूनी कमरे मे रखवा दी गयी है, जहाँ किसी रास्ते से प्रवेश सम्भव नहीं है और वह स्थान घने अन्धकार से गहन पाताल के अन्तःस्थान सा है। उसे देखकर यह लगता है, कि—मानो वह भीतर का अँधेरा कमरा किसी दुष्कर्म वाले मनुष्य की तरह दूसरे पुरुषो के आवागमन से रहित अर्थात् जनशून्य है। अब ऐसी दशा मे क्या किया जाय?"[१] यहाँ सबल विघ्न के आ जाने से प्रत्यासन्न बाधा का कारण नायक के कथनानुसार दुर्दैव है।[२] देवी का क्रोध एव ईर्ष्या भी बाधा का कारण है, क्योंकि देवी की आज्ञा से ही वसन्ततिलका, विदूषक एव नायिका बन्दी हुए है। उपर्युक्त विवेचन के आलोक में प्रस्तुत प्रसङ्ग मे अवमर्शसन्धि है। यहाँ विमर्शसन्धि विघ्नोपनिपात रूप नियताप्ति से परिछिन्न है। यद्यपि सट्टक मे प्रकरी का निबन्धन हुआ है, परन्तु विमर्शसन्धि मे रखने की सामान्य परम्परा से हटकर, उसका निबन्धन निर्वहणसन्धि मे किया गया है। परन्तु इसे दोष नही माना जाना चाहिए, क्योकि एक जगह रहकर भी वस्तुतः यह पुष्पराशि की भाँति पूरी कथा को सुवासित कर रहा है। वास्तविकता तो यह है, कि—अप्रत्यक्ष रूप से प्रकरी की कथा मूलकथा के प्रारम्भ होने से पहले ही प्रारम्भ हो चुकी है।

(य) निर्वहणसन्धि—

चतुर्थ जवनिकान्तर के अतिम चरण मे, आकाशवाणी द्वारा देवी के प्रति किया गया पतिव्रता धर्म का उपदेश, सट्टक की कथावस्तु को परिणाम की ओर ले जाता है। अब तक बीज से युक्त,

---

१. '.....सा अ जीविदवल्लहा कसरिवहूकरपडिअव्व हरिणकिसोरिआ मत्ताणा अंतेउरस्स अब्भंतरे अण्णदो प्पवेसमग्गरहिदे गाढंधआरगहणे पाआलविवर व्व दुक्किदपुंससारिच्छे जणतरप्पआरवज्जिदे एअस्सिं अववरएप्पवेसिआ। तदो किं एत्थ करेमि।—शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ९३

२. अहो देव्वस्स दुव्विलसिदं। (अहो! दैवस्य दुर्विलसितम्)—शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ९३

मुख, प्रतिमुख आदि रूप मे इधर-उधर बिखरे हुए कथावस्तु के अश, प्रयोजन की सिद्धि के लिए एक साथ जुट जाते है। स्वप्न दर्शन से लेकर उसके उद्घाटन, राजा द्वारा नायिका का चित्राकन, विदूषक का उपाय चितन वाद-विवाद मे नायिका की मध्यस्थता; ये सभी जो नायिका प्राप्ति रूप प्रयोजन में मुख्य भूमिका निभाने एव परिणाम के सम्बन्ध मे दर्शको की उत्सुकता को उत्तरोत्तर वढ़ाने वाले अश है; उनका अंतिम चरण मे उत्सुकता को चरमबिन्दु पर लाकर सभी शकाओ का समाधान हो जाता है। नायक एव नायिका का विवाह हो जाता है। अमात्य की सूचना से नायिका के सम्बन्ध मे सभी बातें स्पष्ट हो जाती है। यहाँ कार्य नामक अर्थप्रकृति एव फलागम नामक कार्यावस्था का योग है। इस प्रकार यहाँ निर्वहण सन्धि है।

७. सन्ध्यङ्ग

शृङ्गारमञ्जरी मे पाँचो सन्धियो के अधिकाश अङ्गो का निवन्धन भी समुचित रीति से किया गया है, जो क्रमशः प्रस्तुत है—

(अ) मुखसन्धि के प्रमुख अङ्ग—

(i) उपक्षेप—बीज का शब्दों मे रखना उपक्षेप है।[१] शृङ्गारमञ्जरी के प्रथम जवनिकान्तर मे प्रस्तावना के तुरन्त पश्चात् क्रमशः कहे गये राजा एव विदूषक के स्वप्न सम्बन्धी कथनो मे, नाट्य के बीज को रखा गया है, जहाँ राजा स्वप्न में एक सुन्दरी को देखने की बात कहता है एव उस पर मोहित होकर उसे प्राप्त करना चाहता है। वही विदूषक स्वप्न में राजा को ऐरावत पर बैठा हुआ देखने की बात कहता है।[२] यहाँ उपक्षेप नामक मुखसन्धि का अङ्ग है।

(ii) परिभावना—कौतूहल सहित वचन परिभावना कहलाता है।[३] स्वप्न में देखी गयी सुन्दरी के

---

१. बीजन्यासः उपक्षेपः।—दशरूपक-१/२७

२. शृङ्गारमञ्जरी-१/१५ एवं १/१६

३. कुतूहलोत्तरा वाचः प्रोक्ता तु परिभावना।—साहित्यदर्पण-६/८६

सौन्दर्य से राजा विस्मित है। वह स्वप्न की उस लोकोत्तर सुन्दरी का वर्णन करते हुए विदूषक से कहता है, कि–"मित्र मै तुम्हे सही बात बतलाता हूँ.....स्वप्न मे मैने उत्तम एव मनोहर रग रूप वाली अपूर्व सुन्दरी को देखा, यह अपूर्व एव विशेष सुन्दरता की खान थी......।" यह सुनकर विदूषक भी विस्मित होकर कहता है–"अरे! यह तो बड़े आश्चर्य की बात है, उसके बाद क्या हुआ।"[१] इस प्रकार यहाँ राजा एव विदूषक के अद्‌भुत रस का आवेग वर्णित है। अतएव यहाँ परिभावना नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iii) विधान–सुख और दुःख को उत्पन्न करने वाला विधान कहलाता है।[२] राजा स्वप्न की नायिका के विषय मे विदूषक से कहता है कि–"उस सुन्दरी ने.....प्रेमसार को सूचित करने वाले अनोखे कटाक्षो को मेरे ऊपर छोड़ दिया।" पुनः विदूषक के कथन के प्रत्युत्तर मे कहता है कि–"उस समय वसन्ततिलका के सामने ही होने वाले इस प्रसग को महारानी की कोई विश्वासपात्र सेविका न जान ले, इसी शङ्का एव उसके विरह के कारण, मै जब कष्ट का अनुभव करने लगा, तब सबेरे के मगल वाद्यो की ध्वनि ने मुझे जगा दिया।"[३] यह बीज के अनुकूल होकर सुख–दुःख को उत्पन्न करने वाला कथन है। अतः यहाँ विधान नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iv) परिन्यास–बीज की निष्पत्ति[४] अथवा विनिश्चय[५] परिन्यास कहलाता है। राजा द्वारा चित्रित नायिका को देखकर वसन्ततिलका का यह कथन कि–"महाराज ही शृङ्गारमञ्जरी के हृदय के प्रेमपात्र है। अगर उनके भी हृदय मे अनुराग-पात्र के रूप मे वही शृङ्गारमञ्जरी है, तो उसी नायिका के गुणों की जीत होगी, अर्थात् उसके गुणो ने राजा को जीता।"[६] यहाँ बीज का विनिश्चय दिखलाया

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृ १३

२. विधान सुखदुःखकृत्।—दशरूपक–१/२८

३. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १७

४. तन्निष्पत्तिः परिन्यासः।—दशरूपक–१/२७

५. विनिश्चयः परिन्यासः।—नाट्यदर्पण–१/५२

६. शृङ्गारमञ्जरी–१/३३

गया है। अतः यहाँ परिन्यास नामक सन्ध्यङ्ग है।

(v) समाधान—बीज का आगमन समाधान है।[1] वसन्ततिलका शृङ्गारमञ्जरी की कविता को राजा से निवेदन करते हुए कहती है, कि—"विधाता की आज्ञा से उन-उन दिशाओं की ओर दृष्टिपात कर नयनों को इधर-उधर लहराती हुई पिंजरे के अंदर की एक चकोरी आप की दृष्टि में आयी, अब वही आप की चन्द्ररूपी दृष्टि दूसरों को देखने की अभिलाषा वाली, नायिकाओं का विषय न हो सकने के कारण महल के अन्दर रुक कर, अपनी समाप्ति की दशा को प्राप्त हो रही है।"[2] यहाँ समाधान नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vi) उद्भेद—किसी गूढ़ बात को प्रकट करना उद्भेद कहलाता है।[3] वसन्ततिलका राजा से कहती है, कि—"आप को देखने से सुलगाये हुए मदन-रूपी अनल के ताप से अपने अंगों को जलाती हुई उसी (शृङ्गारमञ्जरी) ने महाराज को लक्ष्य कर (पूर्व पठित गाथा) गाया है, और इसी उद्देश्य से मेरा यहाँ आने का प्रयास भी था।"[4] यहाँ वसन्ततिलका गूढ़ अर्थ का प्रकटन कर रही है; अतः उद्भेद नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vii) प्राप्ति—सुख का प्राप्त होना ही प्राप्ति है।[5] अन्तःपुर में स्थित शृङ्गारमञ्जरी राजा के प्रति अनुरक्त है, यह जानकर राजा कहता है, कि—"इस प्रसंग में धैर्य के साथ आश्वस्त होकर हमारा यहाँ रहना ठीक ही है।"[6] यहाँ बीज के सम्बन्ध में राजा को सुख की प्राप्ति हुई है; अतः प्राप्ति नामक सन्ध्यङ्ग है।

(viii) करण—प्रस्तुत कार्य का आरम्भ करना करण कहलाता है।[7] 'राजा भी शृङ्गारमञ्जरी

---

१. बीजागमः समाधानम्।—दशरूपक—१/२८
२. शृङ्गारमञ्जरी—१/३८
३. प्राप्तिः सुखागमः।—दशरूपक—१/२८
४. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ—२९
५. उद्भेदो गूढभेदनम्।—दशरूपक—१/२९
६. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जोशी, पृष्ठ२९
७. करणं प्रकृतारम्भः।—दशरूपक—१/२९

पर अनुरक्त है' इस बात को वसन्ततिलका शृङ्गारमञ्जरी से कहना चाहती है। इसके लिए वह राजा से कहती है, कि-"महाराज मुझे आज्ञा दे, जिससे मै यह समाचार अपनी प्रिय सखी से निवेदन कर सकूँ।"[१] यहाँ अगले जवनिकान्तरो मे नायक-नायिका के मिलन हेतु, वसन्ततिलका द्वारा महाराज से आज्ञा माँगने के साथ ही, कार्य का आरम्भ हो रहा है; अतः यहाँ करण नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ix) भेद-पात्रों का रङ्गस्थल से बाहर जाना भेद कहा जाता है।[२] प्रथम जवनिकान्तर अतिम चरण मे नायिका से समाचार निवेदित करने के लिए राजा से अनुमति लेकर वसन्ततिलका का जाना ही,[३] भेद नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ब) प्रतिमुख सन्धि के प्रमुख अङ्ग—

(i) विलास-रति के लिए जो ईहा है, वह विलास कहलाता है।[४] द्वितीय जवनिकान्तर के प्रारम्भ मे राजा एव विदूषक के कथनो मे रति के प्रति नायिका ही ईहा प्रकट हो रही है। आपसी वार्ता के दौरान विदूषक कहता है-"तुम्हारे दर्शन से अचानक भड़क उठने वाले कामानल ने उसकी देहलता को कैसा कर डाला? यह ज्ञात नही होता।"[५] यहाँ विलास नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ii) परिसर्प-पहले देखे गये और फिर नष्ट हुए बीज का अन्वेषण परिसर्प कहलाता है।[६] राजा के प्रति विदूषक के कथन है, कि-"आश्चर्य है, अन्तःपुर मे रहकर भी इसे अभी तक महाराज ने नही देखा।"[७] यहाँ नष्ट हुए बीज का अन्वेषण किया जा रहा है। अतः यहाँ परिसर्प नामक सन्ध्यङ्ग है।

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जोशी, पृष्ठ २९
२. भेदन पात्रनिर्गमः।—नाट्यदर्पण-१/४४
३ शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जोशी, पृष्ठ २९
४. रत्यर्थेहा विलासः स्याद्।—दशरूपक-१/३२
५. शृङ्गारमञ्जरी-२/४
६. दृष्टनष्टानुसर्पणम्।—दशरूपक-१/३२
७. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जोशी, पृष्ठ ३४

(iii) उपन्यास—उपाय सहित कथन उपन्यास कहलाता है।[1] विदूषक राजा के प्रति कहता है, कि—"आप ने कैसे सोच लिया कि दृष्ट वस्तु का परित्याग हुआ है, क्योंकि मैंने तो इस कार्य की सिद्धि के लिए एक उपाय भी सोचा है।" पुनः राजा के आग्रह पर कान मे उसे बताता है।[2] यहाँ उपाय का सन्निवेश होने से उपन्यास नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iv) नर्म—परिहासयुक्त वचन नर्म कहलाता है।[3] विदूषक की बाँयी आँख फड़कने की बात को लेकर वसन्ततिलका परिहास करते हुए कहती है—"यदि कामदेव की पूजा के पवित्र स्वस्तिवाचन के समय भी आप की बाँयी आँख फड़कने लगी, तो लगता है विपरीत व्यक्ति को सभी फल उलटे ही मिला करते है।[4]" इसी क्रम मे वसन्ततिलका विदूषक को लेकर परिहास वचन कहती है। अतः यहाँ नर्म नामक सन्ध्यङ्ग है।

(v) वर्णसंहार—चारो वर्णों का एकत्रित होना वर्णसहार कहलाता है।[5] नाट्यदर्पणकार ने चारो वर्णों का तात्पर्य नायक, नायिका, प्रतिनायक आदि नाटकीय पात्रो से माना है।[6] द्वितीय जवनिकान्तर मे राजा एव देवी के समक्ष विदूषक एव वसन्ततिलका मे शास्त्रीय विवाद के निर्णय हेतु माधविका के साथ शृङ्गारमञ्जरी के प्रवेश[7] के साथ ही, नायक, नायिका इत्यादि सभी प्रमुख पात्रो का एकत्रीकरण होता है; अतः यहाँ वर्णसंहार नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vi) पुष्प—विशेषता युक्त कथन को पुष्प कहा जाता है।[8] शृङ्गारमञ्जरी के सम्बन्ध में राजा

---

१ उपन्यासस्तु सोपायम्।—दशरूपक—१/३५

२. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जोशी, पृष्ठ ३६

३. परिहासवचो नर्मः।—दशरूपक—१/३३

४ शृङ्गारमञ्जरी—२/२२

५. चातुर्वर्ण्योपगमन वर्णसहार ईष्यते।—दशरूपक—१/३५

६. नाट्यदर्पण—१/६७

७. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जोशी, पृष्ठ ५२

८. पुष्प वाक्यं विशेषवत्।—दशरूपक—१/३४

का स्वगत कथन है कि–"ओह! कामदेव ने मुझपर अनुग्रह किया है–अधिक विकसित होने वाले, कुछ–कुछ झव्वे वाली आकृति वाले, मेरी ओर मुड जाने पर थोड़ा सिकुड़न के साथ दोनो ओर घुम जाने वाले, एकाएक भय से चञ्चल होने वाले और विलास युक्त गति को दिखलाने वाले इस सुन्दरी ऐसे नेत्रो ने (मेरा) पूर्णतः पान कर लिया है।"[१] इस कथन के द्वारा नायक और नायिका के परस्पर दर्शन आदि के द्वारा विशिष्ट अनुराग प्रकट होता है। अतः यहाँ पुष्प नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vii) निरोधन–हित का रूक जाना निरोधन कहलाता है।[२] तृतीय जवनिकान्तर मे विदूषक कहता है–"...शृङ्गारमञ्जरी की विशेष रूप से रक्षा कर दी गयी है और वसन्ततिलका का मेरे साथ मिलना-जुलना भी रोक दिया गया है।" राजा–"तुम दोनो के मिलन को रुकवाने का क्या अभिप्राय होगा?" विदूषक–"अभिप्राय यह है कि ये दोनों तुम दोनो को मिलवाने मे न लग सके।"[३] यहाँ नायक-नायिका के मिलन रूपी हित का जाना प्रदर्शित किया गया है। अतः यहाँ निरोधन नामक सन्ध्यङ्ग है।

(viii) विधूत–सुखप्रद पदार्थों के प्रति अरुचि विधूत कहलाता है।[४] तृतीय जवनिकान्तर मे विदूषक ने नायिका के सुखप्रद पदार्थो के प्रति अरुचि का सविस्तार वर्णन किया है, यथा–"....चाँदनी को देखकर उसे पहले का सा आनन्द नही आता, कमलो की शोभा उसके मन मे मर्मान्तक वेदना उत्पन्न करती है...।"[५] इस प्रकार यहाँ विधूत नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ix) शम–उस अरति की शान्ति शम कहलाती है।[६] अरति की स्थिति मे नायिका मरने तक के लिए उद्यत हो जाती है। विदूषक के इस आश्वासन पर कि–"माधवी लताकुञ्ज में महाराज से

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–२/३२

२. हितरोधो निरोधनम्।–दशरूपक–१/३४

३. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जोशी, पृष्ठ ६३

४. विधूत स्यादरतिः।–दशरूपक–१/३३

५ शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जोशी, पृष्ठ ६५–६६

६. तच्छमः शमः।–दशरूपक–१/३३

तुम्हारी भेट होगी" उसकी अरति शान्त होगी एव वह कहती है कि—"अच्छा ऐसा ही हो।"[1] यहाँ आरति की शान्ति दिखलाई गयी है; अतः यहाँ शम नामक सन्ध्यङ्ग है।

(स) गर्भसन्धि के प्रमुख अङ्ग—

(i) अनुमान—किसी चिह्न से किसी बात का निश्चय करना अनुमान कहलाता है।[2] नेपथ्य से आ रही पैरो की ध्वनि सुनकर विदूषक राजा से कहता है कि—"पास मे ही पैरो से आहत भूमि शब्द कर रही है। इससे यह अनुमान होता है कि वह तुम्हारे लिए सकेतस्थल की ओर आ रही है"[3] यहाँ पैरो की आहट रूपी चिह्न से नायिका के आने का निश्चय किया गया है। अतएव यहाँ अनुमान नामक गर्भसन्धि का अङ्ग है।

(ii) अभूताहरण—छलपूर्ण कार्य अभूताहरण कहलाता है।[4] तृतीय जवनिकान्तर के मध्य मे शृङ्गारमञ्जरी का कथन है—"एक ओर मेरा भोलापन और मिलने के लिए पहली बार किये गये साहस का कार्य है। इसमे विरहजन्य व्यथा और पराधीनता है। और दूसरी ओर रात का समय.... .... पैर कैसे रखे जाये?"[5] यहाँ शृङ्गारमञ्जरी द्वारा देवी के साथ छल करके राजा के प्रति अभिसरण किया जा रहा है; अतएव अभूताहरण नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iii) क्रम—सोची हुई वस्तु की प्राप्ति क्रम कहलाता है।[6] राजा शृङ्गारमञ्जरी के समीप जाकर उससे कहता है—"सुन्दरी! तुम इस मार्ग से माधवीमण्डप मे प्रवेश करो। हे सुन्दरी! मैं पहले ही तुम्हारे गुणों से बधा था और कुछ रुकावटों के कारण कुछ प्रतिबद्ध सा रहा था। इस समय मदनबाणों

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जोशी, पृष्ठ ६९
२. अभ्यूहो लिङ्गतोऽनुमा।—दशरूपक-१/४०
३. शृङ्गारमञ्जरी-३/३४
४. अभूताहरण छद्म।—दशरूपक-१/३८
५. शृङ्गारमञ्जरी-३/३६
६. क्रमः संचिन्त्यमानाप्तिः।—दशरूपक-१/३९

से प्रेरित होकर यह जन अब तुम्हारे पास आया है।"[1] यहाँ राजा को पहले से सोची हुई शृङ्गारमञ्जरी की प्राप्ति हुई है; अतः यहाँ क्रम नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iv) रूप–वितर्क से युक्त कथन को रूप कहा जाता है।[2] शृङ्गारमञ्जरी राजा से कहती है कि–"जन्मपर्यन्त पराधीनता है। आसानी से प्राप्त न होने वाले व्यक्ति से प्रेम हुआ है। मेरे प्राण पत्थर से भी अधिक कठोर हो गये है, इत्यादि।" इसे सुनकर राजा का स्वगत कथन है, कि–"इसने इस श्लोक से यह व्यक्त किया कि महारानी के अधीन होने के कारण उसका और मेरा सम्बन्ध नहीं हो पा रहा है और इस प्रकार परस्पर होने वाले अनुरागानुभूति का प्रतिषेध भी हो रहा है।"[3] यहाँ शृङ्गारमञ्जरी के कथन पर राजा द्वारा फल प्राप्ति की आशा मे वितर्क किया गया है। अतः यह वितर्क युक्त कथन होने से रूप नामक सन्ध्यङ्ग है।

(v) उद्वेग–शत्रु से उत्पन्न भय उद्वेग कहलाता है।[4] वसन्ततिलका शृङ्गारमञ्जरी से कहती है कि–"सखी! माधविका को तुम्हारे स्थान पर रखकर हम यहाँ आये है। अतः यह बात जब तक प्रकाश मे नही आती, उससे पहले हम यहाँ से शीघ्र चल दे।"[5] यहाँ देवी से उत्पन्न शृङ्गारमञ्जरी का भय प्रकट हो रहा है। अतः यहाँ उद्वेग नामक गर्भसन्धि का अङ्ग है।

(vi) सम्भ्रम–शङ्का और त्रास को सम्भ्रम कहा जाता हैं।[6] तृतीय जवनिकान्तर के अन्तिम चरण में वसन्ततिलका शृङ्गारमञ्जरी एव राजा के प्रेम के सन्दर्भ मे राजा से कहती है कि–"अन्य कार्यों मे लगे रहने से, स्वामी होने से और अन्य युवतियो के प्रति लगाव रखने की आदत से ऐसे गुण आ जाते है; जिनसे प्रेम के तागे के टूटने का सन्देह सदा बना रहता है।"[7] यहाँ प्रेम के टूटने की

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–३/४८
२. रूपं वितर्कवद्वाक्यम्।—दशरूपक–१/३९
३. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ८८
४. उद्वेगोऽरिकृता भीतिः।—दशरूपक–१/४२
५. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ९०
६. शङ्कात्रासौ च संभ्रमः।—दशरूपक–१/४२
७. शृङ्गारमञ्जरी–३/६२

आशङ्का वर्णित होने से सम्भ्रम नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vii) आक्षेप–रहस्यपूर्ण अर्थ को प्रकट करना ही, क्षिप्ति या आक्षेप कहलाता है।[1] तृतीय जवनिकान्तर के अन्त मे, राजा वसन्ततिलका के प्रति कहता है कि–"भौरा चाहे केतकी, मालती या लताओं पर घुमा करे, किन्तु कमलिनी के प्रति जो उसका अनुराग है, वह असाधारण होता है, अर्थात् अन्यत्र सम्भव नही होता।"[2] यहाँ राजा के कथन से यह रहस्यपूर्ण अर्थ प्रकट हो रहा है, कि–शृङ्गारमञ्जरी के प्रति उसका प्रेम अन्य सभी से बढ़कर एव असाधारण है। इस प्रकार यहाँ आक्षेप नामक सन्ध्यङ्ग है।

(द) अवमर्शसन्धि के प्रमुख अङ्ग

(i) अपवाद–किसी पात्र के दोषो का कथन अपवाद है।[3] अथवा अपने या दूसरो के दोषो को प्रकट करना ही अपवाद है।[4] चतुर्थ जवनिकान्तर के प्रारम्भ मे राजा कहता है कि–"ओह! महारानी को द्वेष के कारण पक्षपात बड़ा गहरा है।"[5] यहाँ रानी के दोषो 'द्वेष' एव 'पक्षपात करने' का कथन किया गया है। इसी सन्दर्भ में राजा पुनः कहता है कि–"अन्यत्र न होने वाले और किसी भी दशा मे झूठे सिद्ध न हो सकने वाले हमारे ऐसे कपटपूर्ण कार्यों को देवी ने जान लिया था। इसी कारण देवी के मन मे क्रोध-भाव आ गया है।"[6] यहाँ राजा द्वारा अपना दोष 'कपट करने' एव रानी के दोष 'क्रोध करने' का कथन किया गया है; अतः यहाँ अपवाद नामक अवमर्शसन्धि का अङ्ग है।

(ii) विद्रव–वध, बन्धन आदि का वर्णन विद्रव कहलाता है।[7] चतुर्थ जवनिकान्तर के प्रारम्भ

---

१. रहस्यार्थस्य तद्भेदः क्षिप्तिः स्यात्।–साहित्यदर्पण–६/९९

२. शृङ्गारमञ्जरी–३/६३

३. दोषप्रख्यापवादः स्यात्।–दशरूपक–१/४५

४. नाट्यदर्पण–१/९४

५. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ९३

६. शृङ्गारमञ्जरी–४/४

७. विद्रवो वधबन्धादिः।–दशरूपक–१/४५

मे राजा कहता है, कि–"......मित्र गौतम और वसन्ततिलका को अलग-अलग कारागारो मे बन्द करवा दिया और वह प्राण प्यारी तो शेरनी की पकड़ मे आयी हरिणी की भाँति असहाय सी महल के किसी ऐसे अन्दरूनी कमरे मे रखवा दी गयी है, जहाँ किसी रास्ते से प्रवेश सम्भव नही है...।"[१] यहाँ गौतम, वसन्ततिलका एव शृङ्गारमञ्जरी के बन्धन का वर्णन किया गया है; अतः यहाँ विद्रव नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iii) द्रव–गुरुजनो का तिरस्कार द्रव कहलाता है।[२] महारानी की सम्मति से दासियो द्वारा अपना तिरस्कार करने का वर्णन करते हुए विदूषक कहता है, कि–"प्रतिदिन अन्तःपुर की दासियाँ मेरा विरोध करने लगी और महारानी से मुझे परेशान करने की अनुमति लेकर, मेरे खिलाफ न जाने क्या-क्या नही कर डाला।"[३] यहाँ श्रेष्ठ, पूज्य ब्राह्मण के तिरस्कार का वर्णन है; अतः यहाँ द्रव नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iv) आदान–कार्यसग्रह आदान कहलाता है।[४] अर्थात् फल का समीप होना, या फल का दर्शन आदान है, जैसा कि नाट्यशास्त्र में भी कहा गया है–"बीजकार्योपगमनम् आदानम्।"[५] चतुर्थ जवनिकान्तर के मध्य मे विदूषक देवी द्वारा मन्दिर में सुनी गयी गाथा के सम्बन्ध में कहता है कि–"महारानी गाथा का अभिप्राय यह समझी कि–महाराज से होने वाले शृङ्गारमञ्जरी के मिलने में विघ्न डालना ठीक नही है।"[६] इत्यादि कथनो द्वारा कार्य का सग्रह किया गया है। यहाँ नायक एव नायिका के मिलन रूपी फल का दर्शन हो रहा है, अतः यहाँ आदान नामक सन्ध्यङ्ग है।

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ–९३

२. द्रवो गुरुतिरस्कृतिः।—दशरूपक–१/४५

३. शृङ्गारमञ्जरी–४/८

४. आदान कार्यसंग्रहः।—दशरूपक–१/४८

५ नाट्यशास्त्र–१९/९३

६. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १०१

(य) निर्वहणसन्धि के प्रमुख अङ्ग

(i) सन्धि–बीज का सन्धान ही सन्धि कहलाता है।[१] चतुर्थ जवनिकान्तर के लगभग मध्य मे राजा के कथन मे फलागम से अन्वित करके बीज का सन्धान किया गया है, जैसा कि राजा कहता है–"मन्मथ द्वारा प्रियतमा के लाभ की सभावना मेरे लिए वैसे ही दूसरे जीवन की तरह है, जैसे महासागर मे डूबते हुए व्यक्ति को सहसा किसी जल पोत की प्राप्ति हो जाती है, इत्यादि।"[२] यहाँ बीज का सधान होने से सन्धि नामक निर्वहणसन्धि का अङ्ग है।

(ii) ग्रथन–फल के उपक्षेप को ग्रथन कहा जाता है।[३] राजा के प्रति देवी का कथन है, कि–"आर्यपुत्र! इस शुभ अवसर पर आज मै शृङ्गारमञ्जरी को उपहार के रूप मे आप को दे रही हूँ।"[४] यहाँ फल का उपक्षेप (सूचना) किया गया है; अतएव यहाँ ग्रथन नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iii) आनन्द–अभीष्ट की प्राप्ति होना आनन्द कहलाता है।[५] देवी द्वारा शृङ्गारमञ्जरी को महाराज के लिए अर्पित किया जाता है। महाराज शृङ्गारमञ्जरी का हाथ ग्रहण कर अपने मन में कहता है कि–"देवी की ईर्ष्या और प्रिया का मुझसे अलग होना, ये दोनों बाते केवल हँसी और दिल्लगी मे हुई तथा महारानी ने स्वय इसे प्रदान कर दोनो ही बातो को अब एक साथ मिला दिया।"[६] यहाँ राजा को अभीष्ट की प्राप्ति हो रही है; अतः यहाँ आनन्द नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iv) निर्णय–अनुभूत अर्थ का कथन निर्णय कहलाता है।[७] अमात्य शृङ्गारमञ्जरी के विषय मे

---

१. सन्धिर्बीजोपगमनम्।—दशरूपक–१/५१
२. शृङ्गारमञ्जरी–४/१५
३. ग्रथन तदुपक्षेपो।—दशरूपक–१/५१
४. शृङ्गारमञ्जरी–४/२२
५. आनन्दो वाञ्छितावाप्तिः।—दशरूपक–१/५२
६. शृङ्गारमञ्जरी–४/२२
७. अनुभूताख्या तु निर्णयः।—दशरूपक–१/५१

बताते हुए कहता है, कि–"मैंने अपने महाराज के लिए ऋषि से इस मँगनी की। उन्होंने अपनी स्वीकृति भी दे दी।.......फलतः मै इस कन्या को अपने साथ ले आया और महारानी को सौप दिया। इस कन्या की प्राप्ति की यही कथा है।"[१] यहाँ अनुभूत अर्थ का कथन होने से निर्णय नामक सन्ध्यङ्ग है।

(v) परिभाषा–यद्यपि दशरूपक मे आपसी बातचीत को परिभाषा कहा गया है[२] किन्तु नाट्यदर्पण मे अपने अपराध को प्रकट करना परिभाषा बताया गया है।[३] चतुर्थ जवनिकान्तर मे देवी का कथन है, कि–"मन्त्री महोदय इस समय तक (शृङ्गारमञ्जरी का आप ने राजा के लिए मँगनी किया है) इसका ज्ञान न होने से मै इस (शृङ्गारमञ्जरी) के कष्ट का कारण बनी"[४] यहाँ रानी द्वारा स्वनिन्दा की गयी है; अतः परिभाषा नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vi) प्रसाद–आराधना ही प्रसाद कहलाता है।[५] देवी कहती है कि–"वत्से शृङ्गारमञ्जरी! तुम्हे तो यद्यपि मैंने अपना ही माना था,किन्तु परिचय न होने से मैंने तुमसे अपने सेवक के समान व्यवहार किया। अतः इस अतिक्रमण को अब तुम क्षमा करना"[६] यहाँ देवी द्वारा शृङ्गारमञ्जरी का पर्युपासन किया जा रहा है; अतः यहाँ प्रसाद नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vii) काव्यसंहार–वरदान की प्राप्ति काव्यसहार कहलाता है।[७] अमात्य राजा से कहता है कि–"मै अब आप का और दूसरा कौन सा प्रिय कार्य करूँ।"[८] अभीष्ट वर को प्रदान करने की अभिलाषा

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १०८
२. परिभाषा मिथो जल्पः।—दशरूपक–१/५२
३. परिभाषा स्वनिन्दनम्।—नाट्यदर्पण–१/१०८
४. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १०८
५. प्रसादः पर्युपासनम्।—दशरूपक–१/५२
६. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १०८
७. वराप्तिः काव्यसहारः।—दशरूपक–१/५४
८. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १०९

यहाँ होने से काव्यसहार नामक सन्ध्यङ्ग है।

(viii) आभाषण–प्राप्त हुए फल का अनुमोदन करना ही आभाषण कहलाता है।[1] अथवा मान आदि की प्राप्ति भाषण या आभाषण कहलाता है।[2] राजा कहता है–"मेरी आज्ञा राजाओं के मुकुटमणियो की प्रभामञ्जरी के अन्तिम किनारे तक पहुँची है। भृकुटी के केवल भङ्गिमा मे समुद्र तक पृथ्वी सीमा बन चुकी है। इस मृगाक्षी ने अभी तक अज्ञात, तनुता के साथ स्थिरता वाली योग्य कन्या को वर रूप मे दिया। अतः इससे ज्यादे अधिक और क्या अभीष्ट हो सकता है, जिसे आप ने सफल नही किया है।"[3] यहाँ राजा द्वारा प्राप्त फल का अनुमोदन किया गया है, इसलिए आवा राजा द्वारा कार्यसिद्ध करने हेतु अमात्य को मान दिया गया है, इसलिए यहाँ आभाषण नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ix) प्रशस्ति–शुभ अर्थ का कथन ही प्रशस्ति है।[4] चतुर्थ जवनिकान्तर के अन्त मे राजा कहता है कि–"अधिक तेज अग्नि के यज्ञीय धुएँ से दिशाओ के विस्तार व्याप्त रहे। सभी वर्ण एव आश्रम अपने-अपने कर्तव्य मे लगे रहें, प्रजा का आनन्द प्रतिक्षण उत्तरोत्तर बढ़ता रहे तथा दूसरो के गुणो मे अनुराग रखने वाले सहृदय चिरकाल तक जीवित रहे ।"[5] यहाँ शुभाशंसा कथित होने से प्रशस्ति नामक निर्वहणसन्धि का अङ्ग है।

---

१. प्राप्तकार्यानुमोदनमाभाषणम्।–प्रतापरुद्रीप–३/२१

२. मानाद्याप्तिश्च भाषणम्।–दशरूपक १/५३

३. शृङ्गारमञ्जरी–४/२४

४. प्रशस्तिः शुभशसनम्।–दशरूपक–१/५४

५. आहोआ हरिआण होतु बहलत्ते अग्गिधूमाउला
धम्मे संतु णिए णिए अविरअं सव्वे वि वण्णस्समा।
आणंदो परिवड्ढउ प्पडिलवं लोआण सव्वुत्तरो
अण्णाण गुणराइणो सहिअआ जीवंतु लोए चिरं।।–शृङ्गारमञ्जरी–४/२५

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों की कथावस्तु का तुलनात्मक विवेचन

सामाजिक को नाट्य के चरमफल रसानुभूति तक पहुँचाने मे, कथावस्तु का प्रमुख स्थान रहता है। नाट्य की कथावस्तु ही दर्शको की मानसिक स्थिति को बाह्य जगत के विभिन्न चिन्तनो से मोडकर, उसे रसबोध की चरमानन्द की अवस्था की ओर उन्मुख करने का कार्य करती है; और यह तभी सभव है जब कथानक मनोहारी सुसगठित एव प्रवाहपूर्ण हो। कथावस्तु के प्रस्तुतीकरण के समय सामाजिक के मन मे, 'अब क्या घटने वाला है?' इसके प्रति उत्सुकता का होना ही कथानक की मनोहरता है। कथानक की प्रत्येक घटना एक-दूसरे से जुडी रहकर प्रयोजन से सम्बन्धित होनी चाहिए। अर्थात् ऐसी घटनाओ का समावेश किया जाना चाहिए, जिनके कथानक से अलग हो जाने पर कथा की कड़ी टूट रही हो। कथावस्तु स्वाभाविक सा लगने पर ही आनन्द प्रदान कराने मे समर्थ होती है। अतः कथानक की स्वाभाविकता के लिए दृश्य-विधान एव परिवेश का समुचितरूप से समायोजन होना चाहिए।

उपर्युक्त दृष्टिकोण को ध्यान मे रखते हुए कर्पूरमञ्जरी सट्टक का विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि–कर्पूरमञ्जरीकार का ध्यान सुगठित वस्तु-योजना पर कम एव लम्बे वर्णनो पर अधिक है। प्रथम जवनिकान्तर मे प्रस्तावना के तुरन्त बाद लम्बा वसन्त वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ वसन्त का वर्णन मात्र इसीलिए आवश्यक था, कि–दर्शको के हृदय मे इस तथ्य को स्थापित किया जा सके, कि–आगे घटित होने वाली समस्त घटनायें रति को अधिकाधिक उद्दीप्त करने वाले मौसम वसन्त ऋतु मे घटित हुई हैं। यह एक-दो छन्दों में भी वर्णित किया जा सकता था। इस प्रकार लम्बा वसन्त वर्णन अनावश्यक प्रतीत होता है; जो कथा के प्रवाह में बाधक की भाँति है। यही कारण है कि मूल कथा प्रथम जवनिकान्तर के आधे के बाद ही प्रारम्भ हो पाती है। इसी प्रकार, यद्यपि विदूषक का स्वप्न वर्णन अत्यन्त रोचक एवं कौतूहल वर्धक है। किन्तु मूल कथा के विकास

मे इसका किमी प्रकार का कोई सहयोग नही दिखाई पड़ता। यह किमी भी प्रकार से मूल कथा से जुड़ा हुआ या इसका अविभाज्य अङ्ग नही प्रतीत होता। इसे यदि कथानक से अलग भी कर दिया जाय तो मूल कथा के सेहत पर कोई कुप्रभाव पड़ेगा, ऐसा नहीं लगता। वस्तुतः इसे मूल कथा के साथ इस प्रकार जुड़ा हुआ होना चाहिए था, कि इसके अलग होने मे मूल कथा अधूरी या विकलाङ्ग सी लगे। द्वितीय जवनिकान्तर मे विदूषक एव राजा के वार्ता के माध्यम से देवी द्वारा नायिका कर्पूरमञ्जरी का शृङ्गार करने का लम्बा वर्णन प्राप्त होता है, जो नाट्य की कथा के स्वाभाविक प्रवाह को अवरुद्ध कर रहा है। तृतीय जवनिकान्तर में नायक, नायिका के मुलाकात के प्रसङ्ग मे सात पद्यो मे चन्द्रवर्णन का किया जाना, अनावश्यक एवं अस्वाभाविक सा लगता है। चतुर्थ जवनिकान्तर में राजा एव विदूषक द्वारा मिलकर नौ पद्यो में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन किया जाना अनावश्यक एव उबाने वाला है। इस प्रकार कहा जा सकता है, कि–कथावस्तु का ताना-बाना ढीला-ढाला है, परिणामतः कथावस्तु मे अरोचकता, गत्याभाव, शैथिल्य एव प्रभावहीनता है।

कर्पूरमञ्जरी में कथा के माध्यम से पात्रो मे चरित्राकन की भी उपेक्षा हुई है। नायक चन्द्रपाल से सम्बन्धित ऐसी विशेष प्रस्तुतियो का अभाव है, जिससे उसका धीरललित नायक का एक सशक्त व्यक्तित्व उभर कर सामने आये। यद्यपि नायिका के प्रति नायक के प्रेम को प्रदर्शित करने वाले अनेक प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं, जिसमें कहीं वह नायिका के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसके गुणगान में सन्नद्ध है, तो कही उसके विरह मे व्यथित हो उन्मत्तता को प्राप्त हो गया है। किन्तु वही तृतीय जवनिकान्तर में नायक, नायिका के अन्तरङ्ग क्षणो के दरम्यान, प्रेमालाप के प्रसङ्ग में, नायिका की संवादहीनता सी स्थिति; नायक द्वारा नायिका के सौन्दर्य मात्र का वर्णन करने वाले बहुशः अगंभीर कथनों में सन्नद्ध रहना; ऐसे प्रसङ्ग में नायिका द्वारा पूर्व रचित चन्द्रवर्णन सम्बन्धी पद्य को कुरंगिका द्वारा पढ़ना एवं उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप राजा का, नायिका के सौन्दर्यपान को छोड़कर कविता के शाब्दिक सौन्दर्य, उक्ति वैचित्र्य एवं रसपान में निमग्न होना इत्यादि; पात्र के चरित्रांकन

की कमी एव प्रेम विषयक प्रयोग की शिथिलता को द्योतित करते है।

कर्पूरमञ्जरी की कथावस्तु का अन्त उलझा हुआ सा है। ज्येष्ठा नयिका रूपलेखा ने कर्पूरमञ्जरी को वन्दी गृह मे बद किया है, जिससे वह नायक से मिल न सके। दूसरी तरफ वह भैरवानन्द के कहने पर स्वय घनसारमञ्जरी से नायक का विवाह करवाने का प्रबन्ध करती है। इससे ऐसा लगता है कि–भैरवानन्द यदि कहता तो वह कर्पूरमञ्जरी से भी राजा की शादी के लिए तैयार हो जाती, फिर ज्येष्ठा नायिका से छल करके कर्पूरमञ्जरी को घनसारमञ्जरी के रूप मे प्रस्तुत कर, उससे राजा का विवाह कराने का औचित्य समझ मे नही आता। साथ ही यह अन्त तक स्पष्ट नहीं हो पाता कि–ज्येष्ठा नायिका इस तथ्य को जान पायी है अथवा नहीं, कि—कर्पूरमञ्जरी ही घनसारमञ्जरी है। इस प्रकार कथानक का अत उलझावपूर्ण होने के साथ-साथ अपूर्ण सा लगता है।

कर्पूरमञ्जरी की कथावस्तु के सम्बन्ध मे इतना अवश्य है, कि वह नियमानुसार चार जवनिकान्तरो मे विभाजित है; जो कि व्यस्ततापूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले जन-सामान्य एव राजाओं के अन्तःपुर के प्रेक्षको के सर्वथा अनुकूल है; जिससे वे कम समय मे धैर्यपूर्वक पूर्ण नाट्य देखकर रसानन्द मे सराबोर हो सके। इसका इतिवृत्त शृङ्गारप्रधान है। इसमें शृङ्गाररस के अनुकूल अनेक प्रसङ्गो को विधिवत उपस्थापित करने का प्रयास सराहनीय है।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की कथावस्तु का जहाँ तक प्रश्न है, उसकी मूलकथा प्रस्तावना के तुरन्त बाद ही प्रारम्भ हो जाती है, जहाँ राजा एव विदूषक क्रमशः मञ्च पर आकर अपने-अपने स्वप्न वर्णन द्वारा कथा का बीजोत्क्षेप करते हैं। राजा अपने स्वप्न-दृष्टा नायिका का वर्णन करता है। विदूषक राजा के चक्रवर्तित्व को सूचित करने वाले अपने स्वप्न का 'जिसमें राजा ऐरावत पर आरूढ़ है' उल्लेख करता है। यहीं से कथा की धारा बह चलती है। यहाँ मूलकथा के आरम्भ होने में कर्पूरमञ्जरी सट्टक की भाँति वसन्त-वर्णन जैसी लम्बी-चौड़ी भूमिका नहीं बाँधी गयी है, परिणामतः सामाजिक की उत्सुकता प्रारम्भ में ही चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक की भाँति शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे भी, प्रथम जवनिकान्तर में राजा के सन्मुख, वसन्ततिलका के माध्यम से, नायिका द्वारा रचित पद्य का प्रस्तुत करने का प्रसङ्ग आता है, किन्तु यहाँ कर्पूरमञ्जरी की कथा की भाँति नायक कविता के सौन्दर्य मे नहीं उलझता। अपितु उसमे अभिव्यक्त तथ्य को समझते हुए यह जानने की इच्छा करता है, कि-क्या यह नायिका की अपनी स्थिति का वर्णन है, या इसके द्वारा किसी अन्य की दशा का वर्णन किया गया है। कथा की ऐसी प्रस्तुति स्वाभाविक सी लगती है। उसमे प्रकृति-वर्णन के भी कई स्थल प्राप्त होते है, किन्तु वे बहुत लम्बे न होकर सक्षिप्त एव प्रसङ्ग के अनुकूल है। जैसा कि द्वितीय जवनिकान्तर मे, कामदेव की पूजा के लिए जाते समय, विरह व्यथित राजा एव विदूषक द्वारा बसन्त का उद्दीपन रूप में वर्णन प्रसङ्गोपात्त है। वसन्त के सम्बन्ध मे विरही नायक कहता है—"ये पवन चन्दनवृक्षों पर लिपटे हुए बड़े-बड़े नागराजों के मुख से निकलने वाले मानो हलाहल है; जो केवल छूने से (विष की तरह) बेचैनी उत्पन्न करने वाले हो रहे है। ये पवन अधिक शक्ति के साथ अपनी सुन्दर चाल को लताओं पर रखते है। लगता है, ये निश्चय ही सभी विरही जनों के वध हेतु कामदेव के बाणो को क्या बना दे रहे हैं? अर्थात् बाणो को किस प्रकार घातक बना रहे है?"[१]

द्वितीय जवनिकान्तर में रस विषय पर विदूषक एवं वसन्ततिलका के मध्य शास्त्रार्थ एव उसके निर्णय के लिए शृङ्गारमञ्जरी को बुलाने तथा ऐसे समय में नायक और नायिका का एक-दूसरे को देखने की घटना उत्कृष्ट कोटि की है। तृतीय जवनिकान्तर मे नायिका के अभिसरण के प्रसङ्ग में रात्रि का वर्णन, नायक-नायिका की उक्तियों द्वारा उनके मनोवृत्ति का चित्रण आदि; एक विलक्षण वातावरण के सृजन हेतु सर्वथा आवश्यक से प्रतीत होते हैं। इससे कथा की मनोहरता द्विगुणित हो रही है। शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में कर्पूरमञ्जरी सट्टक की भाँति, नायक-नायिका के मिलन के प्रसङ्ग मे, नायक का मित्र विदूषक एवं नायिका की सखी वसन्ततिलका साथ में नहीं रहते। अपितु खूबसूरत

---

१. शृङ्गारमञ्जरी-२/१७

बहाना बनाकर उनसे दूर हो जाते है। कथा की यह व्यवस्था प्रसङ्ग के अनुकूल है। इस मिलन की वेला को, उत्कृष्ट प्रेम से सवलित शिष्ट-वार्ता के माध्यम से अत्यन्त आकर्षक बनाने का जो प्रयास किया गया है, उसमे पूर्ण सफलता मिली है। निश्चय ही यह घटना कथा की प्राणस्वरूप है।

चतुर्थ जवनिकान्तर मे तेजी से घटनाक्रम परिवर्तित होता हुआ दिखाया गया है। इसमे विदूषक, वसन्ततिलका एव नायिका के कारागार मे बन्द होने, ज्येष्ठा-नायिका का भविष्यवाणी द्वारा हृदय परिवर्तित होने, उसके द्वारा स्वय शृङ्गारमञ्जरी से नायक का विवाह करवाने जैसी घटनाये वर्णित है। यहाँ कथा का अत एक उदात्त वातावरण में हुआ है। इसमे कर्पूरमञ्जरी सट्टक की भाँति अस्पष्टता की स्थिति नही है। शृङ्गारमञ्जरी के प्रति ज्येष्ठा-नायिका के हृदय का कालुष्य धुल चुका है। ज्येष्ठा-नायिका स्वयं शृङ्गारमञ्जरी का राजा से विवाह करवाती है; इस प्रकार सुखद वातावरण मे कथा का अन्त होता है।

उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि-कर्पूरमञ्जरी की कथा की अपेक्षा शृङ्गारमञ्जरी की कथा अधिक मनोरजक एव सुसगठित है। कथानक मे प्रारम्भ से लेकर अंत तक स्वाभाविकता बरकरार है। प्रायः मुख्य प्रयोजन से सम्बद्ध घटनाये ही मञ्चित या सूचित की गयी है, जिससे कथा में कसाव है। चरित्र चित्रण से सवलित एव रस परिपाक से सयुक्त कथावस्तु सुरुचिपूर्ण है। इसकी कथा भी कर्पूरमञ्जरी की कथा की भाँति चार जवनिकान्तरो मे विभाजित है, जो कालावधि की दृष्टि से, अन्तःपुर के दर्शकों एवं ग्राम्य दर्शकों के सर्वथा योग्य है।

●●●

चतुर्थ-अध्याय

पात्र-विवेचन

कर्पूरमञ्जरी सट्टक का पात्र विवेचन

राजा चन्द्रपाल

कर्पूरमञ्जरी

विभ्रमलेखा

विदूषक कपिञ्जल

विचक्षणा

भैरवानन्द

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक का पात्र विवेचन

राजा राजशेखर

शृङ्गारमञ्जरी

रूपलेखा

विदूषक गौतम

वसन्ततिलका

चारुभूति

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी की पात्र-व्यवस्था का तुलनात्मक परिशीलन

नायक

नायिका

ज्येष्ठा नायिका

विदूषक

प्रमुख सहायक पात्र

पात्र-विवेचन

दृश्य-काव्य मे पात्रो का विशेष महत्त्व होता है। अभिनेय होने के कारण दृश्य-काव्य का अभिनय पात्रो के अभाव मे किसी भी प्रकार सभव नही है। जिस प्रकार कोई वस्तु पात्र मे रखकर किसी को दी जाती है, उसी तरह अभिनेय कथावस्तु पात्र के माध्यम से दर्शको तक पहुँचती है। रूपककार पात्रो के माध्यम से ही, तात्कालिक जीवन का जीवन्त चित्र चित्रित करने मे सफल हो पाता है। वह उसके माध्यम से ही कालविशेष का परिवेश, वातावरण, सभ्यता, सस्कृति आदि को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। पात्रों की जीवन्तता एव प्रभावोत्पादकता, नाट्यकृतियो को सफल एव सुन्दर बनाने मे समर्थ होती है। वस्तु के बाद पात्र को दूसरा भेदक तत्त्व माना गया है।

पात्र योग्य व्यक्ति को कहते है। काव्य भाषा मे पात्र उसे कहा जाता है, जो रूपक को रोचक बनाता है।[१] इस प्रकार पात्र से तात्पर्य दृश्य-काव्य मे अभिनय करने वाले उन सभी स्वरूपो से है, जो अभिनय मे प्रवृत्त होकर अपनी भूमिका का निर्वाह करते है। अभिनय करने वाले पात्रो के अर्थ मे सामान्यत. नेता या नायक शब्द का प्रयोग किया जाता है, अर्थात् नेता या नायक से तात्पर्य सभी प्रकार के पात्रों से है। किन्तु दूसरी ओर नेता या नायक शब्द से, केवल मुख्य पुरुष पात्र का अर्थ भी लिया जाता है। बहुत पहले से नेता या नायक शब्द का, यही अर्थ अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित रहा है। अतएव व्यवहारिक रूप से यही कहना उचित है, कि—पात्र के अन्तर्गत सभी प्रकार के अभिनय करने वाले स्वरूप आ जाते है तथा नायक या नेता प्रमुख पुरुष को कहते है।

सट्टक की पात्र-व्यवस्था पूरी तरह नाटिका की पात्र-व्यवस्था के समान होती है। अर्थात् सट्टक

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—भूमिका, डा० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ३८

का नायक राजा होना है, जो धीरललित कोटि का होना है। नायिका के रूप में अन्तःपुरस्था, संगीतप्रिया कन्या का वर्णन उचित माना गया है। विदूषक, देवी (ज्येष्ठा नायिका), दूती तथा परिजन सट्टक के सहायक पात्र के रूप मे नियोजित होते है। इनमे स्त्री पात्रो का बाहुल्य होता है। यद्यपि राज्य संचालन तथा अन्य कार्य सम्पादन हेतु, पुरुष पात्रो की आवश्यकता होती है, अतः गणना के आधार पर पुरुष पात्रो की संख्या अधिक हो सकती है, परन्तु मुख्य कार्य सम्पादन मे पुरुष पात्र विशेष सहायक नही होते। इसके विपरीत दूती, चेटी आदि, वृत्त की महत्वपूर्ण भूमिकाओ का निर्वाह करती है। अतएव गणना के आधार पर पुरुष पात्रो के बाहुल्य की शका निरर्थक है। वस्तुतः सट्टक मे स्त्री पात्रो की ही बहुलता एव प्रधानता होती है। सम्प्रति क्रमशः कर्पूरमञ्जरी एव शृङ्गारमञ्जरी सट्टको का पात्र विवेचन प्रस्तुत है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक का पात्र विवेचन

राजशेखर-रचित कर्पूरमञ्जरी मे कथावस्तु का महत्त्व, अच्छे पात्रो के माध्यम से दर्शको के सामने आया है। इसमें पात्रो का आधार लेकर ही, अभिनय को सुरुचिपूर्ण ढग से प्रस्तुत किया गया है। कथावस्तु के अनुरूप पात्रों का गुम्फन है। उसके प्रमुख पात्रों मे राजा चन्द्रपाल, रानी विभ्रमलेखा, कर्पूरमञ्जरी, विदूषक कपिञ्जल, भैरवानन्द, दासी सुलक्षणा, कुरगिका एव सारगिका है। गौण पात्रो मे दो वैतालिक-रत्नचण्ड एव काञ्चनचण्ड प्रतिहारी, सूत्रधार, पारिपार्श्विक, चर्चरियाँ आदि है। कथावस्तु को फलागम तक पहुँचाने मे इन सभी का योगदान है। यद्यपि संख्या की दृष्टि से पुरुष एव स्त्री पात्रो की संख्या लगभग बराबर है; किन्तु प्रमुख भूमिकायें करने वाले पात्रो मे, पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियो की संख्या अधिक है। इस आधार पर इस सट्टक को स्त्रीबाहुल एव स्त्रीप्रधान कहना सर्वथा उचित है। प्रस्तुत सट्टक मे राजा चन्द्रपाल नायक, कर्पूरमञ्जरी नायिका, विभ्रमलेखा ज्येष्ठा नायिका, विदूषक कपिञ्जल राजा का वयस्य, सुलक्षणा देवी की परिचारिका एव कर्पूरमञ्जरी की सखी तथा कुरंगिका एवं सारगिका रानी की अन्य दासियाँ हैं। कर्पूरमञ्जरी सट्टक

मे, इनके अभिनय के आधार पर क्रमश उनके चरित्र का चित्रण, प्रस्तुत किया जा रहा है।

राजा चन्द्रपाल—

राजा चन्द्रपाल का चरित्र सट्टक के नायक के अनुरूप चित्रित हुआ है। सट्टक की सम्पूर्ण कथा इसी के आस-पास घूमती है। यही समस्त क्रियाओ का केन्द्र एव अङ्गीरस का आलम्बन है। यही नाट्य के फल का अधिकारी अथवा भोक्ता है। राजा चन्द्रपाल ही बीज, बिन्दु आदि से सवलित रूपक को अंतिम लक्ष्य तक ले जाता है।

राजा चन्द्रपाल निश्चित, कलासक्त, सुखी और कोमल स्वभाव का होने के कारण नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से धीरललित नायक है। ये समस्त लक्षण उसमे क्रमश. देखे जा सकते है। वह राजा है, अनेक देशो पर विजय प्राप्त कर चुका है, फिर भी इस पूरे कथानक मे उसे राज्य प्रशासन हेतु चिन्तित होते नही दिखाया गया है। निश्चय ही प्रशासन की समुचित व्यवस्था करके वह निश्चिन्त हो चुका है। चिन्तामुक्त होने के कारण ही प्रेम प्रसग हेतु उसके पास पर्याप्त अवसर विद्यमान है। कला के प्रति उसका प्रेम अनेक प्रसगो मे स्पष्ट होता है। नायिका का चित्र बनाना, चित्रकला मे उसकी निपुणता का परिचायक है। नायिक के प्रत्येक अग प्रत्यग के वर्णन के प्रसग में, राजा के मन मे नायिका का एक अलग ही तरह का चित्र उभरता है, जिससे वह नायिका के अगो मे प्राकृतिक सौन्दर्य की आनन्दानुभूति करता है, जो उसकी कलाप्रियता का द्योतक है। नृत्यकला के प्रति उसकी आशक्ति ही चर्चरियो के नृत्य मे उसे आह्लादित करती है।

राजा चन्द्रपाल स्वभाव से विनम्र है। यद्यपि वह चम्पा का राजा है, अनेक देशो का विजेता है, फिर भी वह देवी, नायिका, सेविकाओ आदि किसी के भी प्रति, कभी भी गर्वोक्तियाँ नही करता। सदैव विनम्रता पूर्वक अपनी बात कहता है। सेविकाओ के गुणों को भी हृदय से स्वीकार कर उनके

प्रति प्रशंशापूर्ण वचन बोलता है।[१] वह गभीर एव मधुर शोभा समुदाय वाला है, जिन्हे देखते ही नायिका उन्हें महाराज के रूप में पहचान लेती है।[२] वह राजा को, हृदय को चुराने वाला और आखों को तृप्त करने वाला बताती है।[३] वह सौन्दर्य मे चन्द्रमा तथा कामदेव की तरह है। तृतीय जवनिकान्तर मे नायिका उसे एकाएक आस-पास आया देखकर कह उठती है—"यह एकाएक आसमान से पूर्णिमा का चन्दमा कैसे उतर आया। क्या शिव जी ने प्रसन्न होकर कामदेव को उसका शरीर दे दिया।"[४]

राजा प्रियवद है। विचक्षणा की प्रशसा मे वह प्रियवचन बोलता है। राजा द्वारा अन्य पात्रों को किये गये सम्मान पूर्वक सबोधन उसकी प्रियवदता के परिचायक है। देवी के लिए वह— "दक्खिणावहणा-रिदणदिणि।" (दक्षिणापथनरेन्द्रनन्दिनन्दिनि) एव विदूषक के लिए "पिअवअस्स!" (प्रियवयस्य) सम्बोधन का प्रयोग करता है। नायिका की प्रशसा में की गयी उसकी प्रिय बाते द्रष्टव्य है—

"उद्ठिउण थणभारभगुर मा मिअकमुहि' भञ्ज मज्झअ।
तुज्झ ईरिसणिवेदमणे लोअणाण मअणो पसीअउ।।"[५]

अर्थात्—अयि चन्द्रमुखी मेरे स्वागत के लिए उठकर, स्तनो के भार से झूकी हुई अपनी कमर को मत तोड़ो। तुमको इस अवस्था मे देखकर ही मेरे नेत्र प्रसन्न हो रहे है।

राजा प्रियवद के साथ-साथ वाक्पटु भी है। विचक्षणा की कविता सुनकर पटुता पूर्वक कहता है, "सच्च

---

१ राजा—कि भणिअदि, सुकइत्तणे तुह जेट्ठबहिणिआ खु एसा।
(किं भण्यते, सुकवित्वे तव ज्येष्ठभगिनिका खलु एषा।)—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ५७

२ नायिका—एसो महाराओ को बि इमिणा गभीरमहुरेण सोहासमुदाएण जाणिज्जदि।
(एष महाराज. कोऽप्यनेनगभीरमधुरेण शोभासमुदायेन ज्ञायते।)—कर्पूरमञ्जरी—पृष्ठ ३४

३ नायिका—" . किं वा हिअअस्स दुज्जणो णअणाण सज्जणो जणो म सभावेदि?. ."
(कि वा हृदयस्य दुर्जनो नयनाना सज्जनो जनो मा सम्भावयति?)—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ११३

४ नायिका—(साध्वस स्वगतम्) अम्मो! किं एसो सहसा गअणङ्गणादो अवदीण्णो पुण्णिमाहरिणको?
किं वा तुट्ठेण णीलकण्ठेण णिअदेह समप्पिदो मणोहवो?—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ११३

५. कर्पूरमञ्जरी—३/२१

विअक्खणा विअक्खणा चतुरत्तणेण उत्तिण, वा किमण्ण कइण वि कई।[1] (मन्य विचक्षणा विचक्षणा चतुरत्वेनोक्तीनाम्, तत् किमन्यत् कवीनामपि कवि।) वह तेजस्वी है जैसा कि वैतालिक कहता है—"पराजित किये हुए राजाओ मे सुवर्ण की तरह चमकने वाले है।"[2] राजा होने से चन्द्रपाल की कुलीनता स्वय सिद्ध है। वह प्रज्ञावान (गृहीत ज्ञान मे विशेषज्ञता उत्पन्न करने वाला) है। वह स्वय कहता है कि—"स्वाभाविक सुन्दर व्यक्ति को बाह्य सजावट की आवश्यकता नही है।"[3] इस सम्बन्ध मे वह कपिञ्जल को अबोध कहता है। वह बुद्धिमान (किसी की बात को जानने वाला) है। वह जानता है, कि—वैतालिक उसे एव रानी को प्रसन्न करने के लिए वसन्तवर्णन कर रहे है। वह शास्त्रज्ञ है, तृतीय जवनिकान्तर मे उसने प्रेम, भाव, सौन्दर्य आदि को विद्वत्तापूर्ण ढग मे परिभाषित किया है। राजा दान मे भी अग्रणी है। वह अपने विवाह के दक्षिणा स्वरूप सौ गाव ब्राह्मण कपिञ्जल को दान करता है।

राजा चन्द्रपाल पवित्र मन वाला है। वह रानी से स्पष्टत: कहता है कि—"मै तुम्हे प्रसन्न करता हूँ, तुम मुझे प्रसन्न करती हो तथा वैतालिक हम दोनो को प्रसन्न करते है।"[4] इस कथन मे उसके मन की पवित्रता झलकती है। विदूषक द्वारा विचक्षणा के कान उखाड़ने की बात कहने पर राजा कहता है, कि—'मित्र ऐसा मत कहो, यह वस्तुत. कवि है।' उसने विचक्षणा को हरिश्चन्द्र आदि कवियो से बढ़कर बताया। वह दासी के ऐसे विलक्षण गुण की वास्तविकता को अपने मन की पवित्रता से स्वीकार करता है।

कर्पूरमञ्जरी से राजा का प्रेम अगाध है। कर्पूरमञ्जरी को देखते ही उससे प्रेम करने लगता है। रति के अनुकूल वातावरण यथा—वसन्त ऋतु, कोकिलस्वर, चन्द्रोदय आदि से कर्पूरमञ्जरी के प्रति उसका रति भाव तीव्र हो गया है। कर्पूरमञ्जरी का वियोग उसके लिए असहनीय है, वह उसी के ध्यान मे निर्मग्न रहता है। द्वितीय जवनिकान्तर मे कर्पूरमञ्जरी के वियोग मे उसका हृदय वेग बढ़ गया है। वह

---

१. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २१
२ कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १३
३. कर्पूरमञ्जरी—२/२८
४. कर्पूरमञ्जरी, रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १५

कर्पूरमञ्जरी द्वारा पहले अपने प्रति किये गये विभ्रम-हाव-भाव का स्मरण कर रहा है। प्रतिहारी के वचन से ध्वनित हो रहा है कि—वह हर रोज ताडपत्र पर कर्पूरमञ्जरी सम्बन्धी कुछ अक्षर पंक्तियाँ अंकित करता है। प्रतिहारी द्वारा वसन्त वर्णन कर उसका ध्यान बटाने का प्रयास करने पर भी कर्पूरमञ्जरी से उसका मन विमुख नही हो रहा है। कर्पूरमञ्जरी के प्रेम में वह उन्मत्त-सा हो गया है। उसकी उस उन्मत्त अवस्था का चित्रण विदूषक इस प्रकार करता है—"एसो पिअवअस्सो हंसो विअ विमुक्कमाणसो, करी विअ मदक्खामो, मुणालदण्डो विअ घणघम्ममिलाणो, दिणदीवो विअ विगलिदच्छाओ पभादपुण्णिमाचन्दो विअ पडुरपरिक्खीणो चिट्ठदि।"[1] अर्थात् यह मेरा प्रिय मित्र मानसरोवर से छूटे हुए हस के समान उद्विग्न मन वाला, मदस्राव से दुर्बल हाथी की तरह, प्रचण्ड सूर्यताप से मुरझाए हुए कमलनाल की तरह, दिन मे कातिहीन दीपक की तरह तथा प्रभातकालीन पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह पीला और थका सा बैठा हुआ है।

राजा कर्पूरमञ्जरी के साथ अपने प्रेम को लेकर विभ्रमलेखा से डरता है। तृतीय जवनिकान्तर के अत मे विभ्रमलेखा को आते हुए जानकर, सुरग केमार्ग से राजमहल मे चला जाता है। साथ ही विभ्रमलेखा से वह बहुत प्रेम करता है। विदूषक के यह कहने पर कि—"महारानी से इतना प्रेम होने पर भी कर्पूरमञ्जरी को .। क्या महारानी के गुण कर्पूरमञ्जरी से कम है।" राजा कहता है कि—"ऐसा मत कहो।" इस कथन से यह ध्वनित होता है कि वह ज्येष्ठानायिका को भी उतना ही महत्त्व देता है, जितना कर्पूरमञ्जरी को।

राजा को सिद्धयोगी भैरवानन्द की शक्ति पर विश्वास है, जैसा कि विवाह के प्रसग मे वह कहता है—"यह सब भैरवानन्द का काम है, ऐसा सोचता हूँ। वह नायिका प्राप्ति के लिए तन्त्रमन्त्र की शक्तियो पर भरोसा करता है, इस प्रकार कर्तव्य की अपेक्षा दैव पर उसे अधिक विश्वास है। कामक्रीड़ा ही उसकी दिनचर्या प्रतीत होती है। वह पैतृक राज्य का उपभोग करते हुए सतत् आनन्द मनाने में तल्लीन है। कवि ने नायक का चरित्र यद्यपि समग्रता के साथ वर्णित किया है किन्तु उसमें कोई राजोचित गुण नही

---

१ कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ५१

प्रदर्शित किया है। राजा का पराक्रमी व्यक्तित्व अन्त पुर के शृगारिक परिवेश मे सकुचित-सा प्रतीत होता है। राजा का बाहुबल, उसका सैन्यबल, उसकी न्यायप्रियता और अन्य राजोचित गुणो के निदर्शन का अभाव है। सम्भवत कथावृत्त की माँग मे राजा के उक्त गुणो को प्रस्तुत करने का कोई अवकाश या अवसर ही नही था, प्रत्युत केवल उसके सहृदय प्रेमी व्यक्तित्व को ही विकसित करना तथा उसी का विस्तार व फलप्राप्ति तक निर्वाह करना सट्टककार को अभीष्ट था।

कर्पूरमञ्जरी–

कर्पूरमञ्जरी इस सट्टक की कनिष्ठा किन्तु प्रधान नायिका है। यह कुन्तल देश के राजा–वल्लभराज एव रानी शशिप्रभा की पुत्री है, जिसे भैरवानन्द अपनी योगशक्ति के बल पर राजा चन्द्रपाल के महल में ला उपस्थित करता है। वह अपूर्व सुन्दरी है। इसकी तुलना हरिद्रा, केसर, चम्पा तथा सोना नही कर सकते।[१] उसकी आँखे बहुत सुन्दर है।[२] उसका अनुपम रूप, सौन्दर्य, नवीन यौवन और लावण्य राजा के कामुक हृदय को हठात् आकृष्ट कर लेता है। इसके कटाक्षो से देखा गया राजा अपने आप को चाँदनी से स्नान किया हुआ समझता है।[३] राजा एव विदूषक के मुख से इसके सौन्दर्य की प्रशसा सट्टक मे आद्योपान्त मिलती है। इसके सौन्दर्य से आशकित होकर ज्येष्ठा नायिका विभ्रमलेखा को भी विचारमग्न होना पड़ा।[४]

जिस प्रकार चन्द्रपाल इसके प्रति आसक्त है, उसी प्रकार यह भी उनके प्रति अनुरक्त है। लेकिन अपने भावो को एक चतुर नायिका की भाँति प्रकट नहीं होने देती। इसे मुग्धा नायिका की कोटि मे

---

१ कर्पूरमञ्जरी–३/१

२ कर्पूरमञ्जरी–३/२

३ कर्पूरमञ्जरी–१/२६

४. देवी–(स्वगतम्)–ण क्खु ससिप्पहागब्भुप्पत्ति अन्तरेण ईदिसी रूवरेहा होदि।
ण क्खु वेदरिअभूमिगब्भुप्पत्ति अन्तरेण वेदूरिअमणिसलाआ णिप्पज्जदि।
(न खलु शशीप्रभागर्भोत्पत्तिमन्तरेणेदृशी रूपरेखा भवति।
न खलु वैदूर्यभूमिगर्भोत्पत्तिमन्तरेण वैदूर्यमणिशलाका निष्पद्यते।)–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ४०

रखा जा सकता है। यह राजा के विरह मे अत्यधिक सतापित होती है, इसकी दशा सोचनीय हो जाती है। राजा के प्रति प्रेम सम्बन्ध के कारण यह विभ्रमलेखा से डरती है, किन्तु छिप-छिपकर राजा से प्रेम करती है। अतत राजा के साथ उसका विवाह सम्पन्न होता है।

यह बुद्धिमती है, लोगो को देखते ही पहचानने की इसमे क्षमता है। राजा को देखते ही बिना किसी सूचना के उसको राजा रूप मे पहचान लेती है। यह वाक्य एव काव्य-रचना-विधान मे निपुण है। उसके द्वारा राजा को भेजे गये प्रेम पत्र मे सारगर्भित एव सयमित शब्दो का प्रयोग हुआ है। उसके द्वारा किये गये चन्द्रवर्णन[१] की राजा काफी प्रशशा करता है।

राजमहल में रहते हुए वह अपना विशेष स्थान रखती है। यही कारण है कि महारानी उसके द्वारा दोहद कराती है। उसकी शालीनता उदाहरणीय है। कामसतनावस्था में भी एकाएक उपस्थित हुए राजा को देखकर वह घबराती है। इस प्रकार कर्पूरमञ्जरी का चरित्र न केवल सट्टक के सर्वथा अनुकूल चित्रित हुआ है; अपितु कथा के विकास मे सहायक एव रसोद्रेक को पूर्णता प्रदान कराने वाला है। अपने परिजनो के बीच से, हठात् भैरवानन्द द्वारा उठाकर लायी गयी होने पर भी, कभी भी वह अपने परिजनो का स्मरण नही करती। कर्पूरमञ्जरी मे एकमात्र राजा के प्रति प्रेम एव आकर्षण का होना तथा उसमे अन्य मानवीय सवेदनाओं का अभाव होना; कर्पूरमञ्जरी के व्यक्तित्व का अधूरा बिम्ब ही उपस्थित करते है। अपने परिजनो का कथमपि स्मरण न करने तथा प्रेम के लिये आवश्यक समर्पण एव त्याग जैसे गुणो का समुचित चित्रण न होने से, सट्टककार उसे स्निग्ध आदर्श प्रणयिनी की कोटि में नही रख पाते, वह प्रेम में स्वार्थी है, जिसने मौसेरी बहन मानकर उसे आश्रय दिया, उस महादेवी विभ्रमलेखा के साथ

१. कर्पूरमञ्जरी—३/३१

भी छल करके घनसारमञ्जरी के रूप में राजा से विवाह करने के षड्यन्त्र का हिस्सेदार बन जाती है।

विभ्रमलेखा–

विभ्रमलेखा इस सट्टक की ज्येष्ठा नायिका एवं राजा चन्द्रपाल की प्रधान महिषी है। उसका चरित्र सीधा-साधा चित्रित हुआ है। वह रिश्तों के प्रति सचेत है, बहन के रूप में कर्पूरमञ्जरी का आदर करती है तथा उसे सजाने-सवारने हेतु जाने के लिए राजा से अनुमति मांगती है। श्रेष्ठ व्यक्तियों के आदर-सत्कार मे भी वह पीछे नही रहती। विचक्षणा से सुलक्षणा द्वारा भैरवानन्द का मनोनुकूल सत्कार करने के लिए कहती है।[1]

वह नीति-निपुण है। वह विचक्षणा से कहती है कि–'सोना कसौटी पर कसने पर ही शुद्ध या अशुद्ध कहा जा सकता है।...पुत्र वही अच्छा है जो अपने कुल को उज्ज्वल करे।' वह काव्य-पाठ मे भी निपुण है। उसने प्रथम जवनिकान्तर मे राजा के समक्ष अनेक प्रकार से वसन्त का वर्णन किया है।[2]

राजा के प्रति विभ्रमलेखा का अगाध प्रेम है। उसमे राजा के उत्कर्ष की लालसा है। कर्पूरमञ्जरी एवं राजा के प्रेम को न सह सकने वाली वह रानी, राजा के चक्रवर्ती हो जाने की कामना में ही, घनसारमञ्जरी से राजा का विवाह करवाने के लिए तैयार होती है। जहाँ वह घनसारमञ्जरी से राजा का विवाह करवाने जा रही है, वही कर्पूरमञ्जरी का नाम सुनकर चौकती है। यह राजा के प्रति उसके प्रेम का द्योतक है, क्योकि उसे विश्वास हो चुका है, कि घनसारमञ्जरी से शादी होने पर राजा चक्रवर्ती राजा होगा, न कि कर्पूरमञ्जरी से शादी होने पर।

भैरवानन्द के प्रति विभ्रमलेखा में अटूट विश्वास है, उसी के कहने पर, वह घनसारमञ्जरी से

---

१ देवी–विअक्खणे! णिअजेट्ठबहिणिअ सुलक्खण भणिअ भइरवाणदस्स हिअइच्छिआ सपज्जा कोदव्वा।
(विचक्षणे! निजज्येष्ठभगिनिका सुलक्षणा भणित्वा भैरवानन्दस्य हृदयेप्सिता सपर्या कर्तव्या।।)
–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ४२

२. कर्पूरमञ्जरी–१/१४ एवं १/१७-१८

राजा की शादी के लिए तैयार होती है।

चतुर्थ जवनिकान्तर के अन्त मे रानी अपने अनुचरो के साथ चली जाती है। यहाँ रानी का चरित्राकन कुछ अस्पष्ट-सा है। यहाँ पता नही चल पाता, कि–रानी राजा के विवाह मे अप्रसन्न होकर जा रही है, अथवा अपने को छले जाने के कारण रूठ कर जा रही है। अथवा उसने यह जान भी लिया है कि नही? कि–घनसारमजरी ही कर्पूरमञ्जरी है, क्योंकि–विवाह के अवसर पर घनसारमञ्जरी के रूप मे कर्पूरमञ्जरी धुएं के बहाने मुह घुमाए खड़ी रहती है। रानी के चले जाने के पर विवाह की दक्षिणा देने आदि का प्रसग चलता रहता है, यह सब रानी के सामने भी हो सकता था। इस प्रकार रानी विभ्रमलेखा का चरित्राकन भी अधूरा रह जाता है। जिस विभ्रमलेखा मे राजा के प्रति कर्पूरमञ्जरी के प्रेम को देखकर ईर्ष्या उत्पन्न होती है, वह यह जानकर कि घनसारमञ्जरी ही कर्पूरमञ्जरी है, और नाम बदलकर उसके पति के साथ एक अन्य स्त्री का विवाह कराकर उसके साथ छल एव धोखा किया जा रहा है–इस पर उसकी कोई प्रतिक्रिया प्रस्तुत कराने मे राजशेखर को सफलता नही मिली। अपितु सामाजिक को इस प्रश्न पर कवि से निराशा ही हाथ लगती है।

विदूषक-कपिञ्जल–

अन्य सस्कृत रूपको की भाँति कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे विदूषक का विशिष्ट स्थान है। इसका नाम कपिञ्जल है। यह राजा का अतरग सहयोगी मित्र, कृपापात्र एव विश्वासपात्र है। यह ब्राह्मण जाति का है। ब्राह्मणोचित सयम, त्याग, तितिक्षा, पाण्डित्य का इसमे अभाव है। इसके श्वसुर का श्वसुर पण्डितों के यहाँ पुस्तके उठाता था, इस हेतु यह अपने आप को विद्वान समझता है। यद्यपि वह शास्त्रज्ञ नही है, किन्तु चतुर है। चेटी द्वारा हसकर कहे गये कथन, कि–"तब तो तुम वश परम्परा से विद्वान ठहरे"[1] के पीछे स्थित व्यग्य को वह समझ जाता है। यदि वास्तव मे वह मूर्ख होता तो

---

१. चेटी–(विहस्य)–तदो आगद दे अण्णएण पडित्तए।
(तत आगत ते अन्वयेन पाण्डित्यम्।)–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १८

इस कथन से प्रसन्न हुआ होता।

कपिञ्जल विचित्र व्यक्ति है। उसे न कभी काम सताता है और न गर्मी में गर्मी लगती है। अनुनय करने पर कठोर हो जाता है।[1] वह ललित प्रवृत्ति का है, अतएव इस क्षेत्र में राजा की सदैव सहायता करता है। वह प्रवृत्ति से झगडालू है। विचक्षणा द्वारा व्यंग्य करने पर उससे झगड जाता है। वह खोजी प्रवृत्ति का है। उसे सब समाचार ज्ञात रहता है। कर्पूरमञ्जरी पर देवी द्वारा लगाये गये पहरे की बात उसे ज्ञात रहती है।

यद्यपि उसके पास कविता के सुन्दर भाव नहीं है, फिर भी वह काव्य रचना में प्रवृत्त होता है एवं अपने को कवि मानता है। राजा की विरहावस्था का निवेदन कविता के माध्यम से करता है। उसने हिंडोला पर झूलती कर्पूरमञ्जरी का काव्यमय वर्णन किया है। वह निरक्षर होने पर भी राजदरबार का आदरणीय व्यक्ति है।[2] वह अन्य देशों का पर्यटन कर चुका है, जिसमें विदर्भ नगर में कर्पूरमञ्जरी को देख चुका था। वह शास्त्रीय चर्चाओं में राजा के साथ भाग लेता है।

विदूषक नायक-नायिका के मिलन हेतु प्रयासरत है। विचक्षणा के साथ मिलकर वह योजना बनाता है, जिससे हिंडोला चतुर्थी के दिन राजा कर्पूरमञ्जरी को देख सके। वह राजा की सेवा मे तत्पर रहता है। राजा के संताप को दूर करने हेतु विलेपन आदि की व्यवस्था के लिए प्रयास करता है। भैरवानन्द की अपूर्वशक्ति पर उसे विश्वास है। वह पुरोहित का कार्य सम्पादित करने मे भी प्रवीण है। दक्षिणा ग्रहण कर आशीर्वाद प्रदान करता है।

कपिञ्जल कभी-कभी असावधानी भी कर जाता है, जैसे घनसारमञ्जरी के प्रसंग में कर्पूरमञ्जरी

---

१ विचक्षणा—अणुणअकक्कसो क्खु कविजलबम्हणो सलिलसित्तो विअ सणगुणगंठी चिर गाढअरो भोदि।
(अनुनयकर्कशः खलु कपिञ्जलब्राह्मणः सलिलसिक्तः इव शणगुणग्रन्थिश्चिरं गाढतरो भवति।)
—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २७

२. विचक्षणा—...जदो तुमं णाराओ विअ णिरक्खरो वि रअणतुलाए णिउज्जीअसि।
(...यतस्त्वं नाराच इव निरक्षरोऽपि रत्नतुलायां नियुज्यसे।)—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २३

का नाम लेना है, जिससे महारानी चौंक जाती है।[1]

प्रस्तुत सट्टक में विदूषक के चरित्र का पूर्ण-परिपाक मिलता है। वह हास्य उत्पन्न करने में सर्वथा समर्थ हुआ है, जो कि शृङ्गार रस की पुष्टि के लिए सट्टक की माग के अनुसार अत्यावश्यक था। कपिञ्जल सस्कृत नाटकों में वर्णित विदूषक की परम्परा का अनुगमन करता है। वह राजा एव उसके अन्त पुर के हास्य-विनोद एव आनन्द का साधन बनने में सफल रहा है।

विचक्षणा–

विचक्षणा महारानी की प्रधान परिचारिका है। यद्यपि वह देवी के आदेश से कर्पूरमञ्जरी की सेवा में है, फिर भी उसका कर्पूरमञ्जरी से सहज-स्नेह है। वह हर प्रकार से उसके दु ख को दूर करने के लिए हृदय से प्रयास करती है। वह नायिका का नायक से मिलन करवाने हेतु प्रयासरत है। वह नायिका के कामसताप की स्थिति में विलेपन का प्रबन्ध करती है, किन्तु इस प्रकार के विलेपन की आवश्यकता न पड़े इस हेतु वह नायक-नायिका का एक दूसरे का दर्शन करवाने की योजना विदूषक के साथ मिलकर बनाती है।

विचक्षणा मधुर-व्यग्य करने मे सिद्धहस्त है। कविता करने में वह निपुण है। उसकी वचन चातुरी से प्रसन्न राजा, उसे वास्तविक विचक्षणा कहने के लिए विवश होते है। राजा ने उसके लिए विदूषक से खुद कहा कि–"यह (विचक्षणा) वस्तुतः कवि है।"[2] राजा ने इसे अनेक महाकवियों से बढ़कर स्वीकार किया है। उसे हम विदूषक से झगड़ा करते हुए भी पाते है।

---

१ विदूषक– . दाव हत्येण हत्थ गेण्ह कप्पूरमञ्जरीए।
(तावद्धस्तेन हस्त गृहाण कर्पूरमञ्जर्या.।)
राज्ञी–(सचमत्कारम्)–कुदो कप्पूरमञ्जरी!
(कुत कर्पूरमञ्जरी!)–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १५२

२. राजा–सच्चं विअक्खणा विअक्खणा चदुरत्तणेण उत्तिनं, ता किमण्णं कइण वि कई।
(सत्य विचक्षणा विचक्षणा चतुरत्वेनोक्तीनाम्, तत् किमन्यत् कवीनामपि कवि।।)
–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २१

इस प्रकार विचक्षणा का चरित्र एक सच्ची सहेली के रूप में तो सामने आता ही है, साथ ही कथा के विकास एव रस परिपाक मे बहुत सहयोगी हुआ है।

भैरवानन्द–

सस्कृत नाटको मे विस्मयकारी कार्य आदि करवाने जैसे कुछ विशेष प्रयोजनो मे कापालिको, योगियो जैसे पात्रो का समावेश किया जाता रहा है। कर्पूरमञ्जरी सट्टक का भैरवानन्द भी इसी परम्परा का अंग है। वह एक प्रसिद्ध तान्त्रिक, मान्त्रिक तथा चमत्कारी शक्तियों वाला है। वह मदिरा पान करता है। वह अपने विषय मे खुद कहता है, कि–"न कोई मन्त्र जानता हूँ, न कोई शास्त्र जानता हूँ"[१]इत्यादि। वह अपने कार्यो के विषय मे खुद कहता है, कि–"चन्द्रमा को भी पृथ्वी पर उतार कर दिखा सकता हूँ. .भूमण्डल पर ऐसा कोई कार्य नही जिसे मै न कर सकूं।"[२] उसने अपने कथनानुसार अद्‌भूत कार्यो का प्रदर्शक भी किया एव कर्पूरमञ्जरी को विदर्भ राज्य से लाकर उपस्थित कर दिया। उसके प्रभाव से असमय मे केवड़े का फूल, फूल जाता है।वह चामुण्डा का पुजारी है। मूर्ति मे प्राण प्रतिष्ठा करवाता है। कथा के विकास मे भैरवानन्द का प्रमुख स्थान है।

---

१ भैरवानन्दः–मतो ण ततो ण अ कि पि जाण झाण च णो कि पि गुरुप्पसादा।
मज्ज पिआमो महिल रमामो मोक्ख च जामो कुलमग्गलग्गा।।
(मन्त्रो न तन्त्र न च किमपि ज्ञान ध्यानञ्च नो किमपि गुरुप्रसादात्।)
मद्य पिबामो महिला रमयामो मोक्षञ्च याम कुलमार्गलग्ना ।।–कर्पूरमञ्जरी, १/२२

२ भैरवानन्दः– दसेमि त पि ससिण बसुहावइण्ण
थभेमि तस्स वि रविस्स रह णहद्धे।
आणेमि जक्खसुरसिद्धगणगणाओ
त णत्थि भूमिबलए मह ज ण सह।।

(यामि तमपि शशिन वसुधावतीर्णं
स्ताभ्नामि तस्यापि रवे रथ नभोध्वनि।
आनयामि यक्षसुरसिद्धगणाङ्गनाः।
तन्नास्ति भूमिवलये मम यन्न साध्यम्।।)–कर्पूरमञ्जरी–१/२५

नाटकीय कथावस्तु भैरवानन्द के कारण ही आगे बढ़ती है, क्यो कि वही कर्पूरमञ्जरी को दूर देश मे लाकर चन्द्रपाल के सम्मुख उपस्थित करता है एव राजा के उस पर मोहित होने तथा महारानी द्वारा भैरवानन्द की अनुमति से उसे कुछ दिनो के लिए अपने पास रख लेने मे, कथा आगे बढ़ चलती है। अन्तत भैरवानन्द के प्रयास से ही कर्पूरमञ्जरी से राजा का विवाह सम्पन्न हो पाता है।

भैरवानन्द को जिस रूप मे प्रथम जवनिकान्तर मे चित्रित किया गया है, एव वहाँ उसकी भयानक स्वरूप वाले व्यक्ति की जो छवि बनती है, वही चतुर्थ जवनिकान्तर मे वह सर्वथा भिन्न छवि वाला प्रतीत होता है। कहाँ वह प्रथम जवनिकान्तर मे सब कुछ कर सकने की सामर्थ्य का डका पीटता है और कहाँ चतुर्थ जवनिकान्तर मे रानी विभ्रमलेखा से सशकित है, कि कही वह शादी रोक न दे। जब विदूषक के मुख से घनसारमञ्जरी के प्रसग मे कर्पूरमञ्जरी का नाम आ जाता है और रानी चौकती है, तब भैरवानन्द सफाई प्रस्तुत करते हुए दिखाई पड़ता है। प्रथम जवनिकान्तर मे अक्खड़ मनमौजी योगी के रूप मे अपनी छवि बनाने वाला सिद्ध योगी चतुर्थ जवनिकान्तर मे लिजलिजे रूप मे चित्रित हुआ है। वह राजा की शादी कर्पूरमञ्जरी से, उसे घनसारमञ्जरी के रूप मे प्रस्तुत करके छल का सहारा लेकर करवाता है। यह प्रथम जवनिकान्तर मे चित्रित भैरवानन्द के व्यक्तित्व के प्रतिकूल सा चित्रण लगता है। वह व्यक्ति जो सब कुछ करने मे समर्थ हो, शादी के लिए झूठ का सहारा ले, महारानी से सशकित हो, यह उसके व्यक्तित्व के लिए सटीक नही है। यहाँ भैरवानन्द से दर्शक को कुछ दूसरे ही तरह की अपेक्षा रहती है। हो सकता है सट्टककार ने चमत्कार पैदा करने के लिए भैरवानन्द को इन-इन रूपो मे चित्रित किया हो, परन्तु इस लघु चमत्कार के लिए कथा की स्वभाविकता में विघ्न डालना उचित प्रतीत नही होता।

पूर्व मध्यकाल से लेकर मुगलों के आगमन काल तक हमारे देश मे तान्त्रिकों और कापालिकों का बोलबाला था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इनकी पहुँच थी। राजाओं और राजनीति तक इनके

प्रभाव मे थी। फिर भी इनको धूर्त, चरित्रहीन और व्यभिचारी ही माना जाता था। समाज मे इन्हे आदर्श पात्र कभी नही स्वीकार किया गया, भले ही अपना काम बनाने के लिये इनकी सहायता प्राप्त करना निषिद्ध न रहा हो।

इस दृष्टि से विचार करने पर तान्त्रिक भैरवानन्द दर्शको को बहुत निराश नही करता। एक ओर वह अपनी गर्वोक्तियो के द्वारा राजा, विदूषक, एव विभ्रमलेखा का विश्वास जीतता है, तो दूसरी ओर वह नायिका को नायक के सामने उपस्थित करके सबको हतप्रभ कर देता है, किन्तु अन्तत वह झूठ और छल का सहयोग लेकर राजा को उसकी मनोरथ प्रियतमा को सुलभ कराकर राजशक्ति पर अपनी धाक जमा लेता है। जहाँ तक घनसारमञ्जरी से विवाह करने वाले व्यक्ति के चक्रवर्ती बनने वाली बात है, तो अन्त तक दर्शक को इस प्रश्न का उत्तर नही मिलता कि इस अभ्युक्ति की सच्चाई क्या थी। सम्भव है रानी विभ्रमलेखा की, विवाह हेतु सहमति लेने के लिए यह झूठा प्रचार किया गया हो, क्योकि जब घनसारमञ्जरी ही एक छलावा थी, तो उसके पति का चक्रवर्ती होना भी छलावा हो सकता है। परिणामत इस प्रसग मे कापालिक भैरवानन्द मध्यकालिक कापालियों की इमेज से निकलकर एक निश्छल सिद्ध तपस्वी का चरित्र नही निभा सके।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक का पात्र विवेचन

पात्र सयोजन की दृष्टि से विश्वेश्वर-रचित—शृङ्गारमञ्जरी, एक सफल कृति है। विश्वेश्वर ने खुद कहा है कि इस कृति में सभी पात्र अच्छी घटनाओं से युक्त है—(सुघडिअसमत्तपत्ता)[१]। निश्चय ही भावो एव पात्रों का सामञ्जस्य आद्योपान्त दृष्टिगोचर होता है। इसमे सख्या की दृष्टि से पुरुष एव स्त्री पात्रो की सख्या लगभग बराबर है। पुरुष पात्रो मे सूत्रधार, राजा-राजशेखर, विदूषक-गौतम एव महामन्त्री-चारुभूति हैं। स्त्री पात्रो मे नटी, शृङ्गारमञ्जरी, देवी—रूपलेखा, परिचारिका—वसन्ततिलका, सेविका—माधविका हैं। इनमें पुरुष पात्रों मे जहाँ राजा एवं विदूषक

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—१/६

की प्रमुख भूमिका है; वही स्त्री पात्रों मे शृङ्गारमञ्जरी, रूपलेखा एव वसन्ततिलका, प्रमुख भूमिकाओं का निर्वाह करती है। इसके अतिरिक्त अन्य पात्रों–अमात्य, माधविका, दासी प्रतिहारी आदि की भूमिका गौण है।

राजशेखर–

राजशेखर कर्पूरमञ्जरी सट्टक का नायक है। उसमे नायक के शास्त्र-सम्मत समस्त गुण विद्यमान है। वही सट्टक की कथावस्तु के केन्द्र मे स्थित है। उसे ही आधार बनाकर कथानक का ताना-बाना बुना गया है एव उसे ही अन्त फल की प्राप्ति होती है।

राजा राजशेखर निश्चिन्त, कलासक्त, सुखी और कोमल स्वभाव का होने के कारण नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से धीरललित नायक है।[1] वह राजा है, राजाओ से अभिवदित चरणों वाला है।[2] उसकी आज्ञा राजाओ के मुकुटमणियो के प्रभामञ्जरी के अंतिम किनारे तक पहुँची है। भृकुटी के बल-भगिमा से समुद्र तक पृथ्वी सीमा बन चुकी है।[3] उसके राज्यकार्य की चिन्ता मन्त्री करते है। फलतः निश्चिन्त होकर वह सगीत, नृत्य, चित्र आदि कलाओ मे डूबा रहता है। वह सौन्दर्य प्रेमी है, स्वप्न मे नायिका को देखकर उसके प्रति आशक्त है। उसने कहा है–"(उसे देखने के बाद से) पागल-सा हो गया हूँ।" वसन्ततिलका से नायिका के विषय मे सुनकर एव नायिका को देखकर उसका अनुराग विकसित होता है। वह नायिका के विरह मे सतप्त रहता है।[4] वह अनेक पत्नियो वाला है। अन्त पुर में प्रेम क्रीड़ा करता है, कुञ्जों प्रमदवनो में विहार करता है। भोग-विलास उसे

---

१ 'निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्त' सुखी मृदु.।'–दशरूपक–२/३

२ विदूषक–'...भव परिदवदेण वदिअपओवि।
(भवान् नरेन्द्रवृन्देन वदितपदोऽपि।)'–शृङ्गारमञ्जरी–३/३२

३ ' .पारावारावहि वसुमई भूविभगेक्कसज्झा .।'
(पारावारावधिवसुमती भ्रूविभङ्गैकसाध्या...।)–शृङ्गारमञ्जरी–४/२४

४. शृङ्गारमञ्जरी–२/१७-१८

अच्छा लगता है। उसका मन नायिका को छोड़कर सर्वोत्तम वस्तुओं में भी रुचि नहीं ले रहा है।[1] नायिका से मान छोड़ने हेतु चरणों पर गिरने तक को तैयार है।[2] वसन्ततिलका को, नायिका के साथ प्रेम को निभाने का विश्वास दिलाता है।[3]

चित्रकला में वह प्रवीण है। स्वप्न में देखी गयी नायिका का चित्र बनाकर कलाप्रेमी होने का परिचय देता है। वह अन्य कलाओं का भी पारखी है। विदूषक एवं वसन्ततिलका के मध्य हो रही शास्त्रीय चर्चा में वसन्ततिलका की प्रतिभा से प्रभावित होकर उसकी प्रशंसा करता है। वह वक्रोक्ति का जानकार एवं अन्तःकरण के भावों को समझने में समर्थ है।[4] उसके हृदय में दया है एवं गुणों के प्रति आदर है, तभी वह तृतीय जवनिकान्तर में शृङ्गारमञ्जरी से मिलने जाता है, क्योंकि शृङ्गारमञ्जरी राजा को दया एवं गुणों के प्रति आदर के भाव का वास्ता देकर, अपने ऊपर कृपा करने का निवेदन वसन्ततिलका के माध्यम से की थी।[5]

राजशेखर का स्वभाव विनम्र एवं कोमल जान पड़ता है। वह शृङ्गारमञ्जरी के प्रति अपने प्रणय-व्यापार में, ज्येष्ठा नायिका से शंकित एवं भयभीत है। यद्यपि शृङ्गारमञ्जरी से उसका

---

१ राजा– सव्वाहिए वि विसए ण रुइ उवेइ।
(सर्वाधिकेऽपि विषये न रुचिमुपैति।)–शृङ्गारमञ्जरी–३/५८

२ राजा–अम्ह सिराहरणणिम्मलपम्मराओ भाणुक्करतरिअपाअणहो पिए ते।
गब्भे णिहित्तसिअदीहिइमडलो व्व मत्तअडओ फुरउ चडि विमुच माण।।
(अस्माक शिरसाभरणनिर्मलपद्मराग भानूत्करान्तरितपादनख प्रिये ते।
गर्भे निहितसितदीधितिमण्डल इव मार्तण्डक स्फुरतु चण्डि विमुञ्च मानम्।।)
–शृङ्गारमञ्जरी–३/६०

३ राजा–कह एव्व आसकीआमो? (कथमेवमाशङ्कामहे?)
केअइमालइमल्लीलदासु भमरो भमउ णाम।
तस्स उण पम्मिणीए जो राओ सो अणण्णसामण्णो।।
(केतकीमालतीमल्लीलतासु भ्रमरो भ्रमतु नाम।
तस्य पुन. पद्मिन्या यो राग सोऽनन्यसामान्य ।।)–शृङ्गारमञ्जरी ३/६३

४ शृङ्गारमञ्जरी–२/६

५ शृङ्गारमञ्जरी–३/१३

अगाधप्रेम है: फिर भी ज्येष्ठा नायिका के प्रति हृदय से व्यवहार करता है एवं आदरभाव रखता है। वह ज्येष्ठा नायिका के आमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार करता है,[1] जो ज्येष्ठा नायिका के प्रति उसके कर्तव्य निर्वाह का परिचायक है। वह अतत रानी के आदेश पर शृङ्गारमञ्जरी से विवाह भी करता है। इस प्रकार वह दक्षिण-नायक है।

कोमल स्वभाव, शृङ्गारी प्रवृत्ति एवं कलाप्रेमी होने के कारण प्रकृति से बहुत लगाव रखता है। उपवन के वृक्षों और कुञ्ज में छोटे पौधो एवं लताओं को देखकर प्रसन्न रहता है। रानी के क्रोध को शान्त करने के लिए नम्र निवेदन करने को तैयार है।[2] वह रानी से नम्र निवेदन करता भी है।[3] प्रियमित्र के बन्दी होने पर उसके कष्ट का अनुमान कर विह्वल हो उठता है, जो उसकी सरल हृदयता का परिचायक है।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में राजा राजशेखर को धीरललित नायक के प्रसिद्ध लक्षणो से, पूर्णत सुसज्जित करने का प्रबल प्रयास, सर्वत्र परिलक्षित होता है और इस कार्य मे सट्टककार को पूर्ण सफलता भी प्राप्त हुई है।

शृङ्गारमञ्जरी–

प्रस्तुत सट्टक की कनिष्ठा नायिका शृङ्गारमञ्जरी है। यह ज्येष्ठा नायिका के बहनोई अवन्तिनरेश

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, डा० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ३७

२ अहोता अण्णस्सि कह वि अ विसवाअरहिआ
पहुत्ता अम्हाण कवडणिवहा ज अवगआ।
अदो देवीए जो हिअअमहिरूढो अणुसओ।
स ईसमुक्को चे अणुणअसएहि पि अहिअ।।
(अभवन्तोऽन्यस्मिन्कथमपि च विसवादरहिता
प्रभूता अस्माक कपटनिवहाः यदवगता.।
अतो देव्याः यो हृदयमधिरुढोऽनुशय
स ईषन्मुक्त (श्चेत्) अनुनयशतैरप्यधिकम्।।)–शृङ्गारमञ्जरी–४/४

३ शृङ्गारमञ्जरी–४/१६

जटाकेतु की पुत्री है।[1] यह भगवती पार्वती के वरदान से उत्पन्न हुई है। इसका पति चक्रवर्ती राजा होगा, ऐसा इसके विषय मे मातग ऋषि ने बताया था। अमात्य चारुभूति ने मातग ऋषि से राजा हेतु इसकी मगनी की थी।

शृङ्गारमञ्जरी परकीया मुग्धा कोटि की नायिका है। यह परमसुन्दरी है। राजा स्वप्न मे इसे देखकर इस पर मोहित होता है। शृङ्गारमञ्जरी भी पहले से ही राजा के प्रति अनुरक्त है, जो कि वसन्ततिलका के स्वगत कथन से स्पष्ट है।[2] वह असाधारण सौन्दर्यशालिनी है, तभी रानी उसे राजा के नयनपथ से बचाये हुए है।[3] उसके अग अतिशय कोमल एव नेत्र चञ्चल है। उसके मुख से निकलने वाले वचन वक्रार्थगर्भित है तथा नायक के कानो मे अमृत घोलते है एव सताप को दूर करते है।[4] वह अपने हावभावो से अपने प्रिय को रिझाने मे समर्थ है। रानी की दृष्टि मे भी वह असाधारण रूप से सुन्दर है।

शृङ्गारमञ्जरी प्रेम के यथार्थ स्वरूप को जानती है। वह स्वय कहती है कि–प्रेम अनुकूल व्यवहार मे स्वय प्रकट हो जाता है, दिखलाने पर वह कृत्रिम बन जाता है।[5] राजा के प्रति उसका प्रेम अगाध है। वह पहले से ही राजा के प्रति आकर्षित है। वह राजा के दर्शनो के लिए उत्सुक है।[6] एव उसे देखकर उसके प्रति अधिकाधिक आसक्त हो जाती है, राजा से मिलने के लिए बेचैन हो उठती है। राजा के प्रति प्रेम एव उसके विरह मे उसकी दशा सोचनीय है।[7] वह अपने दुखो के

---

१ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०७

२ सिंगारमजरीए देओ हिअअस्स वधणट्ठाण।
(शृङ्गारमञ्जर्या. देव हृदयस्य बन्धनस्थानम्।)–शृङ्गारमञ्जरी–१/३३

३ देवी–(स्वगत)– .सा उण अउव्वलावण्णणिहाणहुआत्ति अज्जउत्तस्स णअणमग्गादो मए प्पअत्तेण रक्खीअदि।
(सा पुनरपूर्वलावण्यनिधानभूतेति आर्यपुत्रस्य नयनमार्गात् मया प्रयत्नेन रक्ष्यते।)–शृङ्गारमञ्जरी–पृष्ठ ५०

४ शृङ्गारमञ्जरी–१/२२, ३/४०

५. शृङ्गारमञ्जरी–३/५६

६. शृङ्गारमञ्जरी–२/२८

७ शृङ्गारमञ्जरी–३/८-११

अन के लिए शरीरान्त तक को उद्यत है।

वह रस-शास्त्र की मर्मज्ञ है। कई बार उसकी परीक्षा देवी द्वारा ली जा चुकी है।[1] यही कारण है कि शास्त्रीय विवाद के निबटारे हेतु उसे मध्यस्थ बनाया जाता है। इससे उसकी सर्वमान्यता एव निष्पक्षता भी प्रमाणित होती है। वह प्रभूत गुणों वाली है, अपने गुणों के अनुरूप राजा से उसे प्रेम है।[2] राजा भी कहता है कि–'हे सुन्दरी मै पहले से ही तुम्हारे गुणों से बधा था।'[3]

शृङ्गारमञ्जरी का हृदय निर्मल है। यद्यपि मदनजन्य एव महारानी जन्य सैकड़ो दुखो की अनुभूति के कारणभूत इस शरीर का विनाश करना चाहती है, फिर भी कामदेव एव महारानी के प्रति उसके मन मे शुभाशसा है।[4] उसमे लज्जा की प्रधानता है। वह लताकुञ्ज मे नायक को देखकर लजाती है। राजा के हाथ का सहारा लेने मे उसे सकोच है। उसे अनेक कष्ट सहन करने पड़े है, किन्तु अपनी इच्छाशक्ति की दृढ़ता के कारण वह लक्ष्य प्राप्ति मे सफल होती है। उसका चरित्र अवसरानुसार परिवर्तनशील है; इसका मुग्धात्व शनै.-शनै अधीरा, प्रगल्भा, कृष्णाभिसारिका और मानवती के रूप मे परिवर्तित हुआ है। पहले वह मुग्धा होने के कारण लजाती है, किन्तु जब दु ख का सागर उमड़ पड़ता है, तब वह अपने हृदय की आँधी को नही रोक पाती एव सिसक-सिसक कर केवल आँसू गिराती है। वह अधीरा हो जाती है। विरह सताप के कारण वह जीवन और मरण की दो नौकाओं मे डगमगाती है।[5] यहाँ वह प्रगल्भा रूप मे दिखती है। नायक से मिलने हेतु रात मे

---

१ ..रसणिरूअसे कअपरिस्समा अणेअवार कअपरिक्खणा अ।
   (.रसनिरूपणे कृतपरिश्रमा अनेकवार कृतपरीक्षणा च।।)–शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ५०

२ शृङ्गारमञ्जरी–३/४५

३ शृङ्गारमञ्जरी–३/४८

४. होउ मअणो कअत्थो चावादो तस्स ओअरदु जीआ।
   देवीअ भोदु भद्द वहेण मे अणवराहे वि।।
   (भवतु मदन. कृतार्थः चापात् तस्यावतरतु ज्या।
   देव्या भवतु भद्र वधेन मेऽनपराधेऽपि।।)–शृङ्गारमञ्जरी–३/१२

५. शृङ्गारमञ्जरी, भूमिका, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ४२

अभिशरण करती है, यहाँ वह कृष्णाभिमार्गिका रूप में है। नायक से मिलने पर मान करती है, यहाँ वह मानवती रूप में परिवर्तित दिखती है।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में शृङ्गारमञ्जरी का चरित्र आदर्श प्रेमिका के रूप में चित्रित किया गया है, जो कथा की माँग में सर्वथा अनुरूप है। शृङ्गारमञ्जरी का चरित्र सट्टक के अंगी रस शृङ्गार को रसोद्रेक तक पहुँचाने में सफल रहा है।

रूपलेखा–

महारानी रूपलेखा शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की ज्येष्ठा नायिका है। यह सर्वप्रथम द्वितीय जवनिकान्तर मे रंगमच पर प्रस्तुत होती है। यह आदर्श धर्मपत्नी है, क्योंकि पारिवारिक उत्सवों मे महाराज के साथ रहती है, उन्हे उत्सवो मे आमन्त्रित करती है।[1] उसको देखने से महाराज की आँखो को आनन्द मिलता है, उसके मीठे बोल से कानो मे अमृत-सा घुल जाता है।[2] राजा उसके प्रति भी उतना ही प्रेम रखता है जितना शृङ्गारमञ्जरी के प्रति। वह अपने गुणो के कारण सभी का सम्मान प्राप्त करती है। राजा अपने प्रेम सन्दर्भ मे उससे डरता है। वसन्ततिलका एव विदूषक राजा एव शृङ्गारमञ्जरी के प्रेम सम्बन्धी बाते उससे छिपाते है। वह गुणो की पारखी है। नायिका के प्रति मन मे ईर्ष्या होते हुए भी उसकी रूपराशि की प्रशसा करती है। शृङ्गारमञ्जरी के रस विषयक ज्ञान का उसे भान है, तभी विदूषक एव वसन्तलितका के विवाद मे उसे निर्णायक बनाती है। श्रेष्ठ एव पूज्य व्यक्तियो के प्रति उसके मन मे सम्मान के भाव है। वह शास्त्रज्ञ है, तभी विदूषक ने उससे कहा है कि–"आप एव महाराज हमारे वाद की परीक्षा लेने में पूर्ण समर्थ हैं।"[3] यद्यपि

---

१ महुमासस्स वलक्खा वट्टइ कुसुमाउहस्स अज्ज तिहि।
तेन अ त पूअइउ उववणदेसो करीअदु सणाहो।।
(मधुमासस्य वलक्षा वर्तते कुसुमायुधस्याद्य तिथि।
तेन च तं पूजयितुमुपवनदेशः क्रियता सनाथ.।।)–शृङ्गारमञ्जरी–२/११

२ शृङ्गारमञ्जरी–४/१६

३. शृङ्गारमञ्जरी, डा० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ४६

विदूषक को सदेह है कि रानी वसन्ततिलका का पक्ष लेगी, किन्तु रानी वस्तुत निष्पक्ष विचार की है, जैसाकि महारानी ने स्वगत कहा है कि–"विदूषक मूर्ख है, जो हमारे ऊपर विश्वास नही करता।"[१]

रानी रूपलेखा सूक्ष्म दृष्टि वाली है। वह महाराज एव शृङ्गारमञ्जरी के नेत्रो के पारस्परिक स्फुरण से, उनके अनुराग का पता लगा लेती है एव तुरन्त राजा को मदनपूजा जैसे अन्यकार्य मे व्यवस्त करने को उद्यत होती है। वह बुद्धिमत्ता से अपना अभीष्ट सिद्ध करती है। वसन्ततिलका एव विदूषक के शास्त्रीय वाद-विवाद मे, योग्य मध्यस्थ का प्रबन्ध कर, अपने सूझ-बूझ का परिचय देती है। वह बड़ी कुशलता से वसन्ततिलका एव विदूषक के मिलन मे रोक लगा देती है एव अनत नायिका के साथ इन दोनो को कारागार मे बन्द कर देती है।

महारानी रूपलेखा धार्मिक प्रवृत्ति की है। वह उपवन मे भगवती गौरी की मन्त्र से पूजा करती है।[२] आकाशवाणी द्वारा पतिव्रता धर्म का एहसास कराये जाने पर, उसे सर्वोपरि धर्म मानते हुए, तदनुकूल कार्य मे प्रवृत्त होती है। निरपराध शृङ्गारमञ्जरी, विदूषक एव वसन्ततिलका को मुक्त कर देती है। नायिका एव राजा के प्रति किये गये कार्यों के लिए वह लज्जा का अनुभव करती है एव क्षमा मागती है। वह राजा एव शृङ्गारमञ्जरी के विवाह की न केवल अनुमति देती है, अपितु स्वय दोनों का विवाह करवाती है। इस प्रकार सट्टककार ने रूपलेखा के चरित्र को, एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में सफलतापूर्वक चित्रित किया है।

गौतम–

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक का विदूषक गौतम, नायक राजशेखर का विश्वस्त मित्र एव नर्मसचिव है। यह नाट्यशास्त्र मे वर्णित विदूषक के लक्षणो से युक्त है। यह अपनी बातचीत, हाव-भाव आदि

---

१ शृङ्गारमञ्जरी–पृष्ठ ५०

२ विदूषक :–
'अह मतेहि उवआरेहिं भअवदिं आराहिअ...।
(अथ मन्त्रैरुपचारैर्भगवतीमाराध्य...।।)–शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ६६

से अपने आपको परिहास का पात्र बनाकर, उल्लास में वृद्धि करना है। यह कुलीन ब्राह्मण है।[1] अवस्था में वृद्ध है, जिससे आंखें कमजोर हो चुकी है। सट्टक में प्रथम जवनिकान्तर से लेकर अंत तक उपस्थित रहता है।

विदूषक बुद्धिमान है। दो-तिन दिन गुरु की सेवा करके अपने सहपाठियों की तुलना में अधिक ज्ञान प्राप्त करने का इसका दावा है। यह अपने को सभी शास्त्रों का ज्ञाता बताता है।[2] वह अपने को वृहस्पति के समान श्रेष्ठ पण्डितो की कोटि का मानता है। उसे अपनी बुद्धि पर गर्व है। वह अत्यन्त चतुर है। राजा नायिका को देख सके, इसके लिए चतुरतापूर्वक योजना बनाता है एव उसे क्रियान्वित कर सफल भी होता है। उसके कुशल दौत्य कर्म से तृतीय जवनिकान्तर में नायक एव नायिका की मुलाकात होती है।

विदूषक गौतम एक सच्चा मित्र है। नायक के सुख दुख मे हमेशा उसके साथ रहता है। मित्र होने के कारण नायक सबसे पहले उसे ही अपना स्वप्न बताता है। राजा उसके सामने मानो अपना हृदय खोलकर रख देता है। एक सच्चे मित्र की भाँति वह अपने स्वामी के मन की बात जानना चाहता है, साथ ही अपने मन की बात राजा से कहता है। विदूषक के कारागार मे बद हो जाने

---

१ विदूषक :– '. .महाउलुप्पण्णो बम्हणो ।
(...महाकुलोत्पन्न ब्राह्मण... ।)—शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४५

२. विदूषक :– '...दो तिण्णि व अहाइं सेविअगुरु बारेक्कमेत्तोइआ
विज्जा जेण माए मण्मि णिहिआ सव्वा वि सव्वाहिआ।
पेच्छताण बहुत्तमाण विहिअब्भासो असमत्ताअम
उग्गाहम्मि पवट्ठिदे वि जणिओ तादो वि भग्गुत्तरो।।
(द्वे त्रीणि वा अहानि सेवितगुरु बारैकमात्रोचिता
विद्या येन मया मनसि निहिता सर्वा अपि सर्वाधिका।
प्रेक्षमाणाना बुद्धोत्तमाना विहिताभ्यासः समस्तावमे
उद्ग्राहे प्रवर्तितेऽपि जनितस्तातोऽपि भग्नोत्तरः।।)—शृङ्गारमञ्जरी–२/२३

पर राजा अपने को नि सहाय जानकर अपने भाग्य को कोसने लगता है।[1]

गौतम स्वभाव से स्वाभिमानी एव क्रोधी है। वसन्ततिलका के व्यग्य बाण उसे चुभ जाते है। अपने पाण्डित्य पर आक्षेप से वह अपमान का अनुभव करता है, यही कारण है, कि रानी उसे क्रोध न करने की सलाह देती है तथा जिस प्रकार उसका मान रह सके वैसा करना चाहती है।[2] विदूषक अल्प बुद्धि वाली दासी के झूठे अहकार को सहन नही करता। महाराज एव महारानी के सामने, अपने को दासी के द्वारा अपमानित समझकर, राजा को अविवेकी कहकर उसका साथ छोडना चाहता है।[3]

विदूषक धार्मिक प्रवृत्ति का है। सौन्दर्य का निर्माता ब्रह्मा को मानता है। भाग्य मे उसको विश्वास है। दैवयोग से कार्य होगा ऐसा कहता है। समय परिस्थिति के अनुसार करणीय का उसे भान है। जैसे नायक-नायिका के एकान्त मिलन के समय वह राजा से कहता है, कि-"आप आगे चले। मै अन्धकार के जाल मे जकड़ा हुआ सा यही पर रह रहा हूँ, पुन. तुम मुझे मत ढूँढ़ना।"[4] वह सहज बुद्धि का है। वह कहता है कि-"यदि तुम्हारा सुन्दरी से प्रेम है तो महारानी का क्या नुकसान है।" वह इतना भोला है कि सौत के दु ख का एहसास नही कर पाता, अतः राजा को बताना पड़ता है।

प्रस्तुत सट्टक मे विदूषक के चरित्र का अच्छा परिपाक है। विदूषक की सूझ-बूझ से कथा मे गतिशीलता आयी है। विदूषक मे कथावस्तु के सचालन की क्षमता है।

---

१ राजा- .जस्स पुरो सुहदुक्ख वीसभा आसि सभरिज्जन।
सो वि वअस्सो बदित्तण गओ अच्छउ किमण्ण।।
(यस्य पुर सुखदु.ख विस्रम्भादासीत् सस्मर्यमाणम्।
सोऽपि वयस्यः बन्दित्व गत आस्ता किमन्यद्।।)-शृङ्गारमञ्जरी-४/३

२. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४७

३ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४५

४ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ८२

वसन्ततिलका–

वसन्ततिलका महारानी की परिचारिका एवं शृङ्गारमञ्जरी की अन्तरंग सहेली है। वह सदैव सेवाकार्य में सन्नद्ध रहती है, तभी राजा से उसने कहा कि–'सेवक के लिए महाराज के नयनपथ में आते रहने के अलावा और क्या प्रयोजन हो सकता है।'[1] स्वामिभक्ति में वह किसी प्रकार की कमी नही आने देती। नायिका के प्रति उसका प्रेम अटूट है। वह नायिका के मरने से पहले खुद मरने के लिए तैयार है।[2] नायक एवं नायिका, इन दोनों के अनुराग बढ़ाने एवं मिलाने के लिए वह सदा तत्पर रहती है।

वसन्ततिलका कार्यो का सम्पादन कुशलतापूर्वक करती है। एक ओर वह महारानी की परिचारिका है, तो दूसरी ओर शृङ्गारमञ्जरी की अंतरंग सहेली, किन्तु वह अपने दोनो ही कर्तव्यों का चतुरतापूर्वक निर्वाह करती है। वह अत्यन्त चतुर है। राजा द्वारा किसी प्रियजन के विरह में पीडित अवस्था का वर्णन करने पर वह कहती है कि–"अपनी हालत वैसी न होने की वजह से, जब किसी को दूसरो के मनोभावो का प्रत्यक्ष नही होता तो, तब फिर आपको दूसरे की विरहावस्था कैसे ज्ञात हुई।"[3] एक ही बार कही बात को याद रखने की उसमे बड़ी क्षमता है, जैसाकि राजा ने खुद उसके विषय मे आश्चर्यपूर्वक कहा है।[4] वह व्यावहारिक सहजबुद्धि की धनी है, माधविका को नायिका के स्थान पर बैठाकर नायिका को कुशलतापूर्वक राजा के पास ले जाती है। कारागार में बदी होकर भी, नायिका की रक्षा का सन्देश राजा के पास भेजती है। वह समझदार है, नायक-नायिका को एकान्त देने के उद्देश्य से लतामण्डप के बाहर ही रह जाती है, जिस पर राजा कहता

---

१ वसन्ततिलका–देअस्स णअणमग्गाणुहवादो किं अण्णं सेवअजस्स?

(देवस्य नयनमार्गानुभवात् किमन्यत् सेवकजनस्य?)–शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १६

२ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ६८

३. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ २१

४. राजा–(स्वागतम्)–अहो, एक्कवारुच्चारिअग्गहणसामत्थं।

(अहो! एकवारोच्चारितग्रहणसामर्थ्यम्।)–शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ २२

है कि–"समझदार से कुछ भी कहना नहीं पड़ता।"[1]

वसन्ततिलका रसशास्त्र की मर्मज्ञ है। वह विदूषक के सारे प्रश्नों का यथोचित उत्तर देती है एव अतत. विदूषक को निरुत्तर कर विजयी होती है। उसका दृष्टिकोण आशावादी है। वह अपने आपको नगण्य नही समझती। उसे विश्वास है कि वह नायक-नायिका के मिलनरूपी कार्य को सम्पादित कर सकती है।[2] वह व्यग्य बाण छोडने मे सिद्धहस्त है. जो विदूषक के स्वाभिमान को चुभने लगता है।[3] उसके हृदय मे दया एव गुणो के प्रति आदर है. तभी वह नायिका को राजा से मिलाने का प्रयास करती है। वह दूती का कार्य बखूबी सम्पादित करती है एव शृङ्गारमञ्जरी द्वारा रचित पद्य को राजा के पास पहुँचाती है।

प्रस्तुत सट्टक मे वसन्ततिलका की अपनी विशेषताएँ है, वह कथानक को आगे बढ़ाने मे पर्याप्त सहायक हुई है।

चारुभूति–

चारुभूति राजा राजशेखर का मन्त्री है। यद्यपि चतुर्थ जवनिकान्तर मे रङ्गमञ्च पर इसका पदार्पण होता है, किन्तु लक्ष्य प्राप्ति मे इसका महत्वपूर्ण योगदान है। इसी के द्वारा शृङ्गारमजरी राजशेखर के लिए लाकर राजमहल मे रखी गयी है, जिससे राजा से इसका विवाह हो सके एव राजा चक्रवर्ती राजा बन सके। इस प्रकार उसने अपनी बुद्धिमत्ता, स्वामिभक्ति एव आदर्श मन्त्रीत्व को प्रमाणित किया है। इसके द्वारा योग्यतापूर्वक राज्य सचालन करने के ही परिणाम स्वरूप राजा निश्चिन्त होकर विलासमय जीवन व्यतीत कर रहा है। इस प्रकार चारुभूति का एक आदर्श मन्त्री के रूप मे सफलतापूर्वक चित्रण किया गया है।

---

१ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ८५

२ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ६८

३. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४४

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों की पात्र व्यवस्था का तुलनात्मक परिशीलन

कर्पूरमञ्जरी एव शृङ्गारमञ्जरी दोनो की सट्टकों मे कथानक के अनुरूप पात्रो का गुम्फन हुआ है। पात्रो का चरित्र सट्टक के लक्षणो के सर्वथा अनुरूप चित्रित किया गया है। कुछ अपवादो को छोड़कर दोनों ही सट्टको मे पात्रो की व्यवस्था एक जैसी है। नायक, ज्येष्ठा नायिका, कनिष्ठा नायिका, विदूषक एव नायिका की सहेली के रूप मे देवी की परिचारिका दोनो ही सट्टको की प्रमुख पात्र है। कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे फलप्राप्ति हेतु जो कार्य भैरवानन्द द्वारा प्रत्यक्ष रूप मे किया गया है, लगभग वही कार्य शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे चारुभूति मन्त्री द्वारा अप्रत्यक्ष रूप मे किया गया है। दोनो ही सट्टको मे कुछ गौण पात्रो की व्यवस्था है, जो कथा के विकास एव मोहक प्रस्तुति मे महत्वपूर्ण भूमिकाये करते है। दोनो सट्टको के समरूप पात्रो की तुलनात्मक समीक्षा प्रसङ्गोपात्त है।

नायक–

कर्पूरमञ्जरी सट्टक का नायक चन्द्रपाल एव शृङ्गारमञ्जरी सट्टक का नायक राजशेखर, दोनो ही उस परम्परा की उपज है, जिसके प्रारम्भिक रूप रत्नावली जैसी नाटिकाओ मे उपलब्ध होता है। लगभग एक ही तरह का कार्य-व्यवहार, रूप-रग, गुण इत्यादि के दर्शन दोनो सट्टको के नायकोमे होते है। दोनो ही नवयौवना नायिका पर मुग्ध है। अपने प्रेम को लेकर दोनो ही ज्येष्ठा नायिका से भयभीत है। विदूषक दोनो का ही प्रिय मित्र एव नर्म सचिव है। चन्द्रपाल के पास नायिका प्राप्ति के लिए भैरवानन्द के रूप में तन्त्र-मन्त्र की शक्तियाँ है, जो प्रारम्भ से ही उसका कार्य सम्पादित कर रही है। किन्तु राजशेखर के पास ऐसी कोई शक्ति नही है, जिससे वह दैव की अपेक्षा कर्तव्य पर अधिक विश्वास करता है। वैसे दोनों के ही कार्यों का सम्पादन दैवीय शक्तियों के सहयोग से ही हो पाता है, एक के कार्य सम्पादन में भैरवानन्द की दैवीय शक्ति काम करती है, तो दूसरे के

कार्य सम्पादन मे मणिमाली पार्षद द्वारा की गयी भविष्यवाणी काम आती है। दोनो ही सट्टको मे नायक के चरित्र को बहुविध उकेरने का प्रयास सराहनीय है।

नायिका–

कर्पूरमञ्जरी सट्टक की नायिका कर्पूरमञ्जरी एव शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की नायिका शृङ्गारमञ्जरी, दोनो ही अनुपम सुन्दरी के रूप मे चित्रित है, जिनके रूप माधुरी पर उनके नायक मोहित है। एक योगबल से राजा के सामने उपस्थित की जाती है, तो दूसरी स्वप्न मे अपने नायक को दिखती है, जिसे वास्तव मे नायक का मन्त्री राजमहल मे रखने की व्यवस्था कर चुका है। दोनो को ही अपने सगे-सम्बन्धियो या अपने अतीत की चिन्ता नही है। दोनो सट्टको मे नायिका के लिए प्रयुक्त अथवा नायिकाओ द्वारा प्रयुक्त शब्दराशियो मे ही अन्तर है, किन्तु उनके पीछे छिपा उनका चरित्र एकरूपता लिए हुए है। नायिकाओ के चित्रण मे रत्नावली सदृश प्रारम्भिक नाटिकाओ के नायिकाओ की छाप दिखाई पड़ती है।

ज्येष्ठा-नायिका–

दोनो ही सट्टको मे ज्येष्ठा नायिकाओ विभ्रमलेखा एव रूपलेखा का समावेश एक ही जैसे कार्य के सम्पादन हेतु किया गया है। दोनो से ही उनके नायक कनिष्ठा नायिका के प्रति अपने प्रेम को लेकर डरते है। दोनो ने ही कनिष्ठा नायिका एव राजा के प्रेम की बाते जानकर नायिका को बन्दी गृह मे डाल दिया है।

इन दोनो के चरित्रों में सूक्ष्म अन्तर भी परिलक्षित होता है। विभ्रमलेखा, घनसारमञ्जरी से महाराज का विवाह दक्षिणास्वरूप और वह भी उनके चक्रवर्तित्व के लोभ में करवाती है, साथ ही इसका उसे भान नही है कि घनसारमञ्जरी ही कर्पूरमञ्जरी है, जिसे वह बन्दीगृह में बन्द कर चुकी है। कर्पूरमञ्जरी से महाराज की शादी के लिए कदाचित् वह कभी भी तैयार नही होती, इसीलिए भैरवानन्द द्वारा, कर्पूरमञ्जरी को घनसारमञ्जरी के छद्म रूप मे प्रस्तुत करना पड़ा, अन्यथा

वह राजा के विवाह हेतु कर्पूरमञ्जरी के लिए भी दक्षिणा माग सकता था। दूसरी तरफ शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की महारानी रूपलेखा का चरित्राकन, एक आदर्श भारतीय नारी के रूप मे हुआ है। शृङ्गारमञ्जरी से महाराज की शादी करवाने का निश्चय करके वह कोई प्रतिदान नही दे रही है, और न ही उसे महाराज के चक्रवर्तित्व का लोभ है। अपितु वह इसे अपना पतिव्रता धर्म मानकर स्वीकृति प्रदान करती है। यह तो उसे बाद मे पता चलता है कि इस विवाह सम्बन्ध से महाराज चक्रवर्तित्व को प्राप्त करेंगे। विभ्रमलेखा की अपेक्षा रूपलेखा अधिक विनम्र एव शिष्ट जान पडती है। शृङ्गारमञ्जरी सट्टक के अतिम चरण मे, जहाँ रूपलेखा नायिका के प्रति अपने व्यवहार के लिए लज्जित है एव उससे क्षमा मागती है, वहीं कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे विभ्रमलेखा ने ऐसा कुछ भी नही किया है, एव अपने परिचरो के साथ सबसे पहले मच से चली गयी है। इस प्रकार रूपलेखा का चरित्र अधिक प्रभावपूर्ण है।

विदूषक—

कर्पूरमञ्जरी सट्टक के विदूषक कपिञ्जल एव शृङ्गारमञ्जरी सट्टक के विदूषक गौतम दोनो के चरित्र मे पूर्णतः एकरूपता है। दोनों ही नायक के विश्वस्त मित्र, विनोदी एव बुद्धिमान है। दोनो ने ही बहुविध अपने कार्यों का सम्पादन करते हुए, अपने वचनो एव भावभगिमा द्वारा हास्य पैदा कर, उल्लास मे वृद्धि की है। वे दोनो केवल हास्य के जनक ही नही अपितु कथानक को गति प्रदान करने मे सहायक है। दोनों ही विदूषक अपने मूर्खतापूर्ण कार्यों से पाठकों का मनोरजन ही नही करते, अपितु कतिपय स्थलो पर बुद्धिमत्ता का परिचय भी देते है। दोनो का ही चरित्राकन प्रशसनीय है।

प्रमुख सहायक पात्र—

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में भैरवानन्द की जो भूमिका है, लगभग वही भूमिका शृङ्गारमञ्जरी सट्टक

मे अमात्य चारुभूति की है। दोनो को ही यह विदित है कि—नायिका से शादी के उपरान्त राजा चक्रवर्तित्व को प्राप्त करेगा। अत दोनो ने ही नायिकाओं को राजा के महल तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, किन्तु दोनो की योजनाओं मे पर्याप्त अन्तर है। नायक-नायिका के विवाह रूपी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु, भैरवानन्द जहाँ तन्त्र-मन्त्र का सहारा लेते हुए प्रत्यक्ष रूप मे कार्य सम्पादन करता है, वही चारुभूति की योजना कर्म पर आधारित एव गुप्त है। यही कारण है कि जहाँ भैरवानन्द प्रथम जवनिकान्तर मे ही रगमञ्च पर उपस्थित हो जाता है एव अपनी सामर्थ्य का उद्घाटन करता है, वही चारुभूति अतिम जवनिकान्तर के अतिम चरण मे उपस्थित होता है, एव वहाँ यह प्रकट हो पाता है, कि—यह सब कार्य उसकी गुप्त योजना का परिणाम है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे विचक्षणा एव शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे वसन्ततिलका प्रमुख सहयोगी स्त्री पात्र है। उन दोनो ने ही महारानी की परिचारिका का कार्य सम्पादन करते हुए, नायिका की सखी की भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है। दोनो ही नायक एव नायिका के मिलन के लिए प्रयासरत रही है। यदि दोनो के कार्यो का मूल्याकन करे तो वसन्ततिलका विचक्षणा से बढ़कर प्रतीत होती है। वह अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करती है। वह पूरे कथानक मे रची बसी है। वसन्ततिलका की अपनी विशेषताये है, विचक्षणा उस स्तर तक नही पहुँच पायी है।

दोनो ही सट्टको मे अन्य अनेक पात्रो का आवश्यकतानुसार समावेश किया गया है—जो यद्यपि अल्प समय के लिए रगमञ्च पर उपस्थित होते है, किन्तु इनका महत्त्व कम नही है। कथा के स्वाभाविक प्रवाह को बनाये रखने मे इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अनावश्यक पात्रो के भार का दोनो मे ही अभाव है। नि.सन्देह दोनो नाट्यकारो की पात्र सयोजना अत्यन्त मार्मिक, कथावस्तु के अनुरूप तथा श्लाघनीय है। इतना सब होने के बावजूद यह कहा जा सकता है कि—शृङ्गारमञ्जरी मे पात्रों के चरित्रांकन पर जितना अधिक बल है, उतना कर्पूरमञ्जरी में नही दिखता।

●●●

पञ्चम-अध्याय

रस-विवेचन

नाट्य में रस की स्थिति

सट्टक में रस योजना

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में रस परिपाक

शृङ्गार रस

हास्य रस

अद्भुत रस

भाव

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में रस परिपाक

शृङ्गार रस

हास्य रस

अद्भुत रस

भाव

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों में रस परिपाक का तुलनात्मक परिशीलन

पञ्चम-अध्याय

रस-विवेचन

नाट्य में रस की स्थिति

रस के सम्बन्ध मे आचार्य भरत ने कहा है–'विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्ति ।' अर्थात् काव्य मे प्रयुक्त अथवा नाटकादि अभिनय के द्वारा प्रदर्शित विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावो के द्वारा, श्रोताओ अथवा दर्शको के हृदय मे परिवर्तनशील रति आदि स्थायी-भाव आस्वाद्य होता है, तो वही रस कहलाता है।

वस्तु, नेता एव रस तीनो ही 'रूपक' के 'भेदक-तत्व' है। यद्यपि रूपक मे इनका स्थान समान है, तथापि रूपक का प्राणतत्व होने के कारण वस्तु एव नेता की अपेक्षा रस का अधिक महत्त्व है। वस्तुत: रसोद्रेक करना ही नाट्य का लक्ष्य है। भरत से लेकर पश्चाद्वर्ती प्राय: सभी आचार्यो ने रस के महत्त्व को स्वीकार किया है। भरतमुनि के अनुसार–''न हि रसादृते कश्चित् अर्थ प्रवर्तते।'' आचार्य क्षेमेन्द्र रससिद्धि की स्थिरता को ही काव्य का प्राणतत्त्व बताते है।[१] आचार्य आनन्दवर्धन रस को ही काव्य मे सर्वाधिक प्रामुख्य प्रदान करते है–

मुख्या व्यापारविषया: सुकवीनां रसादय:।
तेषां निबन्धने भाव्य तै: सदैवाप्रमादिभि:।।
नीरसस्तु प्रबन्धो य: सोऽपशब्दो महान् कवे:।
स तेनाकविरेव स्यादन्येनास्मृतलक्षण:।।[२]

श्रव्य-काव्य की अपेक्षा दृश्य-काव्य में रस को अपेक्षाकृत अधिक सम्मानजनक स्थान प्राप्त है।

१. काव्यानुशासन, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, पृष्ठ ३५२
२. ध्वन्यालोक, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृष्ठ २१७

सर्वप्रथम नाट्य के प्रसङ्ग में ही रस की उद्भावना की गयी थी। समयमातृकाचार्य ने विभिन्न रसों की वाचिक रस, नेपथ्य रस एव स्वाभाविक रस के रूप में उपस्थिति स्वीकार की है। इनमें 'वाचिक-रस' श्रव्य काव्य मे, 'नेपथ्य-रस' चित्रादि में एव 'स्वाभाविक रस' मूकाभिनय आदि में वर्णित होता है।[1] जब कि रूपक मे रस इन सभी रूपों में समन्वित रूप में प्राप्त होता है। रूपक में निहित वस्तु के प्रमुख स्रोत–पुराण, इतिहास आदि ग्रन्थ होते है जिनमें वृत्त अधिक विस्तृत रूप में होता है। रूपककार इस विस्तृत इतिवृत्त में से सक्षिप्त वृत्त लेकर, उसमें नीरस अश का परित्याग कर अथवा अर्थोपक्षेपकों के माध्यम से उसकी सूचना देकर केवल सरस वृत्त को ही अकों में निबद्ध करता है।[2]

रूपक मे निहित वस्तु स्वरूप को, अभिनेता अपने सात्त्विक, वाचिक आदि अभिनयों से, अनुकार्य का अनुकरण करते हुए प्रस्तुत करता है। यदि यह अनुकरण रसशून्य हो तो पूर्णतया उपहासपूर्ण हो जायेगा। इस प्रकार रूपककार पर रस निर्वाह का बहुत बड़ा दायित्व रहता है। आचार्य आनन्दवर्धन के शब्दो मे–'अभिनेयार्थे तु सर्वथा रसबन्धेऽभिनिवेश. कार्य'।'[3]

नाट्य मे पुरुषार्थ चतुष्टय रूप फल की प्राप्ति हेतु शृङ्गार आदि रस अलग-अलग रूप में उपयोगी होते है। काम स्वरूप पुरुषार्थ की प्राप्ति नायक को नायिका के मिलन के रूप मे होती है। इसके प्रणय प्रसङ्ग मे ही शृङ्गार रस की पुष्टि होती है। अत: आचार्य शारदातनय शृङ्गार रस को कामस्वरूप पुरुषार्थ हेतु उपयोगी स्वीकार करते है।[4] हास्य रस, शृङ्गार रस का अनुगामी है। यह काम प्रधान होता है, अत. यह काम स्वरूप पुरुषार्थ हेतु, शृङ्गार रस की भाँति उपयोगी रस है।[5] जहाँ शृङ्गार एव हास्य रसों मे आलम्बन एव आश्रय को परस्पर भाव की अपेक्षा रहती है, वही करुण रस में आलम्बन का अभाव रहता है। अत. आलम्बन एव आश्रय को पारस्परिक भाव की अपेक्षा नही

१ ना०शा०, प्रथम भाग, भूमिका, साहित्य अकादमी समिति, पृष्ठ ५२

२ दशरूपक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृष्ठ १६६

३. ध्वन्यालोक, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृष्ठ १८५

४. भाव प्रकाशन, गायकवाड़ ओ०सं०सी०, बड़ौदा, पृष्ठ ७७

५. ना०शा०–प्रथम भाग, का०हि०वि०वि०, वाराणसी, पृष्ठ ६१३

रहती। अतएव आचार्य अभिनवगुप्त ने करुण रस को निरपेक्ष भाव वाला रस माना है।[1]

'अर्थ' स्वरूप पुरुषार्थ की प्राप्ति शत्रु-दलन द्वारा ही सम्भव है, जो नायक की वीरता द्वारा सम्पादित होता है। अत. वीर रस को अर्थोपयोगी बनाया गया है।[2] रौद्र रस भी कहीं-कहीं अर्थोपयोगी होता है। आचार्य शारदातनय के अनुसार–"यदि 'वीर' एवं 'रौद्र रस' किसी की रक्षा हेतु हो तो, वह रस धर्मोपयोगी होता है।[3] अभिनवगुप्त भी 'रौद्र रस' को अर्थ प्रधान स्वीकार करते है।[4]

'धर्म' स्वरूप पुरुषार्थ, नायक को सज्जनों की रक्षा, प्रतिनायक के दुष्ट-कार्यों के विरोध एवं उनके विनाश द्वारा प्राप्त होता है। इस प्रकार वीर रस का परिपाक धर्मपरक कार्यों हेतु ही होता है। कही पर इसी ब्याज से, अर्थ स्वरूप पुरुषार्थ की प्राप्ति भी हो जाती है। वीर रस का वीरत्व भयभीतों को अभय प्रदान करता है। अत भयानक रस भी वीर रस का आश्रित होने के कारण धर्म पुरुषार्थ हेतु उपयोगी है।

'मोक्ष' स्वरूप पुरुषार्थ मे, शान्त एव वीभत्स रस उपयोगी होते है। परन्तु मोक्ष स्वरूप पुरुषार्थ ब्राह्मण मे ही सम्भव है, अत. नाट्य मे इसका प्रधानरूपेण वर्णन असम्भव है।[5] इस प्रकार विभिन्न रस किसी-न-किसी पुरुषार्थ की सिद्धि करते है।

स्पष्ट है, कि रस का स्थान रूपक मे अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतएव रूपक मे रसबोध हेतु हर सभव प्रयास किया जाना चाहिए। आचार्य आनन्दवर्धन ने रसाभिव्यक्ति हेतु पाँच बातो का ध्यान रखना आवश्यक बताया है–

(१) विभाव, स्थायी-भाव, अनुभाव और सञ्चारीभाव के औचित्य से सुन्दर ऐतिहासिक अथवा कल्पित कथा शरीर का निर्माण।

---

१ ना०शा०–प्रथम भाग, का०हि०वि०वि०, वाराणसी, पृष्ठ ६१३

२. ना०शा०–प्रथम भाग, का०हि०वि०वि०, वाराणसी, पृष्ठ ६१३

३ भाव-प्रकाशन, गायकवाड़ ओ०स०सी०, बड़ौदा, पृष्ठ २०८

४. ना०शा०–प्रथम भाग, का०हि०वि०वि०, वाराणसी, पृष्ठ ६१३

५. ना०शा०–द्वितीय भाग, का०हि०वि०वि०, वाराणसी, पृष्ठ १५०८

(२) उस कथा का रसानुकूल संस्करण।

(३) रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से सन्धि और सन्ध्यङ्गों की रचना।

(४) यथा स्थान रस के उद्दीपन एव प्रशमन की योजना और प्रधान रस का आदि से अन्त तक अनुसधान।

(५) अलङ्कारों का रसोचित सन्निवेश।[१]

तात्पर्य यह कि कथा शरीर के निर्माण में, स्थायी-भाव, विभाव, अनुभाव तथा सचारीभाव के औचित्य का सतत् ध्यान रखना चाहिए। नायकादि की प्रकृति के अनुकूल ही उत्साहादि भावों का अभिव्यञ्जन होना चाहिए। यथा उत्तम प्रकृति के राजा का उत्तम प्रकृति की नायिका के साथ ग्राम्य-सभोग वर्णन नितान्त अनुचित होता है, क्योंकि यह माता-पिता के सभोग वर्णन के समान नितान्त असभ्य माना गया है।[२] कहने का सार यह है कि रसभग का सबसे बड़ा कारण अनौचित्य है। इस सम्बन्ध में, भामह के औचित्य विषयक मत को, आनन्दवर्धन ने स्वीकार करते हुए कहा है–

'औचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम्।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा।।'[३]

इतिवृत्त चयन के सम्बन्ध मे भी औचित्य का सदा ध्यान रखना चाहिए। विभावादि के अनुकूल चुना गया इतिवृत्त ही रस का व्यञ्जक बनता है। नाटकीय सन्धियो एव सन्ध्यङ्गो की योजना भी रस की दृष्टि से ही करनी चाहिए। रस का यथाअवसर उद्दीपन एव प्रशमन भी होना चाहिए और आरम्भ किये हुए अगीरस को मन्द पड़ता हुआ देखकर उसका पुनः-पुनः अनुसधान करना चाहिए। अग रसो की योजना इस प्रकार करनी चाहिए कि वे अगी रस के निर्वाह मे बाधक न हो।[४] अलङ्कारो के यथेच्छ प्रयोग की पूर्ण शक्ति होने पर भी रस के अनुकूल ही अलकारो की योजना करनी चाहिए।

---

१. ध्वन्यालोक–३/१०-१४
२. बृहत्रयी रस विवेचन, पृष्ठ ३७३
३ ध्वन्यालोक, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृष्ठ १६०
४. ध्वन्यालोक–३/२१-२२

रसाभिव्यक्ति के इच्छुक कवि के लिए काव्य में रस विरोधी तत्वों का परिहार भी आवश्यक है। आनन्दवर्धन ने रस-भग के पांच हेतु बताये है–

(१) विरोधी रस के विभावादि का उपादान करना।

(२) रस से सम्बद्ध होने पर भी अन्य वस्तु का अधिक विस्तार से वर्णन करना।

(३) असमय में रस को समाप्त कर देना अथवा अनवसर में उसका प्रकाशन करना।

(४) रस का पूर्ण परिपोष हो जाने पर भी, बार-बार उसका उद्दीपन करना।

(५) वृत्ति अर्थात् व्यवहार का अनौचित्य।[१]

प्रस्तुत रस के विरोधी विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारी-भाव का ग्रहण करना, रस-भग का हेतु होता है। प्रस्तुत रस से यथाकथञ्चित सम्बद्ध भी वस्त्वनन्तर का विस्तार के साथ वर्णन करना भी रस-भग का हेतु बनता है। जैसे विप्रलम्भ शृङ्गार के प्रसग मे पर्वतादि का यमकादि अलकारो से युक्त सविस्तार वर्णन करना। अनवसर मे रस का विराम भी रसभग का कारण बन जाता है एव अनवसर मे रस का प्रकाशन वैरस्य लाता है। जैसे सग्राम छिड़ जाने पर शृङ्गार रस का प्रकाशन करना। परिपुष्ट हुए रस का पुन. पुन उद्दीपन भी बार-बार के स्पर्श से मुरझाये हुए पुष्प के समान रसापकर्ष का कारण बन जाता है। व्यवहार का अनौचित्य भी रसभङ्ग का कारण है, जैसे नायिका का नायक के प्रति अपने भ्रूभग आदि के द्वारा अभिलाष व्यक्त करना उचित है, किन्तु ऐसा न करके, यदि वह स्वयं संभोग के अभिलाष को कहने लगे तो यह व्यवहार का अनौचित्य होगा। इसी प्रकार धीरोदात्त नायक के कातर-पुरुषोचित अधैर्य प्रदर्शन भी वृत्ति का अनौचित्य होगा।

सट्टक में रस योजना

काव्य जहाँ श्रवण मार्ग से हृदय को आकृष्ट करता है, वही नाट्य नेत्र मार्ग से हृदय को चमत्कृत कर अपना प्रभाव जमाता है। किसी वस्तु को देखने का आनन्द सुनने की अपेक्षा कही अधिक होता

---

१ ध्वन्यालोक, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृष्ठ २१३

ही है। वेशभूषा, नेपथ्य, साज-सज्जा आदि उचित संविधानों द्वारा नाट्य में रसानुभूति के लिए वातावरण स्वयं उपस्थित हो जाता है। इसमें कल्पना की आवश्यकता नहीं रहती, यही कारण है कि साधारण व्यक्तियों के लिए भी काव्य की अपेक्षा नाट्य का आकर्षण अधिक होता है और उसमें भी, रूपकों की अपेक्षा उपरूपकों का आकर्षण विशेष प्रभावशाली है, क्योंकि यह लोकजीवन के काफी निकट होता है। रूपकों में जहाँ वस्तु, नेता, रस आदि तत्वों की व्यवस्था शास्त्रीय मान्यताओं में बंधी होती है, इस कारण उसकी रसनीयता में कभी-कभी रुकावट या अवरोध उत्पन्न हो जाता है। वहीं उपरूपको मे स्वच्छन्दता होती है। यहाँ लोकाभिरुचि पर विशेष ध्यान दिया जाता है, यही कारण है कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों, वर्गो के लोगों की प्रकृति, अभिरुचि, परम्पराओं आदि के अनुसार लोक-नाट्य के अनेक रूप विकसित हुए एव होते रहे है। यह प्रवृत्ति आज भी लोकजीवन के नाटक, नौटकी, रासलीला, रामलीला, खेल-तमाशो, पुतलिका नृत्य आदि रूपो मे दिखाई पड़ती है। उपरूपको मे चित्रित समाज, विषय-वस्तु, भाषा आदि लोकजीवन से इतना अधिक साम्य रखते है, जिससे दर्शक वर्णित विषय से तादात्म्य स्थापित कर लेता है । इसके दर्शक को ऐसा लगता है कि यह बिल्कुल हमारी या मेरे अपनो की ही बात दिखलाई पड़ रही है। परिणामत. रसानुभूति मे साधारणीकरण की प्रक्रिया निर्विघ्न, शीघ्र एव पूर्ण होती है।

सट्टक मे रस का जहाँ तक प्रश्न है, इसमे भी अन्य रूपको की भाँति लोकाभिरुचि का ध्यान रखते हुए उचित परिवेश, दृश्य विधान एव भाषा का आश्रय लिया जाता है। यद्यपि इसमे लोकजीवन का चित्रण न होकर राजा के अन्तःपुर के शृङ्गारिक परिवेश को प्रस्तुत किया जाता है। निश्चय ही वह सामान्य व्यक्ति के लिए अधिक आकर्षक विषय रहा होगा। मध्यकाल मे जब राजपरिवार एव जनसामान्य के बीच काफी दूरी थी, वैसे समय में, राजपरिवार का परिवेश कैसा है? वहाँ लोगों की दिनचर्या क्या होती है? वहाँ किस प्रकार की घटनायें घटती रहती हैं? इत्यादि के प्रति लोकसामान्य का आकर्षित होना स्वाभाविक है। सट्टक का जन सामान्य की भाषा प्राकृत में निबद्ध

होना रस की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यही जनसामान्य के लिए सट्टक को पूर्णत हृदयगम कराने में प्रमुख सहायक होता है।

उपलब्ध सट्टकों की विशेषताओं को देखते हुए नाट्य लक्षणकारों ने सट्टक के रस सम्बन्धी मान्यताओं को सुनिश्चित कर दिया है। सट्टक नाटिका की भाँति मुख्यत नायक एव नायिका के प्रणय वर्णन से सम्बद्ध होता है, अत सट्टक के अन्तर्गत अगीरस के रूप में शृङ्गार रस के वर्णन का विधान है। सट्टक में कनिष्ठा नायिका के अतिरिक्त ज्येष्ठा नायिका का वर्णन होता है। नायक धीर-ललित होता है, अत. कुपित-स्त्री-प्रसादन हेतु अप्रधान रूप में शृङ्गार रस के सहायक रूप में हास्य भी वर्णित होता है। नायक नृप होता है, अतएव शौर्य आदि वीरोचित गुणों से उसका सम्बद्ध होना स्वाभाविक है। साम्राज्य लाभ आदि के व्याज से नायक को अर्थस्वरूप पुरुषार्थ की प्राप्ति भी होती है, अत सट्टक में अप्रधान रूप से वीर एव रौद्र रस का भी वर्णन हो सकता है। वैसे नाट्यलक्षणरत्नकोशकार सागरनन्दी ने सट्टक में रौद्र, वीर, भयानक एव वीभत्स रस को अस्वीकार किया है।[१] सट्टक में कही-कही माया, इन्द्रजाल आदि द्वारा असद्वस्तु स्थापन आदि के माध्यम से अद्भुत रस का भी समावेश होता है। आचार्य विश्वनाथ सट्टक मे अद्भुत रस की योजना को आवश्यक मानते है।[२]

रस का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करने के उपरान्त, क्रमश विवेच्य कृतियों में रसो का प्रायोगिक स्वरूप अवलोकनीय है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में रस परिपाक

कर्पूरमञ्जरीकार राजशेखर रसवादी आचार्य है। इन्होंने स्पष्टतः कहा है, कि–रस काव्य की आत्मा है।[३] अतएव वह अपनी कृति को आत्म रूप रस से सजीव किये बिना कैसे रह सकते है।

---

१ नाट्यलक्षणरत्नकोश, चौखम्बा सस्कृत सीरीज, वाराणसी

२ सट्टक ....प्रचुरश्चाद्भुतोरसः। सा०द०–६/२७६

३ . रस आत्मा, ...। काव्यमीमासा, तृतीय अध्याय, (प० केदारनाथ शर्मा सारस्वत), पृष्ठ १५

कर्पूरमञ्जरी मे कवि ने रस के परिपाक पर विशेष ध्यान दिया है। इसमे शृङ्गार, हास्य एव अद्भुत रसो की अभिव्यञ्जना प्राप्त होती है, जिनका विवेचन क्रमश प्रस्तुत है।

शृङ्गार रस–

सट्टक के लक्षणानुसार कर्पूरमञ्जरी का अगी रस शृङ्गार है। यद्यपि अन्य रसो की छटा भी यत्र-तत्र दृष्टिगत होती है, किन्तु चन्द्रपाल एव कर्पूरमञ्जरी के माध्यम से इसमे मुख्यत शृङ्गार रस का ही सन्निबन्धन हुआ है। शृङ्गार रस के उद्रेक के लिए सट्टक के प्रारम्भ मे ही काम एव रति की सूरत क्रीड़ाओ को नमस्कार अर्पित किया गया है। यहाँ वस्तुत काम एव रति के ब्याज मे चन्द्रपाल एव कर्पूरमञ्जरी के प्रेम को ध्वनित कराना ही कवि का कथ्य है।

नायक-नायिका के परस्पर आकर्षण के प्रसिद्ध हेतुओ–श्रवण, चित्र, स्वप्न एव प्रत्यक्ष दर्शन मे मे प्रस्तुत सट्टक मे, जिस किसी रूप मे चारो विद्यमान है। विदूषक द्वारा अपूर्व स्त्री रत्न के विषय मे सुनकर नायक को उसके प्रति स्पृहा होती है, अत भैरवानन्द से उसे उपस्थित करने का आग्रह करता है। नायिका का प्रत्यक्ष होने पर उसके रूप माधुर्य पर मोहित हो जाता है। उसका वियोग होने पर वह चित्रफलक पर नित्य उसका चित्र बनाता है, जो कि–द्वितीय जवनिकान्तर मे प्रतिहारी के कथन से ध्वनित हो रहा है। वियोग की दशा में स्वप्न मे नायिका को वह देखता है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे शृङ्गार रस के सभोग एव विप्रलम्भ दोनो ही भेदो को मार्मिक ढग से अभिव्यञ्जित किया गया है। इनमे विप्रलम्भ शृङ्गार की व्यञ्जना अपेक्षाकृत अधिक हुई है।

संभोग शृङ्गार–

कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे सभोग शृङ्गार की अभिव्यञ्जना के अनेक सुन्दर स्थल कबि ने सन्निवेशित किये है। कुछ उदाहरण अवलोकनीय हैं।

(क) प्रथम जवनिकान्तर में कर्पूरमञ्जरी के रूप माधुर्य पर मोहित नायक का कथन है, कि– ....एदाए–

तहा रमणवित्थरंगं जह ण ठाइ काञ्चीलआ

तहा अ थणतुंगिमा जह ण एह णाहिं मुह।

तहा णअणवह्रिमा जह ण किंपि कण्णुप्पलं

तहा अ मुहमुज्जलं दुसमिणो जहा पुण्णिमा।।[१]

अर्थात् इस नायिका की जघायें इतनी चौड़ी है कि करधनी उन पर पर्याप्त ही नहीं होती, स्तन इतने ऊँचे है कि मुख नाभि तक आ ही नहीं सकता, आँखें इतनी बड़ी है कि कानों में कर्णोत्पल की आवश्यकता ही नही प्रतीत होती और मुख तो इस तरह कान्तिमान है, जैसे कि पूर्णमासी रात्रि में दो चन्द्रमा निकल आये हो।

यहाँ नायिका के प्रति नायक का अनुराग दिखलाया गया है। नायिका आलम्बन विभाव है। नायक आश्रय है। नायिका की जघाये नेत्र एव मुखकान्ति उद्दीपन विभाव है। अनुभाव यहाँ यद्यपि शब्दश कथित नही है किन्तु स्पृहापूर्वक अवलोकन, दीर्घश्वास, खेद आदि अनुभाव है। इन विभावानुभाव व्यभिचारियो के सयोग से सामाजिक का स्थायीभाव रति उद्बुद्ध होकर रसचर्वणा की स्थिति को प्राप्त होता है।

(ख) काम सताप से व्यथित नायिका के पास पहुँचकर नायक द्वारा कहे गये वचनो मे सभोग शृङ्गार की सुन्दर अभिव्यञ्जना हुई है–

जिस्सा पुरौ ण हरिदा दलिया हलिद्दा

रोसाणिअ ण कणक ण अ चम्पआइं।

ताइ सुवण्णकुसुमेहिं विलोअणाइ

अच्चेमि जेहि हरिणच्छि! तुमसि दिट्ठा।।[२]

अर्थात्, अपि हरिनी से नयनो वाली! तेरे सामने पिसी हुई हल्दी भी कुछ नही है, साफ किया

---

१. कर्पूरमञ्जरी–१/३४

२. कर्पूरमञ्जरी–३/२२

हुआ सोना भी तेरे सौन्दर्य के सामने तुच्छ है, चम्पा के फूल भी तेरी तुलना नहीं कर सकते। मेरी जिन आँखों ने तुझको देखा है, उनकी मैं सुवर्ण के फूलों से पूजा करूँगा।

यहाँ नायिका आलम्बन विभाव है, नायक आश्रय है। नायिका के हरिणी के समान नेत्र उद्दीपन विभाव है। वेपथु, दीर्घ-श्वास, स्वेद आदि अनुभाव है। औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भाव है। इन सबके सयोग से सामाजिक का स्थायी भाव 'रति' उद्बुद्ध होकर रसचर्वणा की स्थिति को प्राप्त करता है।

(ग) नायिका का हाथ पकड़कर नायक का कथन–

जे णवस्य तिउमस्स कण्टआ जे कदम्बमउस्स केसरा।

अज्ज तुज्झ करफंससंगिहि ते हुअन्ति मह अंगणिज्जिदा।।[1]

अर्थात्, त्रपुष नाम के फल मे जो काँटे होते है अथवा कदम्ब के फूल मे जो केसर होती है, ये सब तेरे हाथ का स्पर्श पाकर उत्पन्न हुए रोमाञ्च वाले मेरे अगो के सामने कुछ भी नहीं है।

यहाँ नायिका आलम्बन विभाव है; नायक आश्रय है। पृष्ठभूमि मे कथित चन्द्रोदय आदि उद्दीपन है, रोमाञ्च अनुभाव है। औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भाव है, इनके सयोग से रति उद्बुद्ध होकर शृङ्गार रस की अभिव्यञ्जना करता है।

विप्रलम्भ शृङ्गार–

विप्रलम्भ के बिना सयोग परिपुष्ट नही होता। कर्पूरमञ्जरी सट्टक विद्वत् समाज की इस मान्यता का सुन्दर निदर्शन है। कवि ने विप्रलम्भ शृङ्गार का सुन्दर समायोजन किया है। कुछ प्रमुख उदाहरण द्रष्टव्य है–

(क) चित्ते चिहुट्ठइ ण खुट्ठइ सा गुणेसु

सेज्जासु लोट्ठइ विसप्पइ दिम्मुहेसु।

---

१. कर्पूरमञ्जरी–३/२४

बोलम्मि वट्टइ पअट्टइ कव्वबंधे

झाणेण तुट्टदि चिरं तरुणी चलाक्खी।।[1]

अर्थात्, चञ्चल नेत्रों वाली वह तरुण नायिका सर्वदा मेरे चित्त में बसी रहती है, उसके गुण सतत् मुझे याद आते रहते है, वह मेरे पास शय्या पर सोती हुई-सी प्रतीत होती है, मुझे हर तरफ वह चलती हुई दिखाई देती है, मेरे वचनो को सुनती है, मेरे सम्बन्ध मे काव्यरचना करती है और मेरे ध्यान से कभी नही उतरती है।

यहाँ नायिका आलम्बन विभाव, नायिका के गुण आदि उद्दीपन विभाव, वेपथु, सन्ताप आदि अनुभाव शब्दश. अकथित है। उन्माद व्यभिचारी भाव है। इनके सयोग से उद्बुद्ध स्थायी भाव रति शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति कराता है।

(ख) नायक के विरह मे जल रही नायिका की स्थिति का वर्णन करने वाले निम्न पद्य मे विप्रलम्भ शृङ्गार की अभिव्यञ्जना उत्कृष्ट कोटि की है—

णीसासा हारजट्ठीसरिसपसरणा चन्दण फोडकारी

चन्दो देहस्स दाहो सुमरणसरिसी हाससोहा मुहम्मि।

अङ्गाण पण्डुभाओ दिवससससिकलाकोमलो किं च तीए

णिच्चं बाहप्पवाहा तुह सुहअ! कए होंति कुल्लाहिं तुल्ला।[2]

अर्थात्, हे सौभाग्यशालिन् ! तुम्हारे कारण कर्पूरमञ्जरी बड़ी गहरी साँसे लेती है, उसकी साँसे हारलता के समान विस्तार वाली है, चन्दन का रस उसके शरीर पर जलन उत्पन्न करता है, चन्द्रमा उसके देह को जलाता है, उसके मुख पर मुस्कराहट भी (मै मर रही हूँ, मेरी याद रखना, इस तरह का) स्मरण सा कराती है, उसका शरीर पीला पड़ गया है, जैसे कि दिन के समय चन्द्रमा फीका-सा लगता है, उसके निरन्तर बहते हुए आँसू किसी कृत्रिम नदी की तरह लगते है।

---

१. कर्पूरमञ्जरी २/४

२ कर्पूरमञ्जरी २/१०

यहाँ नायक आलम्बन विभाव है नायिका आश्रय है। गहरी साँसे लेना, शरीर सन्ताप शरीर का पीला पड़ना, अश्रु प्रवाह आदि अनुभाव है, यहाँ व्याधि नामक व्यभिचारी भाव है, रति स्थायी भाव है जो उद्बुद्ध होकर रस चर्वणा की स्थिति को प्राप्त करता है।

हास्य रस–

कर्पूरमञ्जरी में हास्य रस का बड़ा ही अनूठा चित्रण हुआ है। इसमें हास्य का आलम्बन विदूषक है। यह सट्टक में आरम्भ से लेकर अत तक विद्यमान रहता है, अत इसमें हास्य रस की झलक आद्योपान्त मिलती है। विदूषक की अनूठी उक्तियाँ सट्टक के सवादो को सजीव बना देती है। उसकी गर्वोक्तियाँ एव पाण्डित्य प्रदर्शन, हास्य का वातावरण उपस्थित करते है। हास्य रस की सुन्दर अभिव्यक्ति के कुछ स्थल उदाहरणीय है–

(क) विदूपक :–भो! तुम्हाण सब्वाण मज्झे अहम् एक्को कालक्खरिओ जस्स मे ससुरस्स ससुरो पण्डितघरे पुत्थि आइ बहतो आसि'

चेटी– (विहस्य) तदो आगद अण्णएण पडित्तए।

विदूषक .–(सक्रोधम्) आ दासीए धूए भविस्सकुट्टणि! विल्लक्खणे! अविअक्खणे! ईदिसोऽह मुक्खो जो तए बि उवहसिआमि?...[1]

अर्थात्, विदूषक कहता है–तुम सब मे मै ही एक मूर्ख हूँ, जिसके ससुर का ससुर भी पण्डितो के यहाँ पुस्तके उठाता रहता था।

चेटी–(हसकर) तब तो तुम वश परम्परा से विद्वान ठहरे।

विदूषक–(क्रोध के साथ) अरे दासी की पुत्री, कुट्टिनी होने वाली, निर्लक्षण और मूर्ख! मै क्या ऐसा मूर्ख हूँ कि तू भी मेरा उपहास करे।

यहाँ विदूषक आलम्बन विभाव है। चेटी, राजा, रानी आदि आश्रय है। कथित न होने पर

---

१. कर्पूरमञ्जरी (रामकुमार आचार्य), पृष्ठ १८

भी विदूषक की भावभंगिमाएं, वस्त्रादि उद्दीपन विभाव है। हंसना अनुभाव है। गर्व एवं असूया व्यभिचारी भाव है। इन विभावानुभावव्यभिचारियों के संयोग से सामाजिक का स्थायी भाव हास उद्बुद्ध होकर हास्य रस की अभिव्यक्ति करता है।

(ख) श्वेत वर्ण पुष्प की ओदन से एवं स्वच्छ विचकिल के फूल की भैंस के दही से दी गयी उपमा वाली विदूषक की कविता एवं तत्सम्बन्धी वार्ता हास्य रस का सुन्दर उदाहरण है-

विदूषक-(पठति)- फुल्लक्कुर कमलकुसुम बहाति
जे सिंदुवारविडवा मह वल्लभा दे।
जे गालिअस्स महिसीदहिणो सरिच्छा
ते किं च मुद्धविअइल्लपसूणपुंजा।।-१/१९

विचक्षणा-णिअकंतारंजणजोग्गं दे वअणं।

विदूषक-ता उआरवअणे[1] तुम पढ़।

देवी-(किञ्चित् स्मित्वा) सहि विअक्खणे...।[1]

अर्थात्, विदूषक कविता पढ़ता है-कलमों (नामक चावल) के भात की तरह श्वेत वर्ण के फूल जिन सिन्धुवार वृक्षों पर आते है, वे प्रिय है। विलोए हुए भैस के दही के समान स्वच्छ विचकिल के फूल भी मुझे बहुत प्रिय है।

विचक्षणा-(तुम्हारी कविता) तुम्हारी पत्नी को प्रसन्न करने योग्य है।

विदूषक-अयि प्रियभाषिणी! तुम अपनी कोई कविता सुनाओ।

देवी-(हँसकर) सखि विचक्षणा...।

यहाँ विदूषक आलम्बन विभाव; देवी, विचक्षणा आदि आश्रय; विदूषक की भावभंगिमाएँ, वस्त्राभरण आदि उद्दीपन विभाव है, मुस्कुराना, हसना आदि अनुभाव है। असूया आदि व्यभिचारी

---

१ कर्पूरमञ्जरी (रामकुमार आचार्य), पृष्ठ १९-२०

भाव है। इनके सयोग से स्थायी भाव हास उद्बुद्ध होकर रसोद्रेक की स्थिति को प्राप्त होता है।

(ग) तृतीय जवनिकान्तर मे विदूषक का स्वप्न वर्णन बड़ा ही सरस एव विनोदपूर्ण है। राजा की स्मरपीडा एव विदूषक की विनोदप्रियता का एक साथ चित्रण किया गया है, जो रोचक एव परिहासपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक स्थलो पर विदूषक अपने हावभाव एव चुटीले कथनो द्वारा हास्य रस की उद्भावना करने मे सफल हुआ है।

अद्भुत रस–

कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे अद्भुत रस का समावेश भी प्रचुर मात्रा मे हुआ है, जिसका सट्टक मे समायोजन आवश्यक माना जाता है। अद्भुत का पुट प्रारम्भ से ही मिलने लगता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है–

(क) भैरवानन्द के चमत्कारी कार्य के प्रसग मे अद्भुत रस की मनोरम अभिव्यक्ति हुई है। विदूषक एव राजा के कहने पर भैरवानन्द विदर्भ नगर की राजकुमारी को अपने योगबल से उपस्थित कर देता है। यह घटना एव राजकुमारी का सौन्दर्य दोनो ही विष्मयजनक है। अत. उसे देखते ही राजा कह उठता है–

अहह! अच्चरिअ! अच्चरिअ!

ज धोआजणसोणलोअणजुअं लग्गालअग्गं मुहं
हत्थालबिदकेसपल्लवचए दोल्लति ज बिदुणो।
ज एक्क सिचअचल ण्णिबसिद त ण्हाणकेलिट्ठिदा
आणोदा इअमब्भुदेक्कजणणी जोईसरेणामुणा?[१]

---

१ कर्पूरमञ्जरी–१/२६

अर्थात्, इसकी ऑखो से अजन धुला हुआ है, इसीलिए इसकी ऑखे लाल है, मुख पर अलके विखरी हुई है, हाथ से अपने केशो को पकड़े हुई है और केशो से पानी की बूँदे टपक रही है। एक ही वस्त्र से शरीर ढका हुआ है। अत. ऐसा प्रतीत होता है कि इस योगीश्वर ने स्नान क्रीड़ा के बाद ही इस अपूर्व सुन्दरी को यहॉ पर उपस्थित किया है।

यहॉ नायिका आलम्बन, राजा आश्रय; नायिका को लाने की घटना एव उसका सौन्दर्य उद्दीपन, स्पृहापूर्वक अवलोकन, नेत्र विकास आदि अनुभाव एव हर्ष आदि व्यभिचारी भाव है। उनके सयोग से सामाजिक का स्थायी भाव विस्मय उद्‌बुद्ध होकर आस्वाद्य की स्थिति को प्राप्त करता है।

(ख) द्वितीय जवनिकान्तर मे कर्पूरमञ्जरी द्वारा दोहद के प्रसग मे अद्‌भुत रस की अभिव्यक्ति उल्लेखनीय है। नायिका के प्रगाढ़ आलिगन ने कुरबक वृक्ष मे एकाएक फूल खिला दिया है, जिससे चकित होकर विदूषक कह उठता है–

भो! पेक्ख पेक्ख महिन्दजाल। जेण–

बालो वि कुरवअतरू तरुणीए गाढ़मुवगूढ़ो।

सहस त्ति कुसुमणिअर मअणसर विअ समुग्गिरइ।।[१]

राजा–ईदिसो ज्जेव दोहलअस्स प्पहावो।

अर्थात्, अरे इस जादू विद्या को देखो, जिससे कि–इस छोटे ही कुरबक वृक्ष पर इस सुन्दरी के प्रगाढ़ आलिगन से एकाएक ही कामदेव के वाणो की तरह फूल निकलने लगे है।

राजा–दोहद का प्रभाव ही ऐसा है।

यहॉ कुरबक वृक्ष आलम्बन विभाव, विदूषक आश्रय, फूल खिलना उद्दीपन, नेत्र विकास आदि अनुभाव एव हर्ष आदि व्यभिचारी भाव है। इन विभावादि के सयोग से स्थायी भाव विस्मय उद्‌बुद्ध होकर अद्‌भुत रस की अभिव्यक्ति करता है।

---

१ कर्पूरमञ्जरी–२/४५

(ग) तिलक वृक्ष[1] एव अशोक वृक्ष [2] के दोहद के प्रसग मे भी अद्‌भुत रस अभिव्यञ्जित हुआ है।

चतुर्थ जवनिकान्तर मे महारानी द्वारा महाराज का विवाह कराने की बात सुनकर विदूषक आश्चर्यचकित होकर कहता है–"भो! कि इद अकालकोहण्डपउण?" राजा भी विस्मित है एव सारगिका से सविस्तार सुनता है, जिस कारण से महारानी ने महाराज के विवाह का निर्णय लिया है। यहाँ भी अद्‌भुत रस की अभिव्यञ्जना हो रही है।

भाव (अथवा भावध्वनि)–

प्रधानता से प्रतीयमान निर्वेदादि सञ्चारी तथा देवता, गुरु आदि के विषय मे अनुराग एव सामग्री के अभाव मे रसरूप को अप्राप्त उद्‌बुद्धमात्र रति हास आदि स्थायी, ये सब भाव कहलाते है।[3] कर्पूरमञ्जरी मे इन सभी प्रकार के भाव के उदाहरण प्राप्त होते है।

(क) देव विषयक रति का सुन्दर उदाहरण चतुर्थ जवनिकान्तर मे भैरवानन्द के इस कथन मे मिलता है–

कप्पन्तकेलिभवणे कालस्य पुराणरुहिरसुरम्।
जअदि पिअन्ती चण्डी परमेट्ठिकवालचसएण।।[4]

अर्थात्, महाकालरूपी रुद्र के प्रलयकाल रूपी क्रीड़ा मन्दिर मे ब्रह्मा के कपाल रूपी प्याले से प्राणियो के रुधिर रूपी मद्य को पीती हुई चण्डी की जय हो।

यहाँ चामुण्डा के प्रति प्रेम प्रकट हो रहा है, अत. भाव ध्वनि है।

---

१ कर्पूमञ्जरी–२/४६

२ वही–२/४७

३ सञ्चारिण. प्रधानानि देवादिविषया रति।
उद्‌बुद्धमात्र. स्थायी च भाव इत्यभिधीयते।।–साहित्यदर्पण ३/२६०

४ कर्पूरमञ्जरी–४/१६

(ख) राजविषयक रति का उदाहरण द्रष्टव्य है—वैतालिक कहता है—

"जअ पुब्बदिअंगणाभुअग! चपाचपककण्णऊर! लीलाणिञ्जिअराढ़देस! विक्कमक्कतकामरूअ? हरिकेलीकेलिआरअ! अबमाणिअजच्चसुबण्णबण्ण! सब्वगसुन्दरत्तणरमणिञ्ज! सुहाअ दे होदु सुरहिसमारभो।"[१]

अर्थात्, पूर्वदिशा के स्वामी! चम्पानगरी का पालन करने वाले! राढ़देस को खेल-खेल मे ही जीतने वाले! कामरूप देश के विजेता! हरिकेलि देश मे विहार करने वाले, पराजित किये हुए लोगो मे सुवर्ण की तरह चमकने वाले, सब अगो के सौन्दर्य से युक्त हे राजन्! तुम्हारी जय हो, वसन्त ऋतु का आगमन तुम्हारे लिए सुखकर हो। यहाँ राजा के प्रति रति भाव व्यञ्जित हुआ है, अत. यह भाव ध्वनि का स्थल है।

(ग) प्रधानता से प्रतीयमान सञ्चारीभाव वाले भावध्वनि का उदाहरण प्रस्तुत है—भैरवानन्द कहता है—

दसेमि त पि ससिण बसुहाबइण्ण थभेमि तस्स वि रविस्स रह णहद्धे।
आणेमि जक्खसुरसिद्धगणगणाओ त णत्थि भूमिबलए मह ज ण सद्ध।।[२]

अर्थात्, चन्द्रमा को भी पृथ्वी पर उतार कर दिखा सकता हूँ। सूर्य का भी आकाश मार्ग मे रथ रोक सकता हूँ। यक्ष, सुर और सिद्धगणो की स्त्रियो तक को ला सकता हूँ। भूमण्डल पर ऐसा कोई कार्य नही जिसको मै न कर सकूँ। यहाँ स्थायीभाव विस्मय को उद्बुद्ध करने योग्य कथन होने के बावयूद, भैरवानन्द का सब कुछ कर सकने की सामर्थ्य का अभिमान होने से गर्व नामक सञ्चारी भाव प्रधानता से व्यञ्जित हो रहा है, अतः यहाँ भावध्वनि है।

(घ) स्थायी भाव के उद्बुद्ध मात्र होने के अनेक उदाहरण प्रस्तुत सट्टक मे उपलब्ध है।

---

१ कर्पूरमञ्जरी (रामकुमार आचार्य), पृष्ठ १२

२. कर्पूरमञ्जरी—१/२५

विस्मय नामक स्थायी भाव के उद्‌बुद्ध मात्र होने का उदाहरण, विदूषक के स्वप्न के प्रसग मे देखा जा सकता है। विदूषक के विचित्र स्वप्न को सुनकर राजा आश्चर्यचकित है, वह कह उठता है–"अहो! विचित्तदा सिविणअस्स। (अहो! विचित्रता स्वप्नस्य।)" यहाँ विस्मय भाव की अभिव्यक्ति हो रही है, अन्य आवश्यक तत्वो के अभाव मे यह रसोद्रेक की स्थिति को नही प्राप्त कर पाया है। इसी प्रकार वसन्त ऋतु मे केवड़े के सुगन्ध एव भैरवानन्द के प्रभाव से असमय मे उसकी उत्पत्ति के प्रसङ्ग मे राजा का विस्मय मे पड़ना, विस्मय नामक स्थायी भाव को उद्‌बुद्ध मात्र करता है, रसोद्रेक की स्थिति को नही प्राप्त करता। सट्‌टक के अतिम चरण मे भी अद्‌भुत का पुट अवलोकनीय है। घनसारमञ्जरी की जगह कर्पूरमञ्जरी सी रूपरेखा को देखकर महारानी विस्मित हैं, वह कहती है–"आए! सारिच्छएण विडविदम्हि। (अये! सादृश्येन विडम्बिताऽस्मि!)" यहाँ भी विस्मय नामक स्थायी भाव उद्‌बुद्ध मात्र हुआ है, अत यह भावध्वनि का स्थूल है।

शृङ्गारमञ्जरी सट्‌टक में रस परिपाक

शृङ्गार रस–

सट्‌टक के लक्षणानुसार शृङ्गारमञ्जरी सट्‌टक का अगी रस शृङ्गार है। नायक नायिका के अनुराग के प्रसिद्ध हेतुओ–श्रवण, चित्र, स्वप्न एव प्रत्यक्ष दर्शन मे से प्रस्तुत सट्‌टक मे चारो ही विद्यमान है। राजा स्वप्न मे एक कन्या को देखता है, यही से अनुराग अकुरित हुआ है। वसन्ततिलका राजा द्वारा निर्मित चित्र को, शृङ्गारमञ्जरी के रूप मे बताती है एव उसके प्रेम का राजा से निवेदन करती है। इससे राजा का अकुरित अनुराग परिपुष्ट होता है एवं वह नायिका से मिलने के लिए उत्कण्ठित हो जाता है। द्वितीय जवनिकान्तर में नायिका के प्रत्यक्ष दर्शन से उनका प्रेम पराकाष्ठा को प्राप्त करता है। नायिका के दर्शन से नायक को अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है, जिसकी तुलना जीव के ब्रह्मैक्य भाव से ही सभव। नायक की यह आनन्दानुभूति वस्तुतः सामाजिक की आनन्दानुभूति है। विविध प्रकार से विभावादि के संयोजन द्वारा इस रसानुभूति की अभिव्यञ्जना

मे कवि सफलता के शिखर पर विद्यमान है, जैसा कि विश्वेश्वर ने स्वय कहा है कि–इसमे रस के विभावादि सभी अग अच्छी तरह अवस्थित किये गये है।[1] शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे शृङ्गार रस के दोनो ही रूपो–संभोग एव विप्रलम्भ के स्थल बहुलता से प्राप्त होते है। इनमे भी विप्रलम्भ शृङ्गार की व्यञ्जना अपेक्षाकृत अधिक हुई है विश्वेश्वर ने खुद भी स्वीकार किया है कि विप्रलम्भ को विदग्ध जन अधिक प्रिय मानते है।[2] क्रमश· दोनो के उदाहरण प्रस्तुत है–

संभोग शृङ्गार–

यद्यपि प्रस्तुत सट्टक मे सभोग शृङ्गार के स्थल अपेक्षाकृत कम है, फिर भी उनकी रसाभिव्यञ्जना उत्कृष्ट कोटि की है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है–

(क) नायिका द्वारा अपने को देखने का वर्णन राजा इन शब्दो मे करता है–

अहिअविअसिएहि ईसगुच्छीकएहि
अहिमुहवलिएहि दोपरावट्टएहि।
रहस तरलिएहिं विब्भमाघुम्मिरेहि
वरअणुणअणेहिं ज णिवीओ इमेहि।।[3]

अर्थात्, अधिक विकसित होने वाले, कुछ कुछ धब्बे वाली आकृति वाले, मेरी ओर मुड जाने पर थोड़ा सिकुड़न के साथ दोनो ओर घूम जाने वाले, एकाएक भय से चञ्चल होने वाले और विलासयुक्त गति को दिखलाने वाले इस सुन्दरी के ऐसे नेत्रो ने (मेरा) पूर्णतः पान कर लिया है। यहाँ नायिका आलम्बन विभाव, नायक आश्रय, नायिका के नेत्रों के विलास आदि उद्दीपन विभाव है। नायक द्वारा अपनी कृतार्थता की अनुभूति से हुए रोमाञ्च, श्वेद आदि अनुभाव एव औत्सुक्य, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव है, जिससे स्थायी भाव रति उद्बुद्ध होकर रसानुभूति की स्थिति को

---

१. 'विहाअसठविअसअलगा'–शृङ्गारमञ्जरी–१/८
२. 'विप्पलभो अइमेत्त बहुमओ छइल्लाणं।'–शृङ्गारमञ्जरी–१/६
३ शृङ्गारमञ्जरी, २/३२

प्राप्त कर रहा है।

(ख) नायिका को देखकर नायक की निम्न उक्तियो मे सभोग शृङ्गार की उत्कृष्ट अभिव्यञ्जना द्रष्टव्य है–

मग्गाइँ दो वि णअणाइँ सुहासरम्मि
अग प्पहिण्णपुलअकुरदतुर मे।
अप्पा वि जेण जणिओ अणुहूअबम्हा–
णदो व्व सव्वविसअतरणाणसुण्णो।।[१]

अर्थात्, मेरे दोनो नेत्र अमृत सरोवर मे डूबे है। मेरे अग रोमाञ्च से कटकित हो रहे है। आत्मा भी अन्य सभी विषयो के ज्ञान से शून्य ब्रह्मानन्द का सा अनुभव प्राप्त कर रहा है। यहाँ नायक आश्रय, नायिका आलम्बन विभाव, रोमाञ्च अनुभाव, पूर्वकथित नायिका के नेत्रो के विलास आदि उद्दीपन विभाव, हर्ष, औत्सुम्य आदि व्यभिचारी भाव है, जिससे रति उद्बुद्ध होकर शृङ्गार रस की अभिव्यजना करता है।

(ग) तृतीय जवनिकान्तर मे नायक-नायिका माधवीलतामण्डप मे मिलते है। इस समय नायिका के प्रति नायक के कथनो मे सभोग शृङ्गार की अभिव्यञ्जना दर्शनीय है–

पणमिअ मुहअद पम्हघोलतबाहा–
वलिलवविणिअवाआ कि पि तण्हाअ गड।
अइपसरिअसासाहाअ वेअप्पकप–
त्यण मउलअमेअ ईरिस होइ तुण्ण।।[२]

अवि अ–

---

१ शृङ्गारमञ्जरी–२/३७
२ शृङ्गारमञ्जरी–३/५४

बाहुज्झरेण मइलीकिदमाणण ते

मज्जेमि वासुणउ चारुकरेण मद।

णीसासवेअविहुर हिअअ पर च

हत्थेण कि पि सिढिलेण परामिसामि।।[१]

अर्थात्, इस समय तुम्हारा यह मुखचन्द्र झुका है। पलको से निकलकर बहती हुई ऑसुओ की बूँदो के गिरने से कपोल नहाये हुए से हो गये है। सॉसे बड़ी तेजी से दूर तक चल रही है, जिससे उरोज युगल भी बड़ी तेजी से कॉपता हुआ-सा लग रहा है। (और भी) अरी सुन्दरी! तुम्हारा मुँह ऑसुओ के निरन्तर झरते रहने से मलिन हो गया है, जिसे मै अपने हाथो से धीरे-धीरे पोछ देता हूँ और तेजी से चलते हुए सॉसो से विकल हृदय को हल्के हाथ से सहलाता हूँ। यहॉ नायक आश्रय है। नायिका आलम्बन विभाव है। कम्प, तेज श्वास, अश्रु आदि अनुभाव है। नायिका का सौन्दर्य उद्दीपन है, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव है, इनके सयोग से सामाजिक का स्थायी भाव रति उद्बुद्ध होकर रसचर्वणा को प्राप्त होता है।

विप्रलम्भ शृङ्गार–

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक के चारो ही जवनिकान्तरो मे विप्रलम्भ शृङ्गार की सुन्दर अभिव्यञ्जना प्राप्त होती है। वियोग के ५ कारणो मे सट्टक मे पूर्वराग पाया जाता है। स्वप्न में एक कन्या को देखकर राजा उस पर आसक्त है। यह पूर्वराग का स्वरूप है। नायक स्वप्न मे देखी गयी नायिका के मिलन के लिए व्याकुल है। उस अपूर्व सुन्दरी के सौन्दर्य एव हावभावो का ही वह सतत् स्मरण कर रहा है। स्वप्न मे दर्शित नायिका स्वय विरहिणी है, जिसके विषय मे राजा की उक्ति दर्शनीय है–

करअलधरिअमहिअला कह पि णिम्मविअपअपडिट्ठाणा।

समविउणिअ-णीसासा समुट्ठिआ बालहरिणच्छी।।[२]

१. शृङ्गारमञ्जरी–३/५५

२ शृङ्गारमञ्जरी–१/२१

अर्थात्, उस बालमृगी के समान चञ्चल और रसीली नयनो वाली रमणी ने बड़ी मुश्किल से हाथो के तलुओ से उठने के लिए जमीन का सहारा लिया, जमीन मे अपने पैरो को टिकाया और लगातार लम्बी-लम्बी सॉसे लेती हुई वह जैसे-तैसे अपनी जगह से खड़ी हुई।

स्वप्न दर्शन के उपरान्त स्पृहा, ताप, नि श्वास और उन्माद ये दशाये नायक मे पायी जाती है। नायिका के चित्र को नायक बनाना चाहता है, उसके लिए चित्रोपकरण जुटाये जाते है, किन्तु नायक के आन्तरिक भावना मे नायिका है। अत. उसे सभी वस्तुओ में नायिका ही दिखाई पड़ती है, जिससे चित्र बनाना कठिन हो गया है। नायक स्वय कहता है–

बाहुज्झरो वि लिहिअ लिहिअ ज रेह
आपुसइ क्खलइ ताइ मण भरत।
णो लेहणी परमवेविरअसुलिम्मि
पाणिम्मि ठाइ कहमेत्थ अ कि लिहिस्स।।[१]

अर्थात्, ऑखो से अनुराग के कारण बहने वाली ऑसुओ की धारा चित्र की रेखाओ को मिटा दे रही है। मेरा मन भरकर डगमगा रहा है। हाथ मे तुलिका ठीक से नही टिक पा रही है, क्योकि हाथ की ॲगुलियॉ बहुत कॉप रही है। इस कारण मै क्या और कैसे प्रिया का चित्र बनाऊँ? यह बात समझ मे नही आ रही है। यहॉ नायक आश्रय, नायिका आलम्बन विभाव, पृष्ठभूमि के कथित उपवन उद्दीपन विभाव, अश्रु प्रवाह, प्रकम्प आदि अनुभाव, चिन्ता, उद्वेग आदि सचारी भाव है, जिनसे स्थायी भाव रति उद्‌बुद्ध होकर रस चर्वणा की स्थिति को प्राप्त करता है।

तृतीय जवनिकान्तर मे विप्रलम्भ शृङ्गार के अनेक सुन्दर स्थल है, जिनमे उनकी अभिलाषा, चिन्ता, गुणकीर्तन, उद्वेग, विलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरणावस्था वर्णित है। यहॉ करुण

---

१ शृङ्गारमञ्जरी–१/३५

विप्रलम्भ की कोटि के शृङ्गार अलकार की अभिव्यञ्जना हुई है। नायिका की दशा का वर्णन करने वाला निम्न उदाहरण दर्शनीय है–

तुसारणिअरो तुसारणिचरो व्व वेसाणरो
तहा अ जलणीलिआ मअरकेदुणा ईलिआ।
फुरति हिम-बालुआ तविअबालुआ दूसहा
पर अणलउक्करो अणलमुक्करोइप्पहो।।[१]

अर्थात्, उसे शीतल हिम का खण्ड तुपरूपी औरणि से निकली अग्नि की तरह जलाता है और इसी तरह जल का छोटा नाला उसे कामदेव से प्रेरित-सा लगता है। उसे हिमबालुका तपी हुई सिकता-सी दु सह लगती है है और उसके मुँह से निकली हुई अग्नि के ढेर की सी गर्म साँसे, किसी मरे हुए रोगी के शरीर से छोड़ी गयी साँसो की भाँति है। यहाँ नायिका आश्रय; नायक आलम्बन, मधुमास, पवन आदि उद्दीपन, गर्मश्वास आदि अनुभाव, व्याधि, औत्सुक्य आदि सञ्चारी भाव है, जिनसे स्थायी भाव रति उद्‌बुद्ध होकर रसचर्वणा की स्थिति को प्राप्त होता है।

हास्य रस–

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे हास्य का आलम्बन विदूषक गौतम है। वह अपने हाव-भाव, क्रिया-कलाप से हास्य का वातावरण उपस्थित करता है, उसे अपने पाण्डित्य पर गर्व है। उसकी गर्वोक्तियो एव पाण्डित्य प्रदर्शन मे हास्य रस की झलक मिलती है। विदूषक एव वसन्ततिलका के मध्य विवाद के प्रसङ्ग का उदाहरण द्रष्टव्य है। विदूषक क्रोधित होकर कहता है–

"एदारिसस्स राइणो सेवणस्स फल एण्हि मे पज्जंत। जेण विहप्पइ–सरिच्छेहिं पि पंडिअ वरेहिं सलाहिज्जतविण्णाण-विसेसो महाउलुप्पण्णो बम्हणो कीडादो वि अप्पबुद्धीए दासीए पराहुवीअदि। ता एत्तिअ-पज्जतं ज जाअं तं जाअ। इमादो परं विवेअरहिअस्स पहुणो अलं अणुवट्टणेण। ता अण्णदो

१ शृङ्गारमञ्जरी–३/११

गमिस्स। (इत्युत्तिष्ठति)[1]

अर्थात्, मुझे ऐसे राजा का सेवक होने का फल मिल गया, जिसके विशेप ज्ञान की प्रशसा वृहस्पति के समान श्रेष्ठ पडितो ने भी की थी। ऐसे कुलीन ब्राह्मण को विनोद का साधन बनाकर अल्प बुद्धि दासी से पराजित करवाया जा रहा है। अत· अब जो हुआ सो हो चुका। इसके पश्चात् किसी विवेकहीन स्वामी की सेवा से छुट्टी। अत मै अन्यत्र चला जाऊँगा। (जाने के लिए उठता है)। यहाँ नायक, नायिका, वसन्ततिलका आदि आश्रय, विदूपक आलम्बन, विदूषक की भाव-भगिमाये उद्दीपन, हसित, मुहविकास आदि अनुभाव, क्रोध, घृणा आदि सचारीभाव है, उनसे स्थायीभाव हास उद्बुद्ध होकर हास्य रस को अभिव्यञ्जित कर रहा है।

चतुर्थ जवनिकान्तर के अतिम चरण मे राजा के विवाहोपरान्त विदूषक दक्षिणा के लिए राजा से कहता है–

ठेरस्स उत्तमउलस्स ममावि किञ्चि–
अप्पाणुरूअमिह दिज्जउ बम्हणस्स।
मम्मेसु बधणविअड्ढणजाअपीडा
तीरति जेण हि रुआ अइ दूसहा वि।।[2]

राजा–(विहस्य) ण हु बम्हणपरिओसेण विणा कम्माइ सगाइ होति।

अर्थात्, अरे मित्र! मै उत्तम कुल मे उत्पन्न वृद्ध ब्राह्मण हूँ। मुझे इस समय आत्मानुरूप कोई वस्तु दे, जिससे बन्धन और इधर-उधर खीचने से होने वाली असहनीय वेदनाओ को सह लेने की पीड़ा पूरी तरह जा सके। राजा हँसकर प्रत्युत्तर देता है कि–सचमुच, जब तक ब्राह्मण को सतोष न हो जाय तब तक कर्म अपने आप मे पूर्ण नही माने जाते। यहाँ राजा आश्रय, विदूषक आलम्बन, विदूषक के हावभाव आदि उद्दीपन, हँसी अनुभाव, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव है, जिनसे स्थायी

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४५
२ शृङ्गारमञ्जरी–४/२३

भाव हास के उद्‌बुद्ध होने से हास्य रस की अभिव्यञ्जना हो रही है।

अद्‌भुत रस–

सट्टक मे अद्‌भुत रस का समावेश आवश्यक माना जाता है। शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में भी अद्‌भुत रस का समायोजन प्राप्त होता है। विश्वेश्वर ने खुद कहा भी है कि 'यह रचना अतिशय चमत्कार उत्पन्न करने वाली है।'[१] इसका पूट प्रारम्भ से ही मिलने लगता है। राजा को स्वप्न मे अपूर्व सुन्दरी का दिखलाई पड़ना विस्मय जनक है। विदूषक उसे सुनकर आश्चर्यचकित है, उसमे स्वप्न की सारी बाते जानने की उत्सुकता है। राजा द्वारा कथित पद्य को वसन्ततिलका द्वारा शब्दश सुनाने पर राजा आश्चर्यचकित होता है। वह मन ही मन विचार करता है कि इसमे एक ही बार कही गयी बात को याद रखने की बड़ी क्षमता है। विस्मय का पुट इस तथ्य मे भी झलकता है कि अन्त.पुर मे नायक भी है एव नायिका भी रहती है, किन्तु नायक उसे देख नही पाता है। इसी बात को द्वितीय जवनिकान्तर मे आश्चर्यचकित होकर विदूषक कहता है कि–'आश्चर्य है अन्त.पुर मे रहकर भी इसे अभी तक महाराज ने नही देखा।'' ज्येष्ठा नायिका के सौन्दर्य वर्णन से सम्बन्धित नायक के कथन मे अद्‌भुत रस की छटा दर्शनीय है। राजा कहता है–(आप ने) इस समय सिन्धुवार पुष्प की सुन्दर कलियो मे मोती के दानों को बीच मे लगाया है और अशोक पुष्पो से स्वच्छ माणिक्य को मलिन बना देने वाली निष्पन्द मधुकरो की लम्बी कतार-सी बनकर (आप) इन्द्रनीलमणि जैसी शोभित हो रही हो। अत. अचम्भित करनेवाली दूसरी सजीवनी लतिका के समान लग रही हो।[२] अद्‌भुत रस की अभिव्यञ्जना का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण चतुर्थ जवनिकान्तर मे प्राप्त होता है। भगवती के मदिर से वापस आती हुई महारानी को आकाशवाणी का सुनाई पड़ना आश्चर्यजनक है, साथ ही देवी द्वारा, राजा एव शृङ्गारमञ्जरी का विवाह करवाने का निश्चय करना, सभी को विस्मित करने वाला है। राजा स्वय इसे सुनकर आश्चर्यचकित एव प्रसन्न है। वह कहता है–

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–१/६

२. शृङ्गारमञ्जरी–२/४०

अहो अच्छरिअ अच्छरिअ।

मज्जतस्स महण्णवम्मि सहसा पोअस्स आसाअण

अत्थक्के वि महधआरकवलीभूअस्स दीवाअमो।

कठे सठिअजीवअस्स अमआसारो सरीरतरे

उज्जतस्स अ मम्महेण दइआलाहस्स सभावणा।।[१]

अर्थात्, अरे! आश्चर्य है, आश्चर्य है। मन्मथ द्वारा प्रियतमा के लाभ की सभावना मेरे लिए वैसी ही दूसरे जीवन की तरह है, जैसे महासागर मे डूबते हुए व्यक्ति को सहसा किसी जलपोत की प्राप्ति हो जाती है, जैसे घनघोर अधेरे मे दिशाहीन पुरुष को एकदम दीपक मिल जाता है और जैसे कण्ठ मे प्राणो के रुक जाने पर शरीर मे जीने के लिए अमृत वर्षा हो जाती है। यहाँ राजा आलम्बन है, अपने विवाह की सूचना उद्दीपन है। नेत्र विकास आदि अनुभाव है, हर्ष, आदि व्यभिचारी भाव है, इससे स्थायीभाव विस्मय उद्बुद्ध होकर अद्‌भुत रस की अभिव्यञ्जना करा रहा है।

भाव (अथवा भावध्वनि)–

(क) शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे भाव के अभिव्यञ्जक भी अनेक स्थल विद्यमान है। देव विषयक रति को अभिव्यञ्जित करने वाले भाव की कोटि मे नान्दी के दोनो पद्य रखे जा सकते है। प्रथम मे गौरी एव द्वितीय मे कामदेव के प्रति प्रेम का सन्निवेश है। शृङ्गारमञ्जरी के प्रथम एव द्वितीय जवनिकान्तर के अतिम पद्य, जिनमें क्रमश शिव एव कामदेव के प्रति प्रेम का प्रदर्शन है, भावध्वनि को अभिव्यञ्जित कर रहा है। इसमे देवविषयक रति का सुन्दर उदाहरण चतुर्थ जवनिकान्तर मे महारानी द्वारा भगवती की आराधना के प्रसग मे प्राप्त होता है, जिसका वर्णन राजा से विदूषक ने इस प्रकार किया है–

जअ भअवदि अब, संझासमाढ़त्तणट्टुच्छवुक्खित्तहत्थाइतिक्खतणाणाणहग्गावलग्गंबुबा-

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–४/१५

हुक्करोलुग्गणक्खत्तलक्खाहिलक्खत मोत्तावलीविब्भमे. णुदे दे णमो।[1]

अर्थात्, हे भगवति अम्बे! तुम्हारी जय हो! तुम सन्ध्या समय मे आरम्भ हुए उत्सव के अवसर पर ऊपर उठाये हुए हाथ मे, उनके तीखे नखो के आगे वाले भाग मे, उलझने वाले मेघ-मण्डलो मे समाये हुए, असख्य नक्षत्रो की तरह लगने वाली मोतियो की माला की शोभा दिखा रही हो।

इस प्रकार तीनो लोको के द्वारा स्तुत हुई भगवती को मेरा नमस्कार है। यहाँ भगवति देवी के प्रति रति के कारण भावध्वनि है।

(ख) प्रधानता से प्राप्त सचारी भाव वाले भावध्वनि के भी अनेक स्थल प्रस्तुत सट्टक मे प्राप्त होते है। नायिका के चित्र को अकित करने की इच्छा वाला राजा कह रहा है–

सअले वि मए पअत्थजाए दइआ दीसदि भावणोवणीदा।

विलिहिज्जइ सा उणो कह वा ण हु एद लिहिद ण वत्ति दुद्धी।।[2]

अर्थात्, सभी वस्तुओ मे अपनी आन्तरिक भावना से लायी गयी प्रिया ही देखने मे आ रही है। चित्र मे ऐसी प्रिया का अकन कैसे किया जाये? किन्तु सन्देह बना है कि चित्र में वह भलीभाँति चित्रित हो सकेगी या नही। यहाँ नायिका के प्रति नायक का रति भाव यद्यपि द्योतित हो रहा है, किन्तु वितर्क नामक व्यभिचारी भाव प्रधानता से अभिव्यञ्जित हो रहा है, अत. यह भाव का उदाहरण है।

तृतीय जवनिकान्तर मे राजा के प्रति विदूषक का कथन है कि–"वअस्स, अल विलबेण–

तुह सगमतण्हाए सकेअ कुडगअ पत्ता।

अणहिगअ-वल्लह-जणा अणुहोउ ण जीअमोक्ख सा।।"[3]

अर्थात्, मित्र देर न करे! क्योकि आपकी प्रिया आपसे मिलने की अभिलाषा से सकेत स्थल के कुञ्ज मे गयी। वहाँ उसे प्रिय प्राप्त नही हुआ ऐसी स्थिति मे वह प्राण त्याग का अनुभव न करे। यहाँ नायक-नायिका की रति वर्ण्य विषय होने पर भी मरण नामक व्यभिचारी भाव की व्यञ्जना प्रधानता से हो रही है, अतः यह भावध्वनि का स्थल है।

१ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ६६

२ शृङ्गारमञ्जरी–१/३४

३ शृङ्गारमञ्जरी–३/१६

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों में रस परिपाक का तुलनात्मक परिशीलन

कर्पूरमञ्जरी एव शृङ्गारमञ्जरी दोनो ही कृतियाँ सट्टक कोटि की है, अत अनिवार्यत. दोनो मे शृङ्गार रस को अगीरस के रूप मे सन्निवेशित किया गया है। साथ ही सट्टक के लक्षणानुसार दोनो मे ही अद्भुत रस का पुट समाहित है। नायक के नर्म सचिव विदूषक की दोनो ही कृतियो मे उपस्थिति हास्य रस की अभिव्यञ्जना मे सहायक हुई है। इन तीनो रसो के अलावे अन्य किसी रस के समायोजन का कोई प्रयास इन कृतियो मे प्राप्त नही होता।

यद्यपि शृङ्गार रस को दोनो ही नाट्यकारो ने प्रमुखता से अभिव्यञ्जित करने का प्रयास किया है। परन्तु इसकी परिपुष्टि मे दोनो मे अन्तर है। शृङ्गारमञ्जरीकार संयोग एव विप्रलम्भ शृङ्गार दोनो की अभिव्यञ्जना मे जिस ऊँचाई को स्पर्श किये है, कर्पूरमञ्जरीकार उससे काफी पीछे दिखाई पड़ते है। शृङ्गारमञ्जरीकार ने अपने पात्र राजा के माध्यम से, जो यह कहलवाया है कि–"मेरे दोनों नेत्र अमृत सरोवर मे डूबे है, मेरे अग रोमाञ्च से कष्टकित हो रहे है। आत्मा भी अन्य सभी विषयो के ज्ञान से शून्य ब्रह्मानन्द का सा अनुभव प्राप्त कर रहा है।"[१] यह नायिका को देखकर नायक द्वारा अनुभूत आनन्दातिरेक का वर्णन मात्र नही है, अपितु यह सामाजिक द्वारा अनुभूत रसानन्द की वह स्थिति है, जो शृङ्गारमजरी सट्टक का सामाजिक अनुभव करता है।

दोनों ही सट्टको मे विप्रलम्भ की अपेक्षा सभोग शृङ्गार के स्थल कम प्राप्त होते है, किन्तु शृङ्गारमञ्जरी का जो सभोग शृङ्गार का प्रसग है, वह नायक-नायिका के मध्य एकान्त में हो रहे सवाद, नायिका द्वारा मान करने, नायक द्वारा उसे मनाने, प्रेम का विश्वास दिलाने आदि से अत्यन्त

---

१ शृङ्गारमञ्जरी–२/३७

रोचक एव रसाभिव्यञ्जक हो गया है। वही कर्पूरमञ्जरी मे नायक-नायिका के मिलन का प्रसग, नायक-नायिका के मध्य सवादहीनता की-सी स्थिति, नायक का एकतरफा सवाद, कुरगिका की उपस्थिति के कारण पूर्ण एकान्त का अभाव, नायिका द्वारा मान करने आदि जैसे प्रसग का न होना इत्यादि के कारण अपेक्षाकृत अरुचिकर है।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे सयोग के प्रसग मे नायिका द्वारा कथित पद्य[१], जो अपनी अवस्था आदि गूढ़ अर्थ से समन्वित है को सुनकर; नायक उसके भाव पर विचार कर तदनुसार उत्तर देता है। वही कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे सयोग के प्रसग मे, कर्पूरमञ्जरी द्वारा विचरति एव उसके तरफ से जो एकमात्र पद्य[२] कुरगिका राजा से निवेदन करती है, वह चन्द्रमा का वर्णन मात्र है। साथ ही जब नायक-नायिका को अपनी अतरग बाते करने का अवसर मिलता है, वैसी परिस्थिति मे अपनी बाते न करके चन्द्रमा के वर्णन आदि जैसी अप्रासगिक बाते करना, वह आनन्द कहाँ उपस्थित कर सकती है, जो कि शृङ्गारमञ्जरी के ऐसे ही प्रसग मे प्राप्त होता है। और इससे बड़ी बात यह कि जब नायक-नायिका के पद्य को सुनकर इस अतरग क्षण मे उस पद्य की प्रशसा मे लग जाता है, उसमे शब्द सुन्दरता, उक्ति वैचित्र्य एव रस की झलक देखने लगता है, तब उसका अपना रस और भी विरस हो जाता है।

विप्रलम्भ शृङ्गार के प्रसग मे भी रस की अभिव्यञ्जना जिस उत्कृष्टता के साथ विश्वेश्वर ने किया है, वही राजशेखर अपेक्षाकृत पीछे दिखाई पड़ते है। विप्रलम्भ शृङ्गार के प्रसग मे यद्यपि राजशेखर ने कुछ उत्कृष्ट कोटि के स्थल उपस्थित किये है, किन्तु विश्वेश्वर जैसी व्यापकता उनमे

---

१ शृङ्गारमञ्जरी–३/५६

२ शृङ्गारमञ्जरी–३/३१

नही है। साथ ही विप्रलम्भ के उन सुन्दर स्थलो पर कुछ ऐसी बाते और कह जाते है, जो रस की अपकर्षक साबित होती है। जैसे कि विचक्षणा द्वारा अपने एव अपनी बहन के तरफ से की गयी नायिका की विरह पीड़ा की स्थिति को सुनकर, नायक उसके कविता की प्रशसा मे लग जाता है। यहाँ जब यह बताया जा रहा है कि उसके विरह मे नायिका के जीवन की आशा घट रही है। ऐसे प्रसग मे नायक द्वारा इस भाव मे किया गया कथन कि—वाह क्या बढ़िया ढग से आपने कहा, निश्चय ही रसानन्द की अविच्छन्नता को बाधित करता है। यहाँ तो चाहिए कि उसे सुनकर नायक, नायिका की पीड़ा से पीड़ित एव व्यक्षित हो, उसकी अपनी पीड़ा शब्द रूप मे फूट पड़े। वस्तुत· नाट्य मे सामाजिक को आद्योपान्त अविछिन्न रसानुभूति की अपेक्षा रहती है। रसानुभूति की यह अविछिन्नता नाट्य की स्वाभाविक प्रस्तुति मे ही बरकरार रह सकती है। कर्पूरमञ्जरी मे इस स्वाभाविकता का कही कही अभाव-सा है। शृङ्गारमञ्जरी मे यह स्वाभाविकता हर स्थल एव पद्य मे विद्यमान है, जो रसानन्द के प्रवाह को सतत् जारी रखती है।

दोनो कृतियो को यदि हास्य रस के सन्निबधन की दृष्टि से देखा जाय, तो कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की अपेक्षा हास्य की अभिव्यञ्जना के अधिक स्थल उपलब्ध होते है। कर्पूरमञ्जरी का विदूषक अपनी अनूठी उक्तियो द्वारा सवाद को सजीव बनाते हुए, हास्य का जो वातावरण उपस्थित करने मे सफल हुआ है, वैसा शृङ्गारमञ्जरी मे नही प्राप्त होता। राजशेखर कवि का विदूषक अपेक्षाकृत अधिक वाचाल प्रतीत होता है, जबकि विश्वेश्वर का विदूषक अधिकतर गभीर कथन करने मे सन्नद्ध है।

अद्भुत रस के समायोजन में दोनो की अपनी-अपनी विशेषताये हैं। जहाँ कर्पूरमञ्जरीकार ने विस्मित करने वाले अनेक स्थलों का उन्मुक्त रूप से प्रदर्शन करते हुए, बहुत कुछ शब्दशः उपस्थित

किया है। वही शृङ्गारमञ्जरीकार उसे शब्दश कहने की अपेक्षा, उसका वातावरण उपस्थित करने तक पहुँचकर, शेष सामाजिक की कल्पना पर छोड दिया है।

आचार्य विश्वनाथ ने मम्मट से भिन्न एक तीसरे प्रकार का भाव स्वीकार किया है, जिसमें रति आदि स्थायी भाव का उद्बोधन मात्र होता है। वे सामग्री के अभाव मे परिपुष्टि को प्राप्त नही करते। इस भाव की दृष्टि से कर्पूरमञ्जरी को देखा जाय, तो कुछ स्थलो को छोड़कर अधिकाश स्थल ऐसे ही है, जहाँ रति, हास अथवा विस्मय नामक स्थायी भावो का उद्बोधन मात्र हुआ है, वहाँ वे उद्बुद्ध स्थायी भाव परिपुष्टि को नही प्राप्त हुए है। जबकि शृङ्गारमञ्जरी मे ऐसे स्थल अपेक्षाकृत कम है। उसमे अधिकाश स्थलो पर उद्बुद्ध स्थायी परिपाक को प्राप्त करता है। विश्वेश्वर ने खुद कहा भी है कि–इस कृति मे रस के विभावादि सभी अग अच्छी तरह अवस्थित किये गये है और यह अतिशय चमत्कार उत्पन्न करने वाली है।[१] यह कथन सर्वदा सत्य है। इस प्रकार कर्पूरमञ्जरी सट्टक में भाव की प्रधानता है; जबकि शृङ्गारमञ्जरी मे रस की प्रधानता है।

●●●

---

१. सुघडिअसमत्तपत्ता विहाअसठविअसअलगा।
परमचमक्किदिजणणी तस्स अ सिंगारमजरीत्ति किदी। ।–शृङ्गारमञ्जरी–१/६

षष्ठ-अध्याय

भाषा एवं शैली-विवेचन

भाषा

कर्पूरमञ्जरी सट्टक की भाषा

शौरसेनी प्राकृत

महाराष्ट्री प्राकृत

श‍ृङ्गारमञ्जरी सट्टक की भाषा

शैली

अलङ्कार

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में अलङ्कार-निरूपण

श‍ृङ्गारमञ्जरी सट्टक में अलङ्कार-निरूपण

प्रकृति-चित्रण

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में प्रकृति-चित्रण

श‍ृङ्गारमञ्जरी सट्टक में प्रकृति-चित्रण

छन्द

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में छन्द-योजना

श‍ृङ्गारमञ्जरी सट्टक में छन्द-योजना

कर्पूरमञ्जरी तथा श‍ृङ्गारमञ्जरी सट्टकों की भाषा एवं शैली का तुलनात्मक परिशीलन

षष्ठ-अध्याय

भाषा एवं शैली-विवेचन

भाषा

यद्यपि रूपको मे आङ्गिक चेष्टाओ के माध्यम से भी विचारों का आदान-प्रदान होता है; तथापि विचारो के सवहन का महत्त्वपूर्ण माध्यम भाषा ही है। 'भाषा' उच्चारण अवयवो से निकली सार्थक शब्द परम्परा का नाम है। रूपक के पात्र भाषा का उपयोग करने पर ही, अपने विचारो को पूर्णतः अभिव्यक्ति दे पाने मे समर्थ हो पाते है। इस प्रकार भावाभिव्यक्ति के लिए वाग्-व्यापार परमावश्यक है। नाट्य मे यह वाग्-व्यापार सवाद नाम से भी जाना जाता है। चार प्रकार के अभिनयों मे वाचिक अभिनय का आधार संवाद है, जो कि भाषा द्वारा ही होता है।

विश्व मे अनेक भाषा परिवार है, जिनमे भारोपीय परिवार का अपना विशेष महत्त्व है। प्राकृत भाषा, इसी भारोपीय परिवार की एक महत्त्वपूर्ण भाषा है, जो प्राचीन भारत की लोकभाषा रही है। यह आधुनिक भारतीय भाषाओ की जननी है। अलग-अलग क्षेत्रों मे यह अलग-अलग स्वरूप मे विद्यमान थी, जिसे इसके क्षेत्रों या बोलने वाले लोगो के आधार पर भिन्न-भिन्न नाम दिये गये है। प्राकृत के प्रसङ्ग मे लगभग दो दर्जन नामो का उल्लेख मिलता है। किन्तु भाषा वैज्ञानिक स्तर पर केवल पाँच प्रमुख भेद ही स्वीकार किये जा सकते हैं—१-शौरसेनी, २-पैशाची, ३-अर्द्धमागधी, ४-मागधी, ५-महाराष्ट्री।[१]

नाट्य की स्वाभाविकता बनाये रखने एव दर्शको को पूर्णतः ग्राह्य हो सकने की दृष्टि से रूपको मे प्राकृत भाषा का प्रयोग होता रहा है। सट्टक जन-सामान्य के बीच से उद्भूत हुआ नाट्य रूप

---

१. भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ १६२

है। अतः सर्वजन-सवेद्यता हेतु पूर्णतः जन-सामान्य की भाषा का प्रयोग करने का विचार ही इस विधा के उद्भव एवं विकास का मूल कारण है। दूसरी बात यह कि—पूर्णतः प्राकृत भाषा मे महाकाव्य आदि लिखने की परम्परा प्रारम्भ हो चुकी थी। अतः उसी परम्परा मे नाट्य लिखने की महत्त्वाकाक्षा भी इस विधा की उत्पति एवं विकास का कारण बनी। पात्रो का नाम एव अभिनय सकेत के अतिरिक्त सट्टक में सर्वत्र प्राकृत भाषा का आश्रय लिया जाता है। सम्प्रति विवेच्य कृतियो मे भाषा प्रयोग विचारणीय है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक की भाषा

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में पात्रो के नाम एव अभिनय सङ्केत को छोड़कर पूर्णतः प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है। भाषा सरस एव सरल है। इसमे भाषा सम्बन्धी चर्चा के प्रसङ्ग मे यह ध्वनित होता है कि–कवि ने इसमे प्राकृत भाषा का प्रयोग किसी नाट्यशास्त्रीय वाध्यतावश नही किया है; अपितु अधिकाधिक सुकुमारता एव मृदुलता हेतु भाषा के रूप मे प्राकृत का सहारा लिया है। पूर्णतः प्राकृत मे नाट्य (या सट्टक) लिखने का यह संभवतः प्रथम प्रयोग था। इसकी सफलता ने सट्टक की भाषा के सम्बन्ध में द्वन्द्व को समाप्त कर, इसे लक्षण निर्धारक के रूप मे स्थापित कर दिया। सट्टक, क्योकि लोकजीवन के अधिक निकट है, अतः इस निकटता को अधिक सहज एव ग्राह्य बनाये रखने के लिये, इनमे प्राकृत का ही प्रयोग पूर्णरूप से प्राप्त होता है।

राजशेखर ने जैसा कर्पूरमञ्जरी सट्टक में कहा है कि–"....जिस तरह पुरुष कठोर होते है, उसी तरह सस्कृत रचनायें कठोर (कर्कश) होती हैं। और जिस तरह स्त्रियाँ सुकुमार होती हैं, उसी तरह प्राकृत रचनाएँ मधुर और सुकुमार होती हैं।[१] यह कथन वास्तविकता से अधिक दूर नही है। कर्पूरमञ्जरी मे सर्वत्र इस मधुरता एवं सुकुमारता के दर्शन होते हैं।

---

१. परुसा संक्किअबधो पाउदबंधो बि होई सुउमारो।
पुरुसमहिलाण जेत्तिअमिहंतरं तेत्तिअमिमाण।।–कर्पूरमञ्जरी–१/८

कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे झूले पर झूलती हुई सुन्दरी का रमणीय शब्दचित्र प्रस्तुत करते हुए, निम्न छन्द का पदलालित्य द्रष्टव्य है—

रणन्तमणिणेउर झणझणंतहारच्छड

कलक्कणिदकिङ्किणीमुहरमेहलाडम्बर।

विलोलवलआवलीजणिदमञ्जुसिञ्जारवं

ण कस्स मणमोहणं ससिमुहीअ हिन्दोलण।।[१]

(मणिनूपुरो की झकार से युक्त, हारावली के झण्-झण् शब्द से पूर्ण, करधनी की छोटी-छोटी घटियो के मधुर शब्द से भरा हुआ तथा चञ्चल ककणो से उत्पन्न मधुर शब्द वाला यह चन्द्रमुखी कर्पूरमञ्जरी का झूलना, किसके मन को अच्छा नही लगता?)

कर्पूरमञ्जरी मे दो प्रकार की प्राकृत भाषाओं-शौरसेनी एव महाराष्ट्री का प्रयोग प्राप्त होता है। इसका गद्य भाग शौरसेनी प्राकृत में एव पद्य भाग महाराष्ट्री मे निबद्ध है।

शौरसेनी प्राकृत

शौरसेनी प्राकृत मूलतः मथुरा या शूरसेन के आस-पास की बोली थी। संस्कृत नाटको मे गद्य की भाषा शौरसेनी ही रही है। नाट्यशास्त्र मे भी शौरसेनी के, नाटको की प्रधान भाषा होने का सकेत मिलता है-"शौरसेनं समाश्रित्य भाषा कार्यं तु नाटके।"[२] मध्यदेश की भाषा होने के कारण शौरसेनी का बड़ा आदर रहा है। इसका प्रारम्भिक रूप अश्वघोष के नाटकों में मिलता है। मध्यदेश सस्कृत का केन्द्र था, अतः शौरसेनी इससे बहुत प्रभावित है। कर्पूरमञ्जरी में प्रयुक्त शब्दों के आधार पर सस्कृत की तुलना मे शौरसेनी प्राकृत की प्रमुख विशेषताये इस प्रकार है-

(i) असयुक्त तथा दो स्वरों के बीच आने वाले 'त्' एवं 'थ्' का क्रमशः 'द्' एव 'ध्' होना।

---

१. कर्पूरमञ्जरी—२/३२

२. भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ १६३ पर सूचित

जैसे–भगति > भोदि, इत इतो > इदो इदो, कथयामि ते > कधेमि दे।

(ii) 'क्ष' के स्थान पर सामान्यतः 'क्ख' एव कहीं–कही 'च्छ' प्राप्त होता है। जैसे—प्रेक्षता देवी > पेक्खदु देवी, विचक्षणा > विअक्खणा, अक्षिणी > अच्छिणी।

(iii) 'ऋ' के स्थान पर प्रायः 'इ' एव कही–कही 'उ' प्राप्त होता है। जैसे–ईदृशोऽह > ईदिसोऽह, श्रृणु > सुणु।

(iv) सयुक्त वर्णों मे सरलीकरण की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। जैसे–दर्शन > दसण, प्रविश्य > पविसिअ, प्रिय > पिय।

(v) कर्मवाच्य मे 'य' का 'इअ' हो जाता है। जैसे–विक्रीयते > बिक्किणीअदि, कथ्यते > कसीयदि।

(vi) केवल परस्मै पद का प्रयोग मिलता है, आत्मने पद का प्रायः नही।

(vii) रूपों की दृष्टि से यह संस्कृत की ओर झुकी है। जैसे–आदरार्थ आज्ञा के रूप मे महाराष्ट्री एव अर्द्धमागधी की भाँति 'एज्ज' लगाकर 'वर्तेत' आदि शब्दो का रूप 'वट्टेज्ज' आदि नही बनता, अपितु सस्कृत की भाँति 'बट्टे' आदि बनता है।

(viii) उपर्युक्त के अतिरिक्त प्राकृत की अन्य अनेक सामान्य विशेषतायें इसमे भी मिलती है। जैसे 'व' के स्थान पर 'ब' का प्रयोग; श, ष, स के लिए मात्र 'स' का प्रयोग इत्यादि।

महाराष्ट्री प्राकृत

महाराष्ट्री प्राकृत का मूल स्थान महाराष्ट्र है। काव्य की भाषा के रूप मे इसका प्रचार पूरे उत्तर भारत में था। गाहासतसई, रावणवहो आदि कृतियाँ इसी भाषा मे है। कालिदास, हर्ष आदि के नाटकों के गीतों की यही भाषा रही है। कर्पूरमञ्जरीसट्टक के शब्दों के आधार पर महाराष्ट्री प्राकृत की प्रमुख विशेषतायें प्रस्तुत हैं।

(i) इसमें दो स्वरो के बीच आने वाली अल्पप्राण स्पर्श ध्वनियाँ (क् त् प् द् ग्) प्रायः लुप्त

हो गयी है। जैसे–प्राकृत > पाउअ, गच्छति > गच्छइ।

(ii) दो स्वरो के बीच आने वाले महाप्राण प्रार्ट स्पर्श ध्वनियो (ख् थ् फ् ध् घ्) का 'ह' हो गया है। जैसे–मुख > मुह, क्रोधो > कोहो, कथयति > कहेइ।

(iii) ऊष्म ध्वनियों स्, श्, का प्रायः 'ह्' हो गया है। जैसे—तस्य > ताह, पाषाण > पाहाण।

(iv) कर्मवाच्य मे 'य' का 'इज्ज' बनता है। जैस—गम्यते > गमिज्जइ।

(v) पूर्व-कालिका क्रिया बनाने मे 'ऊण' प्रत्यय का प्रयोग होता है। जैसे—कृत्वा > काऊण, इत्यादि।

राजशेखर के समय सस्कृत तथा प्राकृत का स्थान अपभ्रश भाषा ले चुकी थी। ऐसे समय मे सस्कृत, शौरसेनी प्राकृत तथा महाराष्ट्री प्राकृत पर समान अधिकार एव उसमे साहित्य सर्जना करना, ही कवि की विद्वत्ता का द्योतक है। कवि ने गद्य मे शौरसेनी एवं पद्य निश्चय मे महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग कर उस परम्परा को आगे बढ़ाया है, जिसका श्रीगणेश अश्वघोष, कालिदास, आदि जैसे कवियों ने किया था। महाराष्ट्री सभवतः अन्य प्राकृतो की अपेक्षा अधिक ललित एव मधुर है। यही कारण है कि पद्य मे अधिकाधिक लालित्य लाने के लिए उसमें महाराष्ट्री का ही प्रयोग होता रहा है। इसीलिए राजशेखर ने भी पद्य के लिए महाराष्ट्री को ही चुना होगा।

कर्पूरमञ्जरी की प्राकृत मे अनेक प्रान्तीय तथा देशज शब्द आये है, जिनका प्रयोग बाद मे हिन्दी भाषा में भी चल पड़ा। जैसे–चट्टि > चटाई, खिड़क्किआ > खिड़की, कहिं पि > कही भी, अज्जबि > आज भी, ढिल्ल > ढीला, उठ्ठिअ > उठकर, कोइल > कोयल, चम्म > चाम (चमड़ा), थण > थन (स्तन) आदि।

कर्पूरमञ्जरी में लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा को अधिकाधिक सरसता प्रदान कर रहा है। कुछ उदाहरण दर्शनीय है—दक्खारसो ण महुरिज्जइ सक्कराए (द्राक्षारसो न मधुरायति

१. कर्पूरमञ्जरी—२/२६

शर्कराभि:),[१] एदं त सीसे सप्पो देसन्तरे वेज्जो (इद तत् शीर्षे सर्पो देशान्तरे वैद्य:)[१], तड गदाए वि णावए न वीससीदव्व (तट गतायामपि न नावि विश्वस्यते)[२], अथवा हस्तककण कि दप्पणेण पेक्खीअदि? (अथवा हस्तकङ्कण कि दर्पणेन दृश्यते?)[३], ण कत्थूरिआ कुग्गामे बने बा विक्किणीअदि (न कस्तूरिका कुग्रामे वने वा विक्रीयते)[४], ण सुबण्ण कसवट्टिअ बिणा सिलापट्टए कसीअदि (न सुवर्णे कषपट्टिका बिना शिलापट्टके कष्यते)[५] इत्यादि। इस प्रकार निश्चय ही राजशेखर की सूक्तियाँ अमृत वर्षाने वाली है। उनका भाषा कौशल अद्भुत है। 'सर्वभाषाविचक्षण' एव 'सब्बभाषाचतुर' ये विशेषण राजशेखर के लिए उपयुक्त ही है।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की भाषा

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक प्राकृत भाषा मे निबद्ध है इसमे केवल पात्रो के नाम एव अभिनय सङ्केत सस्कृत में है। कर्पूरमञ्जरी सट्टक की भाँति इसमें भी महाराष्ट्री एव शौरसेनी प्राकृतो का ही प्रयोग हुआ है। विद्वानो ने महाराष्ट्री एव शौरसेनी का जो भेद माना है, वह इसमे पूर्णतः घटित होता है। दोनों प्राकृतो का पद्य एव गद्य में बराबर प्रयोग हुआ है, जैसे–कर्तुं के लिए एक पद्य में महाराष्ट्री का काउ[६] मिलता है तो दूसरे पद्य मे शौरसेनी का कादु[७] प्राप्त होता है। इसी प्रकार आत्मा शब्द के लिए गद्य मे महाराष्ट्री का 'अप्प' एव शौरसेनी का 'अत्त' दोनों प्राप्त होता है। एक ही पद्य में कही-कहीं महाराष्ट्री और शौरसेनी दोनो का प्रयोग भी हुआ है। जैसे–बहुमतः > बहुमओ (महाराष्ट्री)

---

१. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १४४
२. वही, पृष्ठ १५१
३. वही, पृष्ठ १९
४. वही, पृष्ठ १९
५. वही, पृष्ठ १९
६. शृङ्गारमञ्जरी–२/१७
७. वही–२/१५

एव बहुमदो (शौरसेनी)[१], भवतु > होउ (महाराष्ट्री) एव एदु (शौरसेनी)[२]।

इस सट्टक मे वररुचि-विरचित 'प्राकृतप्रकाश' के पहले अध्याय से नवे और १२वे अध्याय के अनुसार नियमित रूप अधिकतर मिलते है। स्वर मध्य क्, ग्, च्, ज्, त्, द्, प्, स्, और व् का लोप तथा प् के स्थान पर व् भी पाया जाता है। जैसे–उपक्रान्तः > उवक्कतो, विपरीते > विवरीए, इत्यादि। अपि के लिए अपि, पि, और वि; इव के लिए व्व, व, व्विअ और विअ; एव के लिए चिअ, ज्जेव; पुनः के लिए पुण, उण रूप मिलते है। इदं, अदस्, युष्मद्, अस्मद् आदि सर्वनामो के प्रायः सभी वैकल्पिक रूप 'प्राकृतप्रकाश' के अनुसार प्रयुक्त है।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे धात्वादेशो का बाहुल्य क्रियापदो मे दर्शनीय है। इसमें अधिकतर लट्, लोट् एव लृट् के परिवर्तित रूप प्रयुक्त हुए है। भू के स्थान पर हो, हुव, हव, भो आदि सभी प्रयोग मिलते है। लृट् मे हुविस्सदि, भविस्सदि, होहिइ और होज्ज के प्रयोगो का बाहुल्य है। लोट् मे होज्ज, भोदु, होउ, अच्छतु के रोचक प्रयोग उपलब्ध है।[३] इसमें कर्मवाच्य क्रियाओं का का बाहुल्य है, जो धातुओ के अन्त में 'इज्ज' और 'ईअ' जोड़ने से बने है। जैसे–विलिख्यते > विलिहिज्जइ[४], उपनीयते > उवणिज्जइ[५] आदि। प्राकृत भाषा के प्रत्ययों से बने अनेक शब्दो के उदाहरण प्राप्त होते हैं। शील के अर्थ मे 'इर' और मतुप् के अर्थ मे 'इल्ल' प्रत्यय के क्रमशः उदाहरण हैं—शोभा > सोहा + इर = सोहिरी, लोभ > लोह + इल्ल = लोहिल्ल।

मागधी प्राकृत का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। 'र्' के लिए 'ल्' का प्रयोग मागधी की

---

१. वही—१/६

२. वही—१/२८

३. शृङ्गारमञ्जरी—१/३७, ३/४२

४. वही—१/३४

५. वही—२/१२

विशेषता है, जिसका बहुशः प्रयोग हुआ है। जैसे—रोहित > लोहित, किर > किल, सप्रेरणा > सपेल्लणा, ईरिता > इलिता[१] आदि।

शृङ्गारमञ्जरी मे तत्सम, तद्भव, देशी और गढ़े हुए शब्द प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। अनेक सस्कृत शब्द ज्यो के त्यो प्रयुक्त हुए हैं, जैसे-बुद्धि, कर, समूह, विरह[२], साहस[३] इत्यादि। तद्भव का भी बाहुल्य है, जैसे—चन्द्र > चद, दृष्टि > दिट्ठि[४]। देशी शब्दो की भी भरमार है, जैसे—सुहेल्ली[५] (सहेली), उल्ल[६] (आर्द्र), अचुक्क (भ्रष्ट न होना) आदि।

शृङ्गारमञ्जरी की प्राकृत सस्कृत से अधिक प्रभावित है। क्योकि विश्वेश्वर के समय में प्राकृत भाषा का ह्रास हो चुका था। प्राकृत जन भाषा नही थी। इसलिए सट्टक की प्राकृत मे कृत्रिमता का होना स्वाभाविक है। उस समय प्राकृत के, व्याकरण के नियमो तक सीमित रहने के कारण, सट्टक की प्राकृत ग्रन्थकार के बुद्धि—व्यायाम का विषय जान पड़ती है। विश्वेश्वर का सस्कृत भाषा पर असाधारण अधिकार था। अतः सट्टक मे संस्कृत छायाशैली के प्रभाव का परिलक्षित होना स्वाभाविक है। पहले वाक्य रचना सस्कृत मे हुई जान पड़ती है, तदुपरान्त प्राकृत व्याकरण के अनुसार उसे ढाल दिया गया है। प्राकृत का जो परिनिष्ठित रूप, प्राचीन प्राकृत काव्यों में था, वह इस सट्टक मे नही मिलता। सुकुमार शब्द विन्यास, मुहावरो के साथ ललित गद्य और मनोरम पद्यो को प्राकृत मे लिखने से, प्राकृत भाषा में विश्वेश्वर की असाधारण क्षमता द्योतित होती है।

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—३/११
२. वही—२/३
३. वही—३/३६
४. वही—१/३८
५. वही—२/१०
६. वही—२/२२

शैली

भारतीय नाट्यकारो का प्रमुख उद्देश्य अभिनयात्मक रचना के द्वारा सामाजिको मे तदनुकूल रसानुभूति कराना रहा है। रस को पूर्ण परिपाक की अवस्था तक पहुँचाने के लिए, जिन बाह्य साधनो या उपकरणों की आवश्यकता होती है, उनमें अलङ्कार, छन्द, प्रकृति-चित्रण आदि का प्रमुख स्थान है। इनकी समुचित योजना से ही नाट्य अधिकाधिक चमत्कारिक, व्यवहारिक एव सरस हो पाता है। जिस प्रकार एक सामान्य कथन की अपेक्षा, भूमिका–पूर्वक सलीके से कही गयी मृदुवाणी अधिक मनोहर होती है; उसी प्रकार अलङ्कार, वस्तु-चित्रण आदि से समन्वित नाट्य की वस्तु, नेता एव रस-योजना अधिकाधिक आनन्ददायक होती है। यह बाह्य रूप को अलङ्कृत करने के साथ–साथ आन्तिरिक रूप को विकसित करती है। इसे ही कहने का ढग, तरीका, सलीका या शैली नाम से अभिहित किया जाता है। शैली के अभाव मे शरीरभूत भाषा, आत्मभूत रस एवं भाव का सौन्दर्य प्रकट नही हो पाता। सम्प्रति शैली के प्रमुख उपविभागो की दृष्टि से विवेच्य कृतियाँ विचारणीय है। साथ ही लोकजीवन से काफी निकट सम्बन्ध रखने वाले नाट्य भेद— सट्टक की प्रतिनिधि विवेच्य कृतियो में लोकशैली का किस सीमा तक दखल है? यह भी आकलनीय है।

अलङ्कार

"अलङ्करोति इति अलङ्कारः" यह अलङ्कार शब्द की व्युत्पत्ति है। इसके अनुसार शरीर को विभूषित करने वाले तत्त्व का नाम अलङ्कार है। ध्वनिवादियों ने अलङ्कार को काव्य का अस्थिर तत्त्व माना है। उनके अनुसार—'यदि अलङ्कार है तो वे काव्य के उत्कर्षाधायक होगे और यदि नही हैं तो भी काव्य की कोई हानि नहीं है।"[१] किन्तु अलङ्कारवादी आचार्य अलङ्कारों को काव्य का

१. "......सर्वत्र सालंकारौ क्वचित्तु स्फुटालङ्कारविरहेऽपि न काव्यत्वहानिः।"

—काव्यप्रकाश, मम्मट–१/४

अपरिहार्य तत्व मानते है। उनके अनुसार अलङ्कार रहित काव्य की कल्पना उष्णता रहित अग्नि की कल्पना के समान ही उपहास योग्य है।[१] ऐसे महत्त्वपूर्ण काव्यशास्त्रीय तत्त्व अलङ्कार के लिए कवियो का प्रयासरत होना स्वाभाविक है। नाट्यकार भी नाट्यो मे अलङ्कारो की छटा विखेरने के मोह को नही छोड़ पाते। विवेच्य-कृतियाँ भी अलङ्कार की दृष्टि से विचारणीय हैं।

कपूर्रमञ्जरी सट्टक में अलङ्कार-निरूपण

कर्पूरमञ्जरीकार राजशेखर रसवादी आचार्य है। वह रस को काव्य की आत्मा मानते हैं। इनकी मान्यता है कि–"स्वाभाविक सुन्दर व्यक्ति को बाह्य सजावट की आवश्यकता नही। अनोखी वेष-रचना से मूर्ख आकृष्ट होते हैं। जो अनुभवी एव चतुर है, वे स्वाभाविक सौन्दर्य पर ही मोहित होते है।"[२] स्त्रियो के आभूषण के सन्दर्भ मे उन्होने स्पष्टतः कहा है कि—"बाह्य शृङ्गार व्यर्थ है। ससार मे यह कोई और ही चीज है, जिसमे स्त्रियॉ आकर्षक लगती है।"[३]

---

१. अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मात् अनुष्णमनल कृती।।—चन्द्रालोक, जयदेव।

२. मुद्धाण णाम हिअआइँ हरन्ति हन्त!
णेवच्छकप्पणगुणेण णिअबिणीओ।
छेका उणो पकिदिचंगिमभावणिज्जा
दक्खारसो ण महुरिज्जइ सक्कराए।।
(मुग्धाना नाम हृदयानि हरन्ति हन्त!
नेपथ्यकल्पनगुणेन नितम्बिन्यः।
छेकाः पुनः प्रकृतिचङ्गिमभावनीयाः
द्राक्षारसो न मधुरायति शर्कराभिः।।)—कर्पूरमञ्जरी–२/२६

३. किं मेहलावलअणेउरसेहरेहिं? किं चंङ्गिमाअ? किमु मण्डणडम्बरेहिं?
तं अण्णमत्थि इह किंपि णिअम्बिणीओ जेणं लहन्ति सुहअत्तणमञ्जरीओ।।
(किं मेखलावलयनूपुरशेखरैः? कि चङ्गिमत्वेन? किमु मण्डनाडम्बरैः?
तदन्यदस्ताहि किमपि नितम्बिन्यो येन लभन्ते सुभगत्वमञ्जरीः।।)—कर्पूरमञ्जरी–३/१३

किन्तु यह राजशेखर की सैद्धान्तिक मान्यता मात्र ही प्रतीत होता है। व्यवहार मे वे अपनी कृति को विविध अलङ्कारों से सजाने सँवारने में परहेज करते हुए नहीं दिखाई पड़ते। यद्यपि राजशेखर द्वारा हर कही बलात् अलङ्कारो की योजना का प्रयास नही दिखाई पड़ता, फिर भी वर्णन के प्रसङ्ग मे अवसर के अनुसार उन्होने अलङ्कारो का खुलकर प्रयोग किया है। कुछ प्रमुख अलङ्कारो के प्रयोग देखे जा सकते है।

अनुप्रास—

अनुप्रास अलङ्कार[1] के अनेक सुन्दर स्थल आद्योपान्त प्रस्तुत कृति मे प्राप्त होते है। अनुप्रास का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है–

> रणन्तमणिणेउर झणझणतहारच्छड
> कलक्कणिदकिङ्किणीमुहरमेहलाडम्बर।
> विलोलवलआवलीजणिदमज्जुसिञ्जारव
> ण कस्स मणमो हण ससिमुहीअ हिन्दोलणं?।।[2]

(मणिनूपुरों की झंकार से युक्त, हारावली के झन्-झन् शब्द से पूर्ण, करधनी की छोटी–छोटी घटियों के मधुर शब्द से भरा हुआ, चञ्चल कङ्कणो से उत्पन्न मधुर शब्द वाला; यह चन्द्रमुखी कर्पूरमञ्जरी का झूलना, किसके मन को अच्छा नहीं लगता।) यहाँ ण, झ, क, व, ल, म, स आदि वर्णों की एकाधिक बार आवृत्ति हुई है, जिससे यहाँ अनुप्रास नामक शब्दालङ्कार है। साथ ही 'ससिमुहीअ' (शशिमुख्या) पद में, मुख पर चन्द्रमा का आरोप होने के कारण रूपक अलङ्कार भी है। अनुप्रास के अन्य उदाहरणो के रूप में ".....दोलालीलासरलतरलो दीसए से मुहेन्दु।"[3] "किसलअकरचरणा वि हु कुवलअणअणा मिअङ्कवअणा वि.....।"[4] "सपञ्चमतरंगिणो सवणसीअला

---

१. 'वर्णसाम्यमनुप्रासः'—काव्यप्रकाश–७९

२. कर्पूरमञ्जरी–२/३२

३. कर्पूरमञ्जरी–२/३०

४. कर्पूरमञ्जरी–२/४२

वेणुणो सम सिसिरवावारिणा वअणसीअला वारूणी....।"[1] आदि जैसे अनेक स्थलो को देखा जा सकता है।

उपमा—

उपमा अलङ्कार[2] का भी यथासम्भव राजशेखर ने आश्रय लिया है। विदूषक की निम्न गद्योक्ति मे मालोपमा की छटा दर्शनीय है– "एसो पिअवअस्सो हसो विअ विमुक्तमाणसो, करी विअ मदक्खामो, मुणालदण्डो विअ घणघम्मलिलाणो, दिणदीवो विअ विगलिदच्छाओ, पभादपुण्णिमाचन्दो विअ पंडुरपरिक्खीणो चिट्ठदि।"[3] (यह मेरा प्रियमित्र मानसरोवर से छुटे हुए हस के समान उद्विग्न मन वाला, मदस्राव से दुर्बल हाथी की तरह प्रचण्ड सूर्यातप से मुरझाये हुए कमलनाल की तरह, दिन मे कान्तिहीन दीपक की तरह तथा प्रभातकालीन पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह पीला और थका सा बैठा हुआ है।) यहाँ प्रत्येक उपमान तथा उपमेय मे भेद होने पर भी उनके साधर्म्य का वर्णन किया गया है, अतः यहाँ उपमा अलङ्कार है। कर्पूरमञ्जरी मे यत्र-तत्र उपमा के अन्य भेदो के स्थल भी प्राप्त होते हैं।

उत्प्रेक्षा—

उत्प्रेक्षा[4] के प्रति राजशेखर का विशेष लगाव प्रतीत होता है। द्वितीय जवनिकान्तर मे नायिका के झूला-झूलने के प्रसङ्ग मे कवि ने उत्प्रेक्षा की झड़ी लगा दी है। कुछ उदाहरण देखे जा सकते है—

उवरिट्ठिअथणपब्भापीडिअ चरणपकजजुअं से
फक्कार इव्व मअण रणतमणिणेउररवेण।।[5]

---

१. कर्पूरमञ्जरी–४/६

२. 'साधर्म्यमुपमा भेदे'—काव्यप्रकाश–८७

३. कर्पूरमञ्जरी, रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ५१

४. 'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्'—काव्यप्रकाश–९२

५. कर्पूरमञ्जरी–२/३३

(कर्पूरमञ्जरी के चरणकमल उपर उठे हुए स्तनो के उभार से दबकर मणिनूपुरो के शब्द द्वारा कामदेव को बुलाते हुए से लगते है।) यहाँ मणिनूपुरों के शब्दो मे कामदेव को बुलाने की सभावना की गयी है, अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

निम्न पद्यों मे भी उत्प्रेक्षा की सुन्दर छटा देखी जा सकती है—

ताडकजुअ गण्डेसु बहलघुसिणेसु घडणलीलाहि।

देई व्व दोलान्दोलणरेहाओ गणणकोदुएण।।[१]

(कर्पूरमञ्जरी के कानो मे पड़े हुए ताटक उसके कुमकुम लगे हुए कपोलो पर बार-बार लगने से ऐसे मालूम देते है, जैसे झूला-झूलने की गिनती करने के लिए रेखाये लगाते हो।)

णअणाइ पसिदिसरिसाइ झत्ति फुल्लाइँ कोदुहल्लेण।

अप्पेन्ति व्व कुवलआसलीमुहे पञ्चबाणस्स।।[२]

(कर्पूरमञ्जरी की बड़ी–बड़ी आँखे कौतूहल मे एकाएक खुली हुई ऐसी लगती है, मानो कामदेव ने नीलकमलरूपी बाण कामिपुरुषों के मन पर छोड़ दिया हो।)

विशेषोक्ति—

द्वितीय जवनिकान्तर में विशेषोक्ति अलङ्कार[३] का सुन्दर उदाहरण प्राप्त होता है—

किसलअकरचरणा वि हु कुवलअणअणा मिअङ्कवअणा वि।

अहह! णवचंपअङ्गी तह वि हु तावेइ अच्चरियं।।[४]

(नये पत्तो के समान कोमल चरणो वाली, नीलकमल के समान नेत्रो वाली, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली तथा चम्पा के नये फूल के समान मनोहर अङ्गो वाली यह कर्पूरमञ्जरी सन्ताप

---

१. कर्पूरमञ्जरी–२/३७

२. कर्पूरमञ्जरी–२/३८

३. 'विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः'—काव्यप्रकाश–१०८

४. कर्पूरमञ्जरी–२/४२

उत्पन्न करती है-यह बड़ा आश्चर्य है।) यहाँ सताप निवारण के उपायो के होने के बावजूद सताप की उत्पत्ति दिखाई गयी है। अर्थात् कारण के एकत्र होने पर भी कार्य का कथन नही हुआ है। अतः यहाँ विशेषोक्ति अलङ्कार है।

व्यतिरेक–

कर्पूरमञ्जरी मे यत्र-तत्र व्यतिरेक अलङ्कार[1] का भी सुन्दर प्रयोग किया गया है, राजशेखर द्वारा अपने विषय मे लिखा गया निम्न पद्य व्यतिरेक का सुन्दर उदाहरण है–

सो अस्स-कई सिरिराअसेहरो तिहुअण पि धबलेति।
हरिणकपालिसिद्धिए णिक्कलका गुणा जस्स।।[2]

(वह इस (सट्टक) के लेखक कवि राजशेखर हैं, जिनके निष्कलङ्क गुणों से त्रिभुवन उज्ज्वल हो रहा है। चन्द्रमा तो केवल एक भूतल को प्रकाशित करता है, ये तीनो लोको मे प्रसिद्ध है) यहाँ उपमेय राजशेखर का उपमान चन्द्रमा से व्यतिरेक अर्थात् आधिक्य वर्णन किया गया है। अत. यह व्यतिरेक अलङ्कार का उदाहरण है।

नायिका के सौन्दर्य वर्णन के सन्दर्भ मे व्यतिरेक अलङ्कार का निम्न उदाहरण अत्यन्त रोचक है–

मा कहं पि वअणेण विब्भभो होउ इत्ति तुह णूणमिन्दुणा।
लत्तणंछणच्छलमसीविसेसओ पेच्छ बिम्बफलये णिए कओ।।[3]

(तेरे मुख को देखकर लोग चन्द्रमा न समझ बैठें, इसलिए निश्चय ही चन्द्रमा ने अपने मण्डल में कलङ्क के बहाने यह धब्बा लगा दिया है, तू देख।)

---

१. 'उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः'–काव्यप्रकाश–१०५

२. कर्पूरमञ्जरी–१/१०

३. कर्पूरमञ्जरी–३/३२

स्वाभावोक्ति–

स्वाभावोक्ति अलङ्कार[1] के भी कुछ उदाहरण प्रस्तुत कृति मे प्राप्त होते हैं। इस अलङ्कार से अलङ्कृत निम्न पद्य प्रशसनीय है–

ज धोआजणसोणलोअणजुअ लग्गालअग्ग मुह
हत्थालबिदकेसपल्लवचए दोल्लति ज बिदुणो।
ज एक्क सिचअचल ण्णिबसिद त ण्हाणकेलिट्ठिदा
आणोदा इअमब्भुदेक्कजणणी जोईसरेणामुणा।।[2]

(इसकी आँखो मे अजन धुला हुआ है, आँखे लाल है, मुख पर अलके बिखरी हुई है। हाथ से अपने केशों को पकड़ी हुई है और केशो से पानी की बूँदे टपक रही है। एक ही वस्त्र से शरीर ढका है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि–स्नानक्रीड़ा के बाद योगीश्वर ने इस अपूर्व सुन्दरी को उपस्थित किया है।)

सहोक्ति–

कर्पूरमञ्जरीकार ने सहोक्ति अलङ्कार[3] का भी प्रयोग किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है–

सह दिवसणिसाहि दीहरा सासदण्डा सह मणिवलएहि बाहधारा गलन्ति।
सुहअ! तुह विओए तेअ उव्वेअणीए सह अ तणुलदाए दुव्वला जीविदासा।।[4]

(हे प्रिय! तुम्हारे वियोग मे व्याकुल हुई उस कर्पूरमञ्जरी रात और दिन के साथ-साथ श्वास दण्ड बढ़ते जा रहे हैं। मणिवलयों के साथ आँसुओं की धारा गिरने लगती है और उसकी कोमल देहलता के साथ जीवन की आशा क्षीण होती जा रही है।) यहाँ सह शब्द के अर्थ की सामर्थ्य

---

१. 'स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्'–काव्यप्रकाश–१११

२. कर्पूरमञ्जरी–१/२६

३. 'सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेक द्विवाचकम्'–काव्यप्रकाश–११२

४. कर्पूरमञ्जरी–२/९

से श्वासदण्डाः पद, दिवस-निशा आदि पदो के साथ प्रतीत हो रहा है। अतः यहाँ सहोक्ति अलङ्कार है। आचार्य मम्मट ने भी 'काव्यप्रकाश' मे सहोक्ति के उदाहरण के रूप मे इस पद्य को उद्धृत किया है।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में अलङ्कार-निरूपण

विश्वेश्वर ने शृङ्गारमञ्जरी मे सौन्दर्य-वर्धन हेतु विविध अलङ्कारो का आश्रय लिया है। कुछ प्रमुख अलङ्कारो के प्रयोग द्रष्टव्य है—

अनुप्रास—

प्रस्तुत कृति मे आद्योपान्त अनुप्रास की छटा दिखाई पड़ती है। निम्न पद्य मे उसका सुन्दर प्रयोग देखा जा सकता है—

सिविणअदसाबलेण अज्जो परकामिणीसत्तो।
अइवेल अणुहूओ तेण तहिं तारिस वुत्त।।[1]

(स्वप्न मे होने वाली दशा मे मुझे आर्य को अधिक समय तक पर-कामिनी मे आसक्त रहने का अनुभव होने से ऐसा हुआ।) यहाँ ण्, स्, त् आदि वर्णों की अनेक बार आवृत्ति हुई है, जिससे यहाँ अनुप्रास अलङ्कार है।

उपमा—

उपमा अलङ्कार के विविध प्रयोग प्राप्त होते है। विदूषक के निम्न कथन मे पूर्णोपमा का प्रयोग प्रशसनीय है—

केसरिदड्ढापडिओ फुरतओ ठेरहरिणो व्व।
मुक्को म्हि देव्वजोआ इदो वर केरिस कुसलं।।[2]

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—१/१३

२. शृङ्गारमञ्जरी—४/१०

(सिह के दाढ़ो की भयानक पकड़ मे फॅसे हुए बेचारे बूढ़े हरिण की भाँति आज मैने सौभाग्यवश छुटकारा पाया है। इससे बढ़कर और क्या कुशलता हो सकती है।) यहाँ हरिण उपमान है, विदूषक उपमेय है, मुक्त होना साधारण धर्म और इव सादृश्यवाचक शब्द है। इस प्रकार यह पूर्णोपमालङ्कार का स्थल है।

मालोपमालङ्कार के भी स्थल प्राप्त होते है। निम्न उदाहरण मे मालोपमा का प्रयोग अत्यन्त रोचक है–

दाढत्त विअ राहुणो ससि कला हसि व्व मेहतर
माअगस्स मुणालिअ व्व वअण मुत्त व्व पंकुक्कर।
तारा दारुणकेदुणो व्व उअर छाआसुअग्गासद
सपत्ता विअ रोहिणी पिअअमा दुत्थ अवत्थ गआ।।[1]

(मेरी दुलारी भी कष्ट की दुर्दशा को प्राप्त हुई है, जो राहू के दाढ़ों में आयी हुई चन्द्रकला की तरह है, बादलो के मध्य मे आयी हुई हसिनी-सी, हाथी के मुँह मे कमलनाल के समान, कीचड़ मे पड़ी हुई मोतियों के लड़ी-सी, भयानक धूमकेतु के उदर मे पड़े हुए तारे के समान और राहु का कौर बनने वाली रोहिणी की तरह है।) यहाँ नायिका की दशा को अनेक उपमानो के माध्यम से प्रस्तुत कर लड़ी-सी बना दी गयी है। इस प्रकार यहाँ मालोपमालङ्कार है।

रूपक–

कवि को विशेष रूप से प्रिय अलङ्कारों मे रूपक[2] को माना जा सकता है। कवि ने बहुशः इसका प्रयोग किया है। कुछ सुन्दर प्रयोग अवलोकनीय है–

तुह पेच्छणेण सहसा वड्ढतो मम्महहुआसो।
देहलदिआइ इतीए किं कअवंतोत्ति ण मुणामो।।[3]

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–४/६

२. 'तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः'–काव्यप्रकाश–९३

३. शृङ्गारमञ्जरी–२/४

(तुम्हारे दर्शन से अचानक भड़क उठने वाले कामानल ने उसकी देहलता को कैसा कर डाला? यह ज्ञात नही होता।) यहाँ देह मे लतिका का आरोप होने से रूपक अलङ्कार है।

निम्न पद्म मे भी रूपक का प्रयोग रोचक है–

आसाइदो वअणपुण्णसुहामऊह–

बिबावलोअणरसो णअणेहिँ एण्हि।

आअण्णणेण महुराणा सुजपिआण

सोत्ताण होउ णवर अमआहिसेओ।।[1]

(इस समय आप के आगमन से आप के अमृत किरण वाले पूर्ण मुख-चन्द्र के दर्शन का नेत्रो को आनन्द मिला। अब अपने मधुर वचनो को सुनाकर कानों मे भी अमृत का सिचन कर दे।) यहाँ मुख पर चन्द्र का आरोप किया गया है, अतः यहाँ रूपक अलङ्कार है। इसी प्रकार अन्य अनेक प्रयोग प्रस्तुत कृति में प्राप्त होते है।

उत्प्रेक्षा–

उत्प्रेक्षा अलङ्कार भी कवि को अत्यन्त प्रिय प्रतीत होता है, क्योकि इसके अनेक प्रयोग प्रस्तुत सट्टक मे दिखाई पड़ते हैं। इसके कुछ प्रयोग उदाहरणीय है–

माहवीण मउलग्गविलग्गा माणसे फुरइ छप्पअमाला।

मुत्तिआमरगअप्पवरेहि गुफिदा महुसिरीरसण व्व।।[2]

(माधवी-लताओ की छोटा-छोटी कलियों के अगले भाग पर बैठी हुई भौरो की कतार मेरे मन में स्फुरित हो रही है, मानो यह मोतियों की माला के साथ मरकतमणि की गूँथी हई वसन्तलक्ष्मी

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–४/१९

२. शृङ्गारमञ्जरी–२/१४

की करधनी हो।) यहाँ कलियो पर बैठी हुई भौरो की कतार मे वसन्तलक्ष्मी की करधनी की सभावना किया गया है, अतः यहाँ उत्प्रेक्षालङ्कार है। उत्प्रेक्षालङ्कार के अन्य कुछ स्थल देखे जा सकते है—

उम्मिल्लचम्पअकन्दंबअजाअसगा
एदे सिलीमुहगणा थिमिआ फुरति।
कादु वसे तिहुअण रइवल्लहेण
कत्थूरिआइ गुलिअ व्व हुआ हुआसे।।[१]

(खिले हुए चम्पक-पुष्पो के गुच्छो पर भौरो के झुण्ड निश्चल होकर बैठे है। लगता है मानो वे तीनो भुवनो को अपने वश मे करने के लिए कामदेव द्वारा अग्नि मे आहुत हुई कस्तूरी की गोली हो।) यहाँ चम्पक पुष्पो के गुच्छो पर बैठे भौरो मे अग्नि मे आहुत हुई कस्तूरी का उत्कटैककोटिक सन्देह किया गया है, जिससे यहाँ उत्प्रेक्षालङ्कार है। इसी प्रकार के अन्य अनेक उत्प्रेक्षालङ्कार के स्थल प्रस्तुत सट्टक में उपलब्ध है।

दृष्टान्त—

कवि ने दृष्टान्त अलङ्कार[२] से भी अपनी नाट्यकृति को अलङ्कृत किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

अविबुहविहीसिआहि ण क्खु बुहा परिहुवी अंति।
ण विलोइओ सुदो वा तिमिरेहि रइतिरक्कारो।।[३]

(निश्चय ही विद्वान मूर्खों की घुड़कियो से पराभूत नही हुआ करते, क्योकि अन्धकार द्वारा सूर्य का तिरस्कार न तो देखा गया और न सुना गया है।) यहाँ उपमान-वाक्य एव उपमेय-वाक्य मे बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है, अतः यहाँ दृष्टान्त अलङ्कार है।

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—२/१५

२. 'दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषा प्रतिबिम्बनम्'—काव्यप्रकाश—१०२

३. शृङ्गारमञ्जरी—२/२५

प्रकृति-चित्रण

प्रकृति मानव की सहचरी है। जीवन-पर्यन्त प्रकृति के सामीप्य के कारण मनुष्य का प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध हो जाता है। साहित्य जगत मे प्रकृति का आलम्बन एवं उद्दीपन दोनो ही रूपो में चित्रण प्राप्त होता है। आलम्बन रूप वाले वर्णनो मे प्रकृति स्वयं वर्ण्य रहती है तथा उद्दीपन रूप मे उसका मानव-प्रकृति के उपर उत्पन्न प्रभाव ही वर्ण्य विषय रहता है। रस के उपनिबन्धन मे कवि प्राकृतिक दृश्यो का उद्दीपन विभाव के रूप मे आश्रय ग्रहण करता है। प्रकृति के विभिन्न रूप जैसे—वन, उपवन, नदी, शैल, सूर्योदय, चन्द्रोदय, वसन्त-ऋतु, कोकिल-स्वर, मेघमाला आदि मानवीय भावों को उद्दीप्त करने वाले होते है। साहित्य मे अवसर के अनुसार प्रकृति के मजुल एव भयावह दोनो ही स्वरूपों का चित्रण प्राप्त होता है। विवेच्य-कृतियो मे भी रस के अनुकूल वातावरण के सृजन हेतु प्रकृति-वर्णनों का सहारा लिया गया है, जिनका क्रमशः विवेचन प्रस्तुत है—

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में प्रकृति-चित्रण

कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे प्रकृति-वर्णन प्रमुखता से प्राप्त होता है। राजशेखर वर्णन करने में नितान्त निपुण है। यद्यपि वर्णन नाट्य की प्रकृति के विरुद्ध होता है। फिर भी राजशेखर ने प्रकृति की सहजता, सुकुमारता, उदात्तता आदि से अपने नाट्य को सिक्त करने का मोह न छोड़ पाते हुए; वसन्त, ग्रीष्म, सन्ध्या, चाँदनी आदि के वर्णन के लिए कथा के प्रवाह में ही अनेक अवसर तलाश लिया है। उनके वर्णन लम्बे एव विविधतापूर्ण हैं। वे जिस तन्मयता से वसन्त की सुकुमारता के वर्णन में प्रवृत्त होते है; उसी मनोयोग से ग्रीष्म की भयावहता का भी वर्णन किया है।

कथा का प्रारम्भ ही वसन्त-वर्णन से होता है; जहाँ राजा, रानी, वैतालिक आदि विविध प्रकार से वसन्त-वर्णन में सन्नद्ध है; वही विदूषक भी अपनी अनूठी उक्तियो द्वारा वसन्त-वर्णन करते हुए हास्य की उद्भावना करता है। राजशेखर का वसन्त-वर्णन इतना विशद है कि विभिन्न प्रकार

के दृश्य आँखो के सामने से गुजरते हुए से दिखाई पड़ते है। चम्पा, मल्लिका एव पलास-कुसुम का सुन्दर वर्णन द्रष्टव्य है—

जादं वुंकुमपकलीढमरठीगडप्पह चपअं

थोआवट्टिअदुद्धमुद्धकलिआ पप्फुल्लिया मल्लिआ।

मूले सामलमग्गलग्गभमल लक्खिञ्जए किसुअ

पिञ्जंत भमलेहि दोहि बि दिसाभाएसु लग्गेहि ब।।[१]

(कुङ्कुम राग लगे हुए महाराष्ट्र की स्त्रियो के कपोलो की तरह चम्पा फूल पीला और लाल हो गया है। कुछ-कुछ विलोए हुए दुग्ध की तरह सुन्दर कलियो वाली मल्लिका पुष्पलता भी खिल उठी है। मूलभाग में काले वर्ण का और अग्रभाग में भौरो से युक्त पलास कुसुम ऐसा लगता है, जैसे कि उसके दोनो ओर दो भौरे बैठे हो और इसका रसपान कर रहे हो।) शैत्य, मान्द्य एव सौरभ इन तीनों गुणों से युक्त पवन का वर्णन कितना यथार्थ एव रोचक है—

लकातोरणमालिआतरलिणी कुंभुब्भवस्सास्समे

मदंदोलिअचंदणद्दुमलदाकप्पूरसंपक्किणो।

ककोलीकुलकपिणो फणिलदाणिप्पट्टणट्टाबआ

चड चुबिदतबबण्णिसलिला बाअंति चित्ताणिला।।[२]

(लङ्कानगरी के बहिर्द्वार पर स्थित मालाओ को हिलाने वाली, अगस्त ऋषि के आश्रम मे अर्थात् दक्षिण दिशा मे मन्द-मन्द हिलती हुई, चन्दन और कपूर की लताओं के सौरभ से युक्त, कङ्कोली (काली मिर्च) की लताओ को कँपाने वाली, ताम्बूलबल्लियो को मन्द-मन्द नचाने वाली और ताम्रपर्णी नदी के जल का स्पर्श लिये हुए चैत्र मास की हवाये चल रही है।)

---

१. कर्पूरमञ्जरी—१/१६

२. कर्पूरमञ्जरी—१/१७

एक तरफ कवि ग्रीष्म-ऋतु के विषय मे बड़े दिन एवं सूर्य की प्रचण्डता का नियम बनाने वाले विधि को छुरी से काट डालने के लिए कहता है,[1] वही उस ग्रीष्म की सुखप्रद स्थिति पर मुग्ध होकर उसके कल्याण की कामना करता है–

"पण्डुच्छविच्छुरिदणाअलदादलाणं साहारतेल्लपरिपेसलपोप्फलाण।
कप्पूरपसुपरिवासिदचन्दणाणं भद्द णिदाहदि असाण वअस्स! भोदु।।"[2]

(मित्र! पान की बेल के पीले रग के पत्तो से युक्त, आम, तेल और कोमल पूगफलों वाले तथा कपूर की सुगन्ध से युक्त चन्दन जिसमे खुब पाया जाता है, ऐसे गर्मी के दिनों का कल्याण हो।)

प्रथम एव द्वितीय जवनिकान्तरो का अत सायकाल के आगमन के साथ ही होता है, अतः प्रङ्गानुसार कवि को सायंकाल के वर्णन का अवसर प्राप्त हो जाता है। सायंकाल का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करने वाले निम्न पद्य में कवि के कल्पना की उत्कृष्टता दर्शनीय है–

"एअ वासरजीवपिण्डसरिसं चण्डसुणो मण्डल
को जाणाइ कहिं पि संपइ गअं एतम्मि कालंतरे।
जाआ किं च इअ पि दीहविरहा सोऊण णाहे गए
मुच्छामुद्दिदलोअण व्व णलिणी मीलन्तपङ्केरुहा।।"[3]

(सायंकाल होते ही दिन के लिए प्राणों के समान सूर्य का मण्डल कहाँ छिप गया; यह कौन जानता है। यह नलिनी भी सूर्यास्त होने पर विरहिणी-सी हो गयी है और इसके मुँदे हुए कमल देखकर ऐसा लगता है, मानो शोक से मूर्च्छा आ जाने पर मिच गयी हैं।)

तृतीय जवनिकान्तर में चाँदनी का बहुविधि वर्णन प्रशंसनीय है। "अन्धकार के लगातार बढ़ने से भूमण्डल के मलिन और वृक्ष की तरह नीले मालूम पड़ने पर, पूर्वदिशा चाँदनी से नये भोजपत्र

---

१. कर्पूरमञ्जरी–४/३

२. कर्पूरमञ्जरी–४/५

३. कर्पूरमञ्जरी–१/३५

के समान पीली हो गयी है। मुचुकुन्द फूल की केसर की शोभा के समान शोभावाली किरणो को बरसाता हुआ चन्द्रमा, देखो किस तरह धीरे-धीरे अपनी कलाओ से पूर्ण हो गया है।"[१] चाँदनी के वर्णन से सवलित निम्न पद्य देखने ही योग्य है—

> देन्ता कप्पूरपूरच्छुरणमिव दिसासुन्दरीण मुहेसु
> लण्ह जोण्ह किरन्तो भुअणजणमणोणदण चदण व्व।
> जिण्ण कन्दप्पकन्द तिहुअणकलणाकन्दलिल्ल कुणन्ता
> जादा एणङ्कपादा सअलजलहरोम्मुक्कधाराणुआरा।।[२]

(जल से भरे हुए मेघो से उन्मुक्त धाराओ जैसी चन्द्रमा की किरणे दिशा-रूपी सुन्दरियो के मुख पर कपूर के चूर्ण का लेप-सा देती हुई दिखायी देती हैं। सारे ससार के मन को प्रसन्न करने वाले चन्दन की तरह स्वच्छ और चिक्कण चाँदनी फैल रही है। शान्त कामदेव को तीनो लोको मे फैलाकार ये चन्द्रकिरणें काम का उद्दीपन कर रही है।

द्वितीय जवनिकान्तर में झूले पर झूलती हुई नायिका एवं चतुर्थ मे नृत्य की छटा का सुन्दर चित्रण कवि ने प्रस्तुत किया है। यद्यपि प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का इनमे अभाव है, फिर भी सगीतात्मक लम्बे पद्य, नादात्मक भावानुभूति एव ललित पद्य रचना में राजशेखर अग्रगण्य है।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में प्रकृति-चित्रण

शृङ्गारमञ्जरीकार ने अवसर के अनुकूल प्रकृति-वर्णन का आश्रय लेते हुए कथा को आगे बढ़ाया है। कवि प्रकृति वर्णन में सिद्धहस्त है। वर्णनो में सजीवता, स्वाभाविकता एवं उत्कृष्ट कल्पनाओ का समायोजन प्रशंसनीय है। प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण एवं सचित्र वर्णन अत्यन्त प्रभावपूर्ण है। कवि ने प्रकृति के सकुमार एवं भयावह दोनो ही रूपों का वर्णन किया है।

---

१. कर्पूरमञ्जरी—३/२५

२. कर्पूरमञ्जरी—३/२८

कथा के घटनाओ की शुरुआत वसन्त-ऋतु मे होती है, जिसकी प्रस्तावना मे सूचना मात्र दी गयी है। द्वितीय जवनिकान्तर में, मदनपूजा हेतु उपवन के मध्य से गुजरने के प्रसङ्ग मे वसन्त की सुषमा पर मोहित नायक एव विदूषक द्वारा वसन्त की सुकुमारता के वर्णन का अवसर प्राप्त होता है। वसन्त के कारण उद्यान की शोभा बढ़ गयी है। विभिन्न फूलो पर बैठे भौरो की भिन्न-भिन्न उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से किया गया वर्णन उत्कृष्ट कोटि का है। राजा कहता है—"भौरो की पक्ति वासन्ती लता की उभरी हुई कलिकाओ की पँखुड़ियो के बीच मे स्थित है, जो कामदेव की भौरो से मिलकर बनी डोरी-सी लग रही है।"[१] "माधवी लताओ की छोटी-छोटी कलियो के अग्रभाग पर बैठी हुई भौरो की कतार मन मे स्फुरित हो रही है, मानो यह मोतियो की माला के साथ मरकतमणि की गूँथी हुई करधनी हो।"[२] "चम्पक फूलो के गुच्छों पर भौरो का झण्ड निश्चल होकर बैठे है। लगता है मानो तीनो भुवनों को अपने वश में करने के लिए कामदेव द्वारा अग्नि मे आहुत की हुई कस्तूरी की गोली हो।"[३] वसन्त मे वन के अनुपम सौन्दर्य की छटा का वर्णन करने वाले निम्न पद्य मे कवि की कल्पना की उत्कृष्टता दर्शनीय है—

गुच्छेहिं सपओहर व्व भसलोहेहि सकेस व्विअं
प्पाणंति व्विअ दाहिणेण पवणेणाइव्व अमोइणा।
जपंति व्व पिईरुवेण सअला जा जपएहिं व सा
पुप्फेहि व विभूसिआ वणसिरी णिम्माइ कोदूहल।।[४]

(वनशोभा फूलों के गुच्छो से मानो उरोजों वाली बन रही है, भौंरों के समूह से केशों वाली लग रही है, अधिक सुगन्ध से पूर्ण दक्षिण पवन से श्वासों को लेती हुई-सी लग रही है। कोकिलाओं

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—२/१३
२. शृङ्गारमञ्जरी—२/१४
३. शृङ्गारमञ्जरी—२/१५
४. शृङ्गारमञ्जरी—२/२०

के आलापो से मानो बोल रही है और चम्पक वृक्षो के पुष्पो से सुशोभित होती हुई वनश्री अतिशय कौतूहल को उत्पन्न कर रही है।)

वसन्त के सुकुमार रूप का वर्णन करने के साथ-साथ उसके भीम रूप के चित्रण मे भी कवि ने कुशलता का परिचय दिया है। वही मनोहर वसन्त जो सामान्य चित्त वाले के लिए सुखद होता है; विरही व्यक्ति की दृष्टि मे कितना भयावह है। इस रूप मे वसन्त का वर्णन करने वाला निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है—

एदे चदणरुक्खसगदमहादव्वीअराहीसर-
प्पच्चुग्गिण्णहलाहलाइ व खलप्फसाउला मारुआ।
वल्लीसुं किदभूरिवेल्लणभरा बाणे पसूणेसुणो
दिद्धे कि णु कुणति हा विरहिणां सव्वाण काउ वहं।।[1]

(ये पवन चन्दनवृक्षो पर लिपटे हुए बड़े-बड़े नागराजो के मुख से निकलने वाले मानो हलाहल है, जो केवल छू लेने से (विष की तरह) बेचैनी उत्पन्न करने वाले हो रहे है। ये पवन अधिक शक्ति के साथ अपनी सुन्दर चाल के भार को लताओं पर रखते हैं। लगता है, ये निश्चय ही सभी विरही जनों के वध हेतु कामदेव के वाणो को किस प्रकार घातक बना दे रहे है।)

विश्वेश्वर के प्रकृति-वर्णन का चरमोत्कर्ष तृतीय जवनिकान्तर मे सन्ध्या एव रात्रि के वर्णन के प्रसङ्ग मे दिखाई पड़ता है। प्रदोषकाल से प्रारम्भ कर गहन अन्धकार तक का क्रमशः वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक सरस एवं ललित है। जिस प्रकार सन्ध्या के बाद क्रमशः अँधेरे की गहनता, बढ़ते हुए घनघोर अन्धकार का रूप ले लेती है। उसी प्रकार कवि भी अपने वर्णन में सन्ध्या का वर्णन करने के बाद उत्तरोत्तर अन्धकार की गहनता का वर्णन करते हुए, अंततः भयकर अंधकार के वर्णन में प्रवृत्त हुआ है। सन्ध्या का वर्णन करते हुए कहता है—"वह प्रदोषकाल प्रकट हुआ है, जो वरुण और इन्द्र के

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—२/१७

दिशामुखो को क्रमशः लाल और मलिन कर रहा है। चन्द्रकिरणो और सूर्यकिरणो से विकसित होने वाले कुमुद एवं कमलों को क्रमशः विकसित एव सकुचित कर रहा है। और जो चक्रवाकी को अपने प्रिय के अनुकूल एवं प्रतिकूल होने के आधार पर अभिसार करने वाला हो रहा है।"[१] सन्ध्या समय कुमुदो एवं कमलो की एक सी अवस्था का वर्णन अत्यन्त रोचक है—

अण्णोणाहिमुहपरम्मुहावलेहि
पत्तेहि रइअरधाउरजिएहि।
एअस्सि उअहमुहुत्तए अवत्था
जाअभोरुहकुसुमाण एक्करूआ।।[२]

(जरा देखो, इस समय एक–दूसरे की तरफ मुँह किये हुए और एक-दूसरे की ओर मुँह मोड़े हुए इन कमलो और कुमुदों की अवस्था सूर्यकिरणरूपी धातु से रंजित हुए पत्तो से एक सी हो रही है।)

सूर्य किरणों के विलुप्त होने पर कमलो की दशा का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है—"ऊपर की ओर उठने वाले ये कमलदल, सूर्य की किरणो के स्पर्श से रहित होने से, शिशिरत्व की उत्कट इच्छा से मानो एक–दूसरे के गले लग रहे हैं।"[३] घने अन्धकार के प्रसार की अनेक सुन्दर उत्प्रेक्षाओ के माध्यम से कवि ने अत्यन्त मनोहारी एवं स्वाभाविक चित्र खीचा है। ऐसा ही एक उदाहरण द्रष्टव्य है।—

मग्ग व उण्णमिअ कज्जलपव्वअम्मि
हीणं व तुल्लसमअं णअणिदिएहि।
आपूरिअं व णिबिडेहि समीभरेहि
जाअ जअं पसरिए तिमिरुक्करम्मि।।[४]

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—३/१५
२. शृङ्गारमञ्जरी—३/१८
३. शृङ्गारमञ्जरी—३/१९
४. शृङ्गारमञ्जरी—३/२९

(घने रूप मे अंधेरे के अधिक फैलने से ऐसा लग रहा है, मानो यह ससार काजल के पहाड़ पर चढ़कर डूब गया हो। एक साथ ही मानो आँखो से हीन हो चुका हो या गाढ़ी स्याही के बोझ से भरा जा चुका हो।)

निश्चय ही विश्वेश्वर के वर्णनो मे सजीवता, सरसता एवं चित्रात्मकता है। इनके वर्णनो मे अलङ्कृतता सर्वत्र विद्यमान है। वर्णनो मे कल्पना की नवीनता एव नई सूझ-बूझ विशेष प्रशसनीय है।

छन्द

नाट्य के शरीर स्थानीय तत्त्वो मे छन्द का विशेष महत्त्व है। जैसे चरण के बिना आत्मवान प्राणी मे गति नही आती, उसी प्रकार काव्य या नाट्य मे छन्द के बिना गति या प्रवाह नही आ पाता। इसीलिए छन्द को वेद का चरणयुगल कहा गया है।[1] भावो का आच्छादक होने के कारण छन्द का यह नाम सार्थक है।[2] कात्यायन ने 'सर्वानुक्रमणी' में छन्द का लक्षण दिया है– "यदक्षरपरिमाण तच्छन्दः" अर्थात्, संख्या-विशेष मे वर्णों की सत्ता छन्द है। विवेच्य-कृतियो मे छन्दो का वैविध्य दृष्टिगत होता है, जो क्रमशः प्रस्तुत है–

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में छन्द-योजना

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में कुल १४३ छन्द है, जिनमे वर्णिक एवं मात्रिक दोनो ही प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार कुल १९ प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। शार्दूलविक्रीडित राजशेखर का अत्यन्त प्रिय छन्द है, अतः क्षेमेन्द्र ने उनके शार्दूलविक्रीडित की प्रशंसा की है–

शार्दूलक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखरः।
शिखरीव परं वक्रैः सोल्लेखैरुच्चशेखरः।।[3]

---

१. 'छन्दः पादौ तु वेदस्य'।

२. 'छन्दांसि छादनात्'–यास्क

३. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास; कपिलदेव द्विवेदी द्वारा उद्धृत, पृष्ठ ४३५

आर्या, स्रग्धरा एवं वसन्ततिलका छन्दो का भी उन्होने अत्यधिक प्रयोग किया है। कर्पूरमञ्जरी मे प्रयुक्त छन्दों का विवरण इस प्रकार है—

आर्या—

कर्पूरमञ्जरी के एकतीस छन्दों में आर्या[१] का प्रयोग हुआ है। ये इस प्रकार हैं—प्रथम जवनिकान्तर मे छन्दसख्या—३, ५, ७, ८, ९, एव १०; द्वितीय जवनिकान्तर मे छन्द सख्या-१२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४२, ४३, ४८ एव ४९; तृतीय जवनिकान्तर मे छन्द सख्या-८ तथा चतुर्थ जवनिकान्तर मे छन्द सख्या-१९। कर्पूरमञ्जरी मे आर्या छन्द के प्रयोग का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है-

ससिखडमडमाण

सममोहणासाणं सुरअणपिआणं।

गिरिसगिरिदसुआणं

सघाडो वो सुहं देउ।।[२]

यहाँ आर्या के लक्षणानुसार प्रथम एव तृतीय पाद मे बारह-बारह तथा द्वितीय एव चतुर्थ मे क्रमशः अट्ठारह एवं पन्द्रह मात्राएं है।

शार्दूलविक्रीडित—

कुल तेईस पद्य शार्दूलविक्रीडित[३] छन्द मे निबद्ध है। ये इस प्रकार हैं— प्रथम जवनिकान्तर की छन्द सख्या-१, १३, १६, १७, १८, २०, २६, २९, ३२ एवं ३५; द्वितीय जवनिकान्तर की

---

१. 'यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीयचतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ।।'—श्रुतबोध-६

२. कर्पूरमञ्जरी—१/३

३. 'सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ' वृत्तरत्नाकर-३/९९

छन्द सख्या–१, ३, ८, २७, २९ एव ४६; तृतीय जवनिकान्तर की छन्द सख्या–१, ३, २५ एव २७ तथा चतुर्थ जवनिकान्तर की छन्द संख्या–४, ९ एव २३। शार्दूलविक्रीडित छन्द का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है–

ऽ ऽ ऽ।।ऽ। ऽ। ।।ऽऽऽ।ऽऽ।ऽ

सच्चे णन्ददु सज्जणाणँ सअलो वग्गो खलाण पुणो

णिच्च खिज्जदु होन्दु ब्रह्मणजणा सच्चासिहो सव्वदा।

मेहो मुञ्चदु सञ्चिद वि सलिल सस्सोचिद भूदले

लोओ लोहपरम्मुहोऽणुदिअहं धम्मे मई भोदु अ।।[१]

यहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द के लक्षणानुसार चारो चरणो में उन्नीस–उन्नीस वर्ण है; जो एक मगण, एक सगण, एक जगण, एक सगण, दो तगण एव एक गुरु के क्रम से व्यवस्थित है। इसमे बारह एव सात वर्णों पर यति है।

वसन्ततिलका–

वसन्ततिलका[२] छन्द का प्रयोग भी तेईस पद्यो में हुआ है। जैसे–प्रथम जवनिकान्तर की छन्द सख्या—१४, १९, २१, २४, २५ एवं २७; द्वितीय जवनिकान्तर की छन्द सख्या–४, ५, ६ एव २६; तृतीय जवनिकान्तर की छन्द सख्या—९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७ एव २२ तथा चतुर्थ जवनिकान्तर की छन्द सख्या—५, ८ एवं २१। कर्पूरमञ्जरी सट्टक से वसन्ततिलका छन्द का उदाहरण प्रस्तुत है—

---

१. कर्पूरमञ्जरी—४/२३

२. 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः'–वृत्तरत्नाकर–३/७८

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
छल्लंति दतरअणाइ गदे तुसारे
ईसीसि चदनरसम्मि मणः कुणति।
एणहि सुबति घरमज्झमसालिआसु
पाअंतपुंजिअपड मिहुणाइ पेच्छ।।[1]

यहाँ वसन्ततिलका छन्द के लक्षण के अनुसार चारो चरणों में चौदह-चौदह वर्ण है; जो एक तगण, एक भगण, दो जगण एवं दो गुरू के क्रम से व्यवस्थित है। इसमे पदान्त मे यति है।

स्रग्धरा-

कुल ग्यारह छन्दो मे स्रग्धरा[2] का प्रयोग हुआ है। जैसे—प्रथम जवनिकान्तर की छन्द सख्या- ४, १५ एव ३६ ; द्वितीय जवनिकान्तर की छन्द सख्या-१०, २८, ३१, ४१ एव ५०; तृतीय जवनिकान्तर की छन्द सख्या—१९ एव २८ तथा चतुर्थ जवनिकान्तर की छन्द सख्या—७। इसका एक उदाहरण देखा जा सकता है-

ऽ ऽऽऽ । ऽ ऽ । । । । ।   । । ऽ   ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
ईसारोसप्पसादप्पणदिसु बहुसो सग्गगंगाजलेहि
आ मूलं पूरिदाए तुहिणअरअलारुप्पसुत्तीअ रुद्दो।
जोण्हामुत्ताफलिल्लं णदमउलिणिहित्तग्गहत्थेहिं दोहिं
अग्घं सिग्घ ब देतो जअइ गिरिसुआपाअप केरुहाण।।[3]

यहाँ स्रग्धरा छन्द के लक्षणानुसार प्रत्येक चरण मे एक्कीस वर्ण हैं तथा प्रत्येक चरण-एक मगण, एक रगण, एक भगण, एक नगण एवं तीन यगण के क्रम से व्यवस्थित है। इसमें सात-सात वर्णों पर यति है।

---

१. कर्पूरमञ्जरी—१/१४

२. 'मभ्नैर्यानां त्रयेण, त्रिमुनियतियुता, स्रग्धरा कीर्तितेयम्'-वृत्तरत्नाकर-३/१०३

३. कर्पूरमञ्जरी—१/४

रथोद्धता—

कुल आठ छन्दो मे रथोद्धता[1] का प्रयोग हुआ है। जैसे-प्रथम जवनिकान्तर की पद्य सख्या-११; द्वितीय जवनिकान्तर की पद्य सख्या—७; तृतीय जवनिकान्तर की पद्य सख्या—२१, २४, ३१, ३२, ३३ एव ३४। निम्न पद्य मे रथोद्धता का प्रयोग द्रष्टव्य है—

ऽ।ऽ।।।ऽ।ऽ।ऽ

केअईकुसुमपत्तसंपुडं

पाहुड तुअ सहीअ पेसिद।

एणणाहिमसिवण्णसोहिणा

त सिलोअजुअलेण लञ्छिद।।[2]

यहाँ रथोद्धता के लक्षण के अनुसार प्रत्येक चरण मे ग्यारह-ग्यारह वर्ण है; जो एक रगण, एक नगण, एक रगण, एक लघु एव एक गुरु के क्रम से व्यवस्थित है। पदान्त मे यति है।

मालिनी—

कुल सात पद्यों में मालिनी[3] छन्द का प्रयोग हुआ है। ये इस प्रकार है—द्वितीय जवनिकान्तर की पद्य सख्या—९, २४ एव ४४; तृतीय जवनिकान्तर की पद्य संख्या—२, ७ एव १८ तथा चतुर्थ जवनिकान्तर की पद्य संख्या—२०। निम्न पद्य मे मालिनी का प्रयोग देखा जा सकता है—

।। ।।।। ऽ ऽ ऽ । ऽऽ।ऽऽ

भुअणजअपडाआ रूअसोहा इमीए

जह जह णअणाणं गोअरे जस्स जाइ।

वसइ मअरकेदू तस्स चित्ते विचित्तो

वलइअधणुदडो पुखएहिं सरेहिं।।[4]

---

१. 'रान्नराविह रथोद्धता लगौ'-वृत्तरत्नाकर-३/३९

२. कर्पूरमञ्जरी—२/७

३. 'ननमययुतेयं, मालिनी भोगिलोकैः'-वृत्तरत्नाकर-३/८३

४. कर्पूरमञ्जरी—४/२०

यहाँ मालिनी छन्द के लक्षणानुसार प्रत्येक पाद मे पन्द्रह वर्ण है; जो दो नगण, एक मगण एव दो यगण के क्रम से व्यवस्थित है। यहाँ आठ एव सात वर्णों पर यति है।

अन्य छन्द—

कुल चार पद्यो— १/२२, ३/५, ३/६ एव ४/१० मे इन्द्रवज्रा छन्द; सात पद्यो—१/३४, २/३२, २/४७, ३/२०, ३/२६, ४/३, एव ४/६ मे पृथ्वी छन्द; पाँच पद्यो—१/३०, १/३३, २/२, २/२३, एव २/३० मे मन्दाक्रान्ता छन्द; सात पद्यो—१/२८, १/३१, २/२५, ४/११, ४/१२, ४/१३ एव ४/१५ मे उपजाति छन्द; पाँच पद्यो—१/१२, ४/१६, ४/१७, ४/१८, एव ४/२२ मे स्वागता छन्द तथा दो पद्यो—१/२ एव ४/१ मे पुष्पिताग्रा छन्द का प्रयोग हुआ है। इसके अलावे कुछ छन्दो का प्रयोग मात्र एक बार ही हुआ है। जैसे—२/४५ मे उपगीति, ४/१४ मे उपेन्द्रवज्रा, १/६ मे गीति, ३/४ वशस्थ, ३/२९ मे शशिवदना, १/२३ मे शालिनी तथा २/११ मे शिखरिणी है।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में छन्द-योजना

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे उन्नीस प्रकार के, कुल १६९ छन्द प्राप्त होते है। इसमे वर्णिक एव मात्रिक दोनो ही प्रकार के छन्द है। आर्या छन्दो की संख्या सर्वाधिक है। इस छन्द के प्रति विश्वेश्वर की विशेष अभिरुचि जान पड़ती है। वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, उपगीति एवं गीति छन्दो का भी अधिक प्रयोग दिखाई पड़ता है। प्रयुक्त छन्दो का विवरण इस प्रकार है—

आर्या—

कुल अढ़तीस छन्दो मे आर्या का प्रयोग प्राप्त होता है। यथा—प्रथम जवनिकान्तर की छन्द सख्या—५, ७, ८, १०, १४, १५, २१, २३, २७, ३०, ३१, ३२, ३३ एव ३९; द्वितीय जवनिकान्तर की पद्य सख्या—३, ९, २२, २७, २९, ३४ एवं ३५; तृतीय जवनिकान्तर पद्य की संख्या—६, ७, १२, २२, २७, २८, ३०, ३७, ४०, ४२, ४९ एवं ६१ तथा चतुर्थ जवनिकान्तर की छन्द सख्या—३, ८, १०, १२ एव २२ में आर्या छन्द का प्रयोग हुआ है।

भासाविसेसजाणिरि

सुविदिदसेलूसततपरमत्थे।।

बहुवण्णिआसुणिउणे

उवेहि सहसा इदो अज्जे।।[1]

यहाँ आर्या छन्द के लक्षणानुसार प्रथम एव तृतीय चरण मे बारह-बारह तथा द्वितीय एव चतुर्थ चरण मे क्रमशः अठ्ठारह एव पन्द्रह मात्राये है।

वसन्ततिलका—

शृङ्गारमञ्जरी के कुल तीस पद्य वसन्ततिलका छन्द मे निबद्ध हैं। ये है—प्रथम जवनिकान्तर की पद्य सख्या—१७, १८ एव ३५; द्वितीय जवनिकान्तर की पद्‌य सख्या—८, १३, १५, १८, २१, ३३, ३७ एव ३९; तृतीय जवनिकान्तर की श्लोक सख्या—४, १५, १७, २३, २५, २९, ३६, ४१, ४३, ४५, ४८, ५३, ५५, ५८ एवं ६० तथा चतुर्थ जवनिकान्तर की पद्य सख्या—१९, २१ एव २३। निम्न पद्य मे वसन्ततिलका का लक्षण द्रष्टव्य है—

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
बाहुज्झरो वि लिहिअ लिहिअं ज रेह

आपुसइ क्खलइ ताइ मण भरंतं।

णो लेहणी परमवेविरअसुलिम्मि

पाणिम्मि ठाइ कहमेत्थ अ कि लिहिस्स।।[2]

यहाँ वसन्ततिलका के लक्षणानुसार प्रत्येक चरण मे चौदह वर्ण है; जो एक तगण, एक भगण, दो जगण एव दो गुरु के क्रम से व्यवस्थित हैं। इसमें पदान्त में यति है।

---

१ शृङ्गारमञ्जरी—१/५

२. शृङ्गारमञ्जरी—१/३५

शार्दूलविक्रीडित–

कुल छब्बीस पद्य शार्दूलविक्रीडित छन्द मे निबद्ध है; जो इस प्रकार है–प्रथम जवनिकान्तर की पद्य सख्या–१, २, १२, २८, ३६ एव ३८; द्वितीय जवनिकान्तर की पद्य सख्या–२, ७, १२, १७, २०, २३, ३६, ४० एव ४१; तृतीय जवनिकान्तर की पद्य सख्या–२, ९, १०, १५ एवं ५६ तथा चतुर्थ जवनिकान्तर की पद्य सख्या–१, २, ५, ६, १५ एवं २५। इसका उदाहरण प्रस्तुत है–

ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ

णाणारूअकइत्तणप्पणअणे अव्वाहओ सव्वओ

सव्वगे कअचव्वणे वि अहिले कव्वाअमे अव्वण।

चक्कीण कुलचक्कवट्टिभणिईचक्के अचुक्कट्ठिदी

आचक्खीअदि अक्खवाअवअणाहिक्खावणे अक्खओ।।[१]

यहाँ प्रस्तुत छन्द के लक्षणानुसार प्रत्येक चरण मे उन्नीस वर्ण है; जो एक मगण, एक सगण, एक जगण, एक सगण, दो तगण एव एक गुरु के क्रम से व्यवस्थित है। इसमे बारह एवं सात वर्णों पर यति है।

गीति–

शृङ्गारमञ्जरी के कुल उन्नीस पद्य गीति[२] छन्द मे है। जैसे–प्रथम जवनिकान्तर की पद्य सख्या–४, ६, १६, २६ एवं २९; द्वितीय जवनिकान्तर की पद्य सख्या–५, १०, ११, १९, २४, ३० एव ३१ तथा तृतीय जवनिकान्तर की पद्य सख्या–१४, ३२, ४४, ४६, ४७, ५१ एवं ६२। इसके उदाहरण रूप मे निम्न पद्य द्रष्टव्य है–

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–१/१२

२. 'आर्यापूर्वार्द्धसमं द्वितीयमपि यत्र भवति हंसगते।
छन्दोविदस्तदानी गीतिं तामभृतवाणि! भाषन्ते।।'–श्रुतबोध–७

सरिसेसु वि वण्णेसु

इत्थी अक्खरविसेसओ अण्डणो।

तत्थ वि होइ अवतर

जाई जाए मुणिज्जई विसेसो।।[१]

यहाँ गीति के लक्षणानुसार प्रथम एव तृतीय चरण मे बारह-बारह तथा द्वितीय एव चतुर्थ चरण मे अट्ठारह-अट्ठारह मात्राये है।

उपगीति—

उन्नीस पद्यो मे उपगीति[२] छन्द है। जैसे-प्रथम जवनिकान्तर की पद्य सख्या १३ एव २०; द्वितीय जवनिकान्तर की पद्य सख्या-४, ६, २५ एव २८; तृतीय जवनिकान्तर की पद्य सख्या— १, १३, १६, १९, २०, ३१, ३४, ३५, ३८, ५२ एव ५९ तथा चतुर्थ जवनिकान्तर की पद्य सख्या १८ और २०। इसका एक उदाहरण देखा जा सकता है—

तुह पेच्छणेण सहसा

वड्ढतो मम्महहुआसो।

देहलदिआइ इतीए

कि कअवतोत्ति ण मुणामो।।[४]

यहाँ उपगीति छन्द के लक्षणानुसार प्रथम एव तृतीय चरण मे बारह-बारह और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण मे अट्ठारह-अट्ठारह मात्राये हैं।

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—१/४

२ 'आर्योत्तरार्द्धतुल्यं प्रथमार्द्धमपि प्रयुक्तश्चेत् ।
कामिनि! तामुपगीतिं प्रकाशयन्ते महाकवयः ।।'-श्रुतबोध-८

३. शृङ्गारमञ्जरी—२/४

अन्य छन्द—

कुल सात पद्यो—१/३, १/१९, १/२४, १/२५, ३/३, ३/११ एव ४/१६ मे पृथ्वी छन्द; सात पद्यो—२/३२, ३/८, ३/२१, ३/३३, ३/३९, ३/५४ एवं ४/११ मे मालिनी छन्द; छः पद्यो—१/९, २/२६, ३/५७, ३/६३, ४/९, एव ४/१४ मे उद्‌गीति छन्द; तीन पद्यो—१/४०, ४/१७ एव ४/२४ मे मन्दाक्रान्ता छन्द; तीन पद्यो—१/३४, १/३७ एव ३/५० मे औनुपच्छन्दसिका; दो पद्यो २/१ एव ३/१८ मे प्रहर्षिणी तथा दो पद्यो— ३/२६ एव ४/४ मे शिखरिणी छन्दो का प्रयोग हुआ है। कुछ छन्द मात्र एक बार ही प्रयुक्त हुए है, जैसे–३/१४ मे उपजाति, ४/१३ मे दण्डक, १/२२ मे पुष्पिताग्रा, ४/७ मे मजुभाषिणी, १/२ मे वैतालीय, २/१६ मे स्रग्धरा एव २/१४ मे स्वागता छन्दो का प्रयोग हुआ है।

छन्द सम्बन्धी उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है, कि—लोक-भाषा-प्राकृत मे रचना करने के बावजूद, राजशेखर एव विश्वेश्वर दोनो ही सट्टककारो ने अपनी कृतियो मे उन्ही छन्दो का प्रयोग किया है, जिनका प्रयोग अब तक के सस्कृत-भाषा के कवि करते रहे है। यद्यपि 'प्राकृतपैगल' से अनेक प्रकार के प्राकृत-भाषा के छन्दों के अस्तित्व के विषय में जानकारी होती है, किन्तु राजशेखर एव विश्वेश्वर को उन सबका प्रयोग अभिप्रेत नही था। हाँ इतना अवश्य है, कि प्राकृत कवियों मे लोकप्रिय आर्या छन्द का प्रयोग इन दोनो ही कवियो द्वारा हुआ है। सट्टक के लोक-विधा से सम्बन्धित होने के कारण इनसे ग्राम्य-छन्दों या गीतो के प्रयोग की अपेक्षा की जा सकती थी; परन्तु ऐसे अशास्त्रीय छन्दो या गीतो का प्रयोग विवेच्य-कृतियों में प्राप्त नहीं होता। दोनों ही नाट्यकारो ने उन प्रसिद्ध छन्दो का ही आश्रय लिया है, जो अधिक व्यवहृत होते रहे है। दोनों ने ही बड़े–बड़े छन्दो का खुलकर प्रयोग किया है। यद्यपि नाटकीय दृष्टि से बड़े छन्द अनुपयुक्त होते है, तथापि वर्णन की दृष्टि से उपयोगी है। बड़े छन्दो के माध्यम से कवियो ने अपने भावों,क्लिष्ट कल्पनाओ और वर्णनों को अधिक व्यापक रूप में चित्रित करने मे सफलता पायी है। इन बड़े छन्दों के प्रयोग कवियो की प्रौढ़ता और विदग्धता के परिचायक है।

कर्पूरमञ्जरी तथा शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों की भाषा एवं शैली का तुलनात्मक परिशीलन

कर्पूरमञ्जरी एव शृङ्गारमञ्जरी दोनो मे ही सट्टक, प्राकृत भाषा मे निबद्ध है। दोनो मे शौरसेनी एव महाराष्ट्री प्राकृत का आश्रय लिया गया है, परन्तु दोनो मे प्रमुख अन्तर यह है, कि–जहाँ कर्पूरमञ्जरी सट्टक का गद्य भाग शौरसेनी प्राकृत मे एव पद्य भाग महाराष्ट्री प्राकृत मे निबद्ध है; वहीं शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे दोनो ही प्राकृतो का प्रयोग, गद्य एव पद्य दोनो में समान रूप से मिलता है। साथ ही कही-कही पर एक ही वाक्य मे, शौरसेनी एव महाराष्ट्री दोनो ही प्राकृतो का खिचड़ी रूप मे प्रयोग भी मिलता है। ध्यातव्य है कि राजशेखर के समय, प्राकृत-भाषा जनसामान्य के काफी नजदीक की भाषा थी। यद्यपि जन-साधारण मे अपभ्रश का प्रयोग प्रारम्भ हो चुका था, फिर भी लोक-जीवन मे प्राकृत का सस्कार अभी ताजा था। अतः लोगो द्वारा इसे हृदयगम करने मे कोई कठिनाई नही थी। दूसरी तरफ विश्वेश्वर के समय प्राकृत, जन-भाषा से काफी दूर हो चुकी थी। अतः स्वय विश्वेश्वर को भी काफी प्रयास से इसे सीखना पड़ा होगा। यही कारण है कि—जहॉ राजशेखर प्राकृत के दोनों ही रूपो मे, गद्य एव पद्य मे अलग-अलग रचनाये करने मे कुशलता का परिचय दिये है; वही विश्वेश्वर चाहकर भी ऐसा नही कर पाये है; एवं उनके द्वारा इसका खिचड़ी रूप ही प्रस्तुत हो पाया है। अनेक सस्कृत शब्दो को ज्यो का त्यो रख देने के लिए भी वे विवश हुए है। कुछ शब्दो को विश्वेश्वर को स्वय गढ़ना भी पड़ा है। विश्वेश्वर की भाषा पर मागधी प्राकृत का भी प्रभाव है, जबकि राजशेखर इससे मुक्त है। वैसे राजशेखर एव विश्वेश्वर दोनों ने ही देशज शब्दों को स्थान दिया है।

राजशेखर की भाषा मुहावरेदार एव स्वाभाविक प्रवाह से पूर्ण है; जबकि विश्वेश्वर की भाषा कृत्रिमता से युक्त एवं संस्कृत से अधिक प्रभावित है। फिर भी अपने बुद्धि-व्यायाम के बल पर विश्वेश्वर ने ललित गद्य एव मनोरम पद्य को प्राकृत भाषा मे लिखकर, अपनी असाधारण क्षमता को प्रदर्शित

किया है।

शैलीगत वैशिष्ट्य की दृष्टि से, कपूरमञ्जरी एव शृङ्गारमञ्जरी दोनो ही उत्कृष्ट है। यद्यपि राजशेखर रसवादी आचार्य है, फिर भी अपनी रचना को अलङ्कारों से अलङ्कृत करने मे पीछे नही हटे है। उन्होने अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, विशेषोक्ति, व्यतिरेक, स्वाभावोक्ति, सहोक्ति आदि अलङ्कारो का खुलकर प्रयोग किया है। वही विश्वेश्वर ने भी अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि अलङ्कारो से अपनी रचना को सजाया है। जहाँ राजशेखर का उत्प्रेक्षा के प्रति विशेष लगाव प्रतीत होता है, वही विश्वेश्वर मे रूपक मे प्रति विशेष आग्रह दिखाई पड़ता है।

राजशेखर एव विश्वेश्वर दोनो ने ही, कथा के विकास एव प्रस्तुति हेतु, प्रकृति-चित्रण का सहारा लिया है। प्रकृति-चित्रण वस्तुतः काव्य का विषय रहा है। नाट्य की प्रकृति के विपरीत होने के बावजूद राजशेखर ने प्रमुखता से प्रकृति-चित्रण किया है। नाट्यो मे या उससे भी बढ़कर सट्टक मे प्रकृति-चित्रण करने का प्रयोजन यह रहा होगा, कि—सामान्य-जन, जो सामान्यतः अशिक्षित एव अनपढ़ होते थे जो; काव्यो मे वर्णित प्रकृति-वर्णन का आनन्द उठा पाने में असमर्थ थे; वे भी वह आनन्द प्राप्त कर सके, जो काव्य का सुशिक्षित पाठक प्राप्त करता है। राजशेखर ने कथा के प्रवाह मे ही वसत, ग्रीष्म, सन्ध्या, चाँदनी आदि के वर्णन के अनेक अवसर तलाश लिये है। परन्तु अत्यधिक प्रकृति-वर्णन कथा के प्रवाह मे अवरोध उपस्थित करता है, दर्शको को उबन-सी होने लगती है। वही विश्वेश्वर का प्रकृति- वर्णन सीमित, संतुलित एव प्रसङ्गानुसार है; जो कथा के विकास के लिए अति आवश्यक सा प्रतीत होता है। कर्पूरमञ्जरी के प्रकृति-वर्णन सम्बन्धी कुछ पद्यों को निकाल दिये जाने पर भी, मूलकथा की प्रकृति पर कोई असर पड़ता हुआ प्रतीत नही होता; जबकि शृङ्गारमञ्जरी के प्रकृति-वर्णन सम्बन्धी पद्यों के विलोपन से वह अधूरी एव अपङ्ग-सी हो सकती है। दोनो ही कृतियो के सन्दर्भ मे यह विशेष रूप से कहा जा सकता है, कि—इनमे प्रकृति को सामान्य रूप से उद्दीपन रूप मे ही वर्णित किया गया है। इनके द्वारा विभिन्न प्रसङ्गों

के अनुकूल परिवेश निर्माण का कार्य ही अधिकतर लिया गया है। इनमे प्रकृति के सवेदनशील पक्ष को उकेरने का कोई प्रयास दिखाई नही पड़ता। प्रकृति-वर्णन मे सूक्ष्म निरीक्षण की दृष्टि से शृङ्गारमञ्जरी, कर्पूरमञ्जरी की अपेक्षा उत्कृष्ट कोटि की प्रतीत होती है।

दोनो ही कृतियो मे विविध प्रकार के मात्रिक एवं वर्णिक छन्दो का प्रयोग हुआ है। आर्या, वसन्ततिलका एव शार्दूलविक्रीडित दोनो के ही प्रिय छन्द है। कर्पूरमञ्जरीकार ने स्रग्धरा, रथोद्धता, मालिनी आदि छन्दों को भी प्रमुखता से अपनाया है, वही शृङ्गारमञ्जरीकार मे गीति एवं उपगीति छन्दो के प्रति विशेष लगाव है। दोनो ही कृतियो मे सामान्यतः वर्णनात्मक प्रसङ्गो में बड़े–बड़े छन्दो का प्रयोग हुआ है; जबकि भावपूर्ण एव वार्तालाप के प्रसङ्गो मे छोटे–छोटे छन्दो का प्रयोग परिलक्षित होता है। प्राकृत-भाषा के काव्यों मे आर्या छन्द का प्रयोग विशेष रूप से लोकप्रिय रहा है। क्योकि आर्या छन्द मे कम आकार होने के बावजूद गभीरभाव भरलेने की विलक्षण क्षमता रही है। यही कारण है कि यह धीरे–धीरे नाट्यो मे भी लोकप्रिय होता गया एव गभीर भावो के सवहन का माध्यम बना। कर्पूरमञ्जरी एव शृङ्गारमञ्जरी दोनो ही कृतियो में आर्या छन्द का प्रमुखता से प्रयोग हुआ है, तथा विशेषकर गभीरभावो के द्योतन हेतु इसका आश्रय लिया गया है। इस प्रकार दोनो ही रचनाओ में छन्दो का वैविध्य सराहनीय है।

प्रस्तुत सट्टको मे लोकशैली की सभावना का जहॉ तक प्रश्न है, तो यद्यपि यह विधा लोकशैली की ही उपज है; परन्तु विवेच्य कृतियो मे लोकशैली का रूप सुरक्षित नही रह पाया है। अपवादस्वरूप कुछ दृश्य विधान एवं परिवेश को छोड़ दिया जाय तो कुल मिलाकर इनमे लोकशैली का पूर्णतः अभाव है। शैली के प्रत्येक स्तर पर नाट्य लेखन एव प्रस्तुति का वही तरीका अपनाया गया, जो परम्परागत नाटको, प्रकरणो आदि मे व्यवहृत था। वही प्रकृति-चित्रण-परम्परा, वे ही अलङ्कार एव छन्द प्रस्तुत कृतियो मे प्राप्त होते हैं; जिनका अब तक के लक्षण ग्रन्थकारों ने विधान किया था तथा लक्ष्य ग्रन्थकारो द्वारा व्यवहार में लाया गया था।

●●●

सप्तम-अध्याय

सांस्कृतिक-विवेचन

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में सांस्कृतिक प्रतिबिम्ब

नारी दशा

विवाह व्यवस्था

रूढ़-प्रक्रिया के रूप में दोहद

वस्त्राभरण एवं शृङ्गारप्रसाधन

वर्ण व्यवस्था

धार्मिक दशा

अन्तःपुर की दशा

मनोरञ्जन

सामान्य सामाजिक तथ्य एवं व्यवहार

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में सांस्कृतिक प्रतिबिम्ब

नारी दशा

विवाह व्यवस्था

वस्त्राभरण एवं शृङ्गारप्रसाधन

वर्णाश्रम व्यवस्था

धार्मिक दशा

अन्तःपुर की दशा

सामान्य सामाजिक तथ्य एवं व्यवहार

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी के सट्टकों में चित्रित समाज का तुलनात्मक परिशीलन

सप्तम-अध्याय

सांस्कृतिक-विवेचन

साहित्य और समाज का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है क्योकि अपने परिवेश से प्रभावित कवि अपने सृजन मे जाने अनजाने उसका चित्रण किये बिना नही रह पाता। फलतः कवि अपने काल विशेष के विषय मे प्रत्यक्षतः कुछ न कहता हुआ भी बहुत कुछ कह जाता है। जहाँ तक नाट्य साहित्य की बात है, वहाँ तो कवि का आग्रह मुख्यतः रसाभिव्यक्ति के प्रति ही होता है। किन्तु उस रसाभिव्यक्ति के लिए आवश्यक विभावानुभावव्यभिचारी के चित्रण हेतु सामग्रियाँ, वह समाज में डुबकी लगाकर ही एकत्रित कर पाता है। परिणामतः उसका साहित्य समाज को दर्पण की भाँति प्रतिबिम्बित करने लगता है। विवेच्य-कृतियो मे तत्कालीन समाज के प्रतिबिम्ब का अवलोकन प्रसङ्गोपात्त है। समाज के पूर्णावलोकन के बिना तत्कालीन सास्कृतिक स्तर का आकलन नही किया जा सकता; क्योकि समाज की उत्कृष्टतम् उपलब्धियाँ ही सस्कृति है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में सांस्कृतिक प्रतिबिम्ब

कर्पूरमञ्जरी सट्टक दशावी शताब्दी की रचना है। इसमे तत्कालीन नारी दशा, विवाह सस्था, धार्मिक स्थिति, लोक-विश्वास, मनोरञ्जन, क्रीड़ा-विनोद, कला-कौशल इत्यादि की स्पष्ट झलक मिलती है, जिनका विवेचन इस प्रकार है—

नारी दशा—

समुदाय विशेष की सांस्कृतिक उन्नति अथवा अवनति का आकलन नारी के प्रति सामान्य-जन के दृष्टिकोण से किया जा सकता है। नारी-वर्ग के प्रति अनास्था समाज की हीनता का द्योतक है। भारतीय सभ्यता के अरुणोदय से ही समाज मे नारी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कालिदास,

भास, भवभूति आदि प्रारम्भिक कवियो ने नारी की प्रतिष्ठा को यथावत रखा था; किन्तु कर्पूरमञ्जरी मे नारी के चित्रण से उसकी सम्मानपूर्ण स्थिति का सङ्केत नहीं मिलता। इस सन्दर्भ मे यह बहाना भी उचित नही कि—सट्टक का वस्तु विन्यास ही कुछ इस प्रकार का है, कि नारी को भोग्या से इतर रूप मे चित्रित कर पाना कठिन है। नाटिका या सट्टक की प्रकृति के ही कथानक वाले मालविकाग्निमित्रम् की ज्येष्ठा नायिका महारानी धारणी के महनीय चरित्र को यदि देखे तो यह मानना पडेगा कि—कालिदास और राजशेखर के समाज मे पर्याप्त अन्तर है। राजशेखर का ध्यान नायिकाओ के चरित्राङ्कन की अपेक्षा उनके सौन्दर्य-वर्णन मे अधिक रमा हुआ है, जो नारी को मात्र भोग की वस्तु समझने की मानसिकता का द्योतक है।

विधिवत परिणीता सुन्दर पत्नी के रहते हुए भी दूसरी अद्वितीय स्त्री-रत्न की खोज मे लगे रहने की प्रवृति राजाओ मे पायी जाती है।[१] राजकुल मे ऐसी योगियो को सम्मान प्राप्त है; जो न मन्त्र जानता है न तन्त्र। ज्ञान-ध्यान से भी जिसका कोई नाता नही; मद्यपान एव युवतियो से सहवास ही जिसके मोक्ष का साधन एव कुलाचार है।[२] जो योगबल से प्रयोजन विशेष हेतु युवती का अपहरण करते है।[३] और आश्चर्य है कि ऐसे ही व्यक्ति महारानी के धर्मगुरु भी है।[४]

धार्मिक आचार व्यवहार एव पूजा प्रथा मे नारी की पूर्ण आस्था है, जैसा कि देवी द्वारा गौरी पूजा[५] तथा वटसावित्री उत्सव मनाने का उल्लेख हुआ है। मञ्च पर नारी द्वारा अभिनय करने की परम्परा का भी सकेत कर्पूरमञ्जरी मे मिलता है; जब पारिपार्श्विक कहता है कि—महाराज की भूमिका आर्य सूत्रधार एव देवी की भूमिका आर्य भार्या को करनी है।[६] चतुर्थ जवनिकान्तर

---

१. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ३०–३१
२. कर्पूरमञ्जरी—१/२२
३. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ३१
४. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १४३
५ कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ७० एव १४३
६ कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १०

मे नृत्य के प्रसङ्ग मे स्त्रियो द्वारा वाचिक एव आहार्य अभिनय करने का सङ्केत प्राप्त होता है। जैसा कि वर्णन है—कुछ स्त्रियाँ....हुकाररूप मे सियारो का सा शब्द करती हुई तथा रौद्ररूप बनाकर राक्षसियो के चेहरे लगाकर श्मशान का अभिनय करती है।[३] कर्पूरमञ्जरी की प्रस्तावना से यह विदित होता है कि राजशेखर की धर्मपत्नी अवन्तिसुन्दरी के आदेश पर सर्वप्रथम कर्पूरमञ्जरी सट्टक का मञ्चन किया गया था।[४] स्पष्ट है कि—एक तरफ पुरुष वर्ग का दृष्टिकोण नारी के प्रति सकुचित था, तो दूसरी तरफ नारी विभिन्न समारोहो एव अवसरो पर अपनी सहभागिता सुनिश्चित करने के प्रति सजग थी।

विवाह व्यवस्था—

कर्पूरमञ्जरी सट्टक से तत्कालीन विवाह पद्धति के विषय मे पर्याप्त जानकारी होती है। इसके अध्ययन से स्पष्ट है कि प्राप्त यौवना होने पर ही कन्या के विवाह का प्रचलन था। नायिका कर्पूरमञ्जरी युवावस्था को प्राप्त है, अन्यथा नायिका की कामनाओ का वर्णन सभव ही नही हो सकता। नायक और नायिका दोनो समान रूप से परस्पर तारुण्य सुलभ आकर्षण से अभिभूत है; ज्येष्ठा नायिका से डरे हुए छुप—छुपकर एक—दूसरे से मिलते है, जिसकी परिणति विवाह की व्यवस्था के रूप मे होती है।

विवाह के सम्बन्ध मे दूसरा तथ्य जो ध्यान आकर्षित करता है, वह है पतिगृह मे कन्या का विवाह सम्पन्न होना। अर्थात् समाज मे ऐसी परम्परा थी जब कन्या विवाह से पूर्व ही पतिगृह पहुँच जाती थी, जहाँ कन्या के सगे सम्बन्धियो की अनुपस्थिति में ही उसका विवाह सम्पादित होता था। भारतीय परम्परा मे विवाह की आठ विधियाँ मानी गयी है; किन्तु इस सट्टक मे सम्पन्न विवाह इन आठो से भिन्नता लिये हुए है। नायक-नायिका का विवाह विधि-विधान के साथ सम्पन्न

---

१. कर्पूरमञ्जरी—४/१५

२ कर्पूरमञ्जरी—१/११

हुआ है, भॉवरे दी गयी है, अग्नि मे खीले छोड़ी गयी है।[१] ऐसा ब्रह्म, प्राजापत्य, आर्ष एव दैव विवाहो मे ही होता है। किन्तु इनके पूरे लक्षण कर्पूरमञ्जरी एव चन्द्रपाल के विवाह मे नही मिलते। इनका विवाह आसुर या राक्षस एव पैशाच कोटि का भी विवाह नही है। जहाँ तक गान्धर्व विवाह का प्रश्न है, तो इसके कुछ लक्षण इस विवाह पद्धति मे है, जैसे कि नायक-नायिका का विवाह-पूर्व प्रेम, कन्यादान कर्ता का अभाव आदि। किन्तु नायक-नायिका के विवाह मे इस पद्धति से भिन्न लक्षण भी विद्यमान है, यथा—देवी द्वारा नायक-नायिका का ब्राह्मणो की उपस्थिति मे विधिवत विवाह सम्पन्न करवाना आदि। अत: यह कहना अनुचित नही होगा कि—प्रसिद्ध आठ विवाह पद्धतियो से भिन्न प्रकार की विवाह परम्पराये भी समाज मे विद्यमान थीं एव उनको मान्यता प्राप्त थी। भैरवानन्द के यह कथन कि—"विधवा, चडा (चाण्डाल स्त्री) एव तान्त्रिक दीक्षा वाली स्त्रियो को मै धर्मानुकूल अपनी पत्नी समझता हूँ"[२] से यह प्रतीत होता है, कि—समाज मे विधवा विवाह एव अन्तर्जातीय विवाह का भे प्रचलन था।

रूढ़-प्रक्रिया के रूप में दोहद—

प्राचीन भारतीय साहित्य मे जिन कतिपय रूढ़-प्रक्रियाओ अथवा विषयो को कवि प्रसिद्धि की कोटि में गिनाया गया है, उसमे दोहद क्रिया का प्रमुख स्थान है।[३] किसी गर्भवती स्त्री द्वारा किसी विशेष वस्तु को पाने की अभिलाषा को 'दोहद' नाम दिया गया है, जैसाकि कालिदास ने गर्भवती सुदक्षिणा की स्पृहा विशेष को 'दोहद' कहा है।[४] भवभूति ने भी गर्भवती सीता की पवित्रसलिला भागीरथी मे पुनः अवगाहन करने की इच्छा को 'दोहद' कहा है।[५] इसके अतिरिक्त

---

१. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १५३

२ कर्पूरमञ्जरी—१/२३

३. साहित्यदर्पण-विश्वनाथ, पृष्ठ ५१७

४ रघुवश—३/६–७

५. "आर्यपुत्र ! एतेन चित्रदर्शनेन प्रत्युत्पन्न दोहदाया मम विज्ञेपनीयमस्ती।"
—उत्तररामचरितम्—प्रथम अङ्क

कली आने के समय पौधो की इच्छा 'दोहद' कहलाती है।[१] सामान्यतः इस 'दोहद' का अर्थ वृक्ष को बलात अर्थात् असमय मे पुष्पित कराने से लिया जाता है। दोहद मे अशोक चाहता है कि— तरुणियाँ उसे ठोकर मारें, बकुल चाहता है कि उसके ऊपर मदिरा से कुल्ले किये जायँ। भारतीय रूपको मे वृक्ष को बलात पुष्पित कराने वाले दोहद को विशेष महत्व दिया गया है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि—दोहद पूर्ति का कार्य किसी सामान्य युवती से नही कराया जाता। कभी-कभी यह कार्य किसी अज्ञातकुल शीलवाली युवती की वश परीक्षा की दृष्टि से भी कराया जाता है।[२] अर्थात् दोहद उच्चकुल की औरते ही करती है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे कुरबक, तिलक एव अशोक वृक्ष के दोहद का प्रसङ्ग आया है। ज्येष्ठा नायिका द्वारा लगाये गये इन वृक्षो के दोहद का कार्य कर्पूरमञ्जरी द्वारा करवाया गया है। कर्पूरमञ्जरी कुरबक वृक्ष का आलिगन द्वारा; तिलक वृक्ष को तिरक्षी निगाहे देखकर और अशोक वृक्ष का पादप्रहार द्वारा दोहद करती है।[३] दोहद की क्रिया को तत्कालीन समाज मे विद्यमान प्रकृति-प्रेम के भाव के रूप मे देखा जा सकता है।

वस्त्राभरण एवं शृङ्गारप्रसाधन—

वस्त्रो पर कसीदाकारी करने का सन्दर्भ प्राप्त होता है।[४] सामान्य रूप से साडिआ (साड़ी)[५], कूर्पासक (चोली)[६], पडिसीसअ (पगड़ी)[७], उत्तरीय[८] आदि धारण करने वाले वस्त्र थे, जिनका

---

१ सस्कृत-हिन्दी कोश—वामन शिवराम आप्टे, पृष्ठ ४७८

२ मालविकाग्निमित्रम्

३ कर्पूरमञ्जरी—२/४४–४७

४ . .... पदिबट्टे बिअ टसरबिरअणा, . ..(प्रतिपट्ट इव त्रसरविरचना)—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २३

५. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २४

६ कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ११ एव २२

७. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २७

८. एद मे उत्तरीअ आसण (एतन्मे उत्तरीयमासनम्)—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ३९

इस कृति मे यत्र-तत्र नामोल्लेख हुआ है। तान्त्रिको (सिद्ध-पुरुषो) द्वारा सोने के लिए चर्मखण्ड का भी प्रयोग किया जाता था।[१]

प्रमुख आभरणो मे— एक लडी की मोती की माला, कर्णोत्पल, मणिककण, घुँघुरूदार सुवर्णकटिसूत्र, घुँघुरू लगा नूपुर, मालती पुष्प की माला, सिन्धुवार के फूलो का हार, केश मे मालती के फूलो का गजरा आदि प्रचलित थे। आभूषण निर्माण मे काँच एव माणिक्य का प्रयोग होता था।[२] पन्ने की पायजनी का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[३]

सोना, लोहा, पन्ना, मरकतमणि, चन्द्रकान्तमणि, पद्मरागमणि, वैदूर्यमणि, मोती आदि का उल्लेख मिलता है।

होठो का विलेपन, केश मे सुगधित तेल, मुख पर कुमकुमराग, चन्दन का लेप, कुमकुम-रस का लेप, अगराग, काजल आदि[४] प्रसाधन सामग्रियो का प्रचलन था।

वर्णव्यवस्था—

समाज मे जन्म पर आधारित वर्णव्यवस्था पूर्णतः प्रतिष्ठित प्रतीत होती है। विदूषक ब्राह्मण है, उसे अनपढ़ होने पर भी पूज्य बताया गया है, जो ब्राह्मण वर्ण की समाज मे विशेष महत्ता का द्योतक है। दासियाँ सुयोग्य, सुशिक्षित होने के बावजूद भी सेवाकार्य मे नियुक्त होती थी तथा अनपढ ब्राह्मण से भी अवरकोटि की मानी जाती थी।[५] ब्राह्मण वर्ण अपनी सामाजिक श्रेष्ठता के कारण अहकार मे था तथा दासी को अपने से बात करने के योग्य नही समझता था।[६] भरत

---

१ ......चम्मखड च सेज्जा. ...(चर्मखण्डश्च शय्या)–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २९

२ कच्च माणिक्क च सम आहरणे पउजीअदि (काच माणिक्य च सममाभरणे प्रयुज्यतें)।
—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २४

३. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ५९

४. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २२

५ कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २३

६. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २६

वाक्य मे यह अपेक्षा की गयी है, कि—ब्राह्मणो के आशीर्वाद सदा सत्य निकले।[1] इससे निष्कर्ष निकलता है, कि—ब्राह्मणो के आशीर्वाद झूठे भी निकलते थे। अर्थात् ब्राह्मणो मे दिव्यता, पवित्रता नही रह गयी थी, उनका पतन हो चुका था।

अन्तःपुर मे पायदान उठाने वाली, स्नान कराने वाली, स्वर्णदण्ड लेने वाली, चाँवर डुलाने वाली, सैरन्ध्रियाँ आदि वर्ग की दासियाँ थी। शिकारी, वैद्य, वन्दीजन, वेधकार आदि समाज के विभिन्न कर्मकार वर्ग थे।

धार्मिक दशा—

जनता मे धर्म के प्रति विश्वास हटने की शुरुआत हो चुकी थी, यही कारण है कि—भरतवाक्य मे जनता का धर्म मे दृढ़ विश्वास बने रहने की अपेक्षा की गयी है।[2] फिर भी शिव, सरस्वती, कामदेव, गौरी, चामुण्डा आदि देवी–देवताओ की स्तुति एव पूजा हुआ करती थी। सृष्टिकर्ता के रूप मे ब्रह्मा की मान्यता थी।[3] देवी–देवताओ की स्थापना कर उसमें प्राणप्रतिष्ठा हेतु कर्मकाण्ड करने का विधान था। किसी को गुरु बनाकर उससे इष्टमन्त्र लेने का उल्लेख[4] समाज मे गुरु की महत्ता को द्योतित करता है। हिडोला चतुर्थी एव वटसावित्री महोत्सवो जैसे सामाजिक-धार्मिक समारोहो का आयोजन होता था।

तान्त्रिक सम्प्रदाय अपने उत्कर्ष पर था। भैरवानन्द के कथनो एव क्रियाओं से स्पष्ट होता है, कि—तान्त्रिको द्वारा कुछ अभ्यास किये जाते थे, जिनसे उनकी आध्यात्मिक उन्नति होती थी,

---

१ होन्दु बह्मणजणा सच्चासिहो सव्वदा (. . भवन्तु ब्राह्मणजना सत्याशिष. सर्वदा)।
—कर्पूरमञ्जरी—४/२३

२. .. धम्मे मई भोदु अ (धर्मे मतिर्भवतु च)।—कर्पूरमञ्जरी—४/२३

३ कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १०८

४ .. . .. देवीए पोम्मराअमणिमई गोरी कदुअ भइरवाणन्देण प्पडिट्ठाविदा, सअ अ दिक्खा गहिदा (. .देव्या पद्मरागमणिमयी गौरी कृत्वा भैरवानन्देन प्रतिष्ठापिता, स्वयञ्च दीक्षा गृहीता)।
—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १४३

उन्हे कुछ गुह्य शक्तियाँ प्राप्त हो जाती थी, जिनसे वे आश्चर्यजनक कार्य कर सकते थे। तन्त्र सम्प्रदाय की शिक्षाओ मे सन्यास से कोई भी सामञ्जस्य नही था। इसलिए तन्त्रमत का अनुयायी यह नही मान सकता था कि—अपनी स्त्री को साथ रखने और थोड़ी सी मदिरा और मास प्रयोग मे लेने से मोक्ष नही प्राप्त हो सकता। तन्त्रमत के अनुयायी वैदिक कर्मकाण्ड और परम्पराओ को प्रोत्साहन नही देते थे, जैसाकि भैरवानन्द ने कहा है कि—"ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता कहते है कि ध्यान, वेदपाठ और यज्ञ करने से मोक्ष मिलता है। केवल भगवान शङ्कर ने सुरा और स्त्रियो के ससर्ग से मोक्ष बताया है।"[१] समाज मे ऐसे तान्त्रिको की प्रतिष्ठा थी। इनका प्रभाव-क्षेत्र राजपरिवारो तक था। राजपरिवार के सदस्यो द्वारा अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए तान्त्रिको की सेवाये ली जाती थी।

अन्तःपुर की दशा—

राजाओ का अन्त.पुर बृहदाकार होता था, जिसमे प्रमदवन जैसे विहार करने वाले स्थलो की व्यवस्था होती थी। अन्तःपुर मे ढेर सारे नौकर-चाकरो के साथ राजा एव उनका परिवार रहता था। यहाँ कुब्ज, वामन, किरात, वर्षवर, सौविदल्ल आदि[२] जैसे मसखरा करने वाले या मसखरे के पात्र लोगो की भरमार रहती थी, जो रानी के साथ चला करते थे। यह राजपरिवारो की विलासिता एव निठल्लेपन को सूचित करता है। वन्दीगण सङ्केतकाल को सूचित करने के लिए अवसरानुसार प्रकृतिवर्णन अथवा राजा का गुणगान किया करते थे।[३]

मनोरञ्जन—

मनोरञ्जन हेतु कई प्रकार के साधनो का सहारा लिया जाता था। वसन्त मे लोग झूला

---

१. कर्पूरमञ्जरी—१/२४

२. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १२५

३ कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ४/३५–३६ एव २/५०

झूलने का आनन्द लिया करते थे। गर्मी मे साम को जलक्रीडा करते थे।[१] सामान्यतः सायकाल क्रीडावावलियो एव चित्रशालाओ मे लोग आनन्द लेने जाते थे।[२] जादू-विद्या (इन्द्रजाल) का उल्लेख हुआ है,[३] जो मनोरञ्जन का प्रमुख साधन रहा होगा। वन्दीगण प्रकृति-वर्णनो से युक्त अपने काव्यपाठ द्वारा राजा-रानी को प्रसन्न करने का प्रयास करते थे। वेणु, वीणा, करताल, मृदग,[४] वशी[५] मर्दलवाद्य[६] आदि का उल्लेख तत्कालीन समाज की सगीतप्रियता को उद्घोषित करता है। नृत्यकला भी लोकप्रिय थी।

सामान्य सामाजिक तथ्य एवं व्यवहार–

गुरु दक्षिणा का समाज मे महत्त्व था। इसे किसी भी कीमत पर अदा करना पुनीत कर्तव्य माना जाता था। यहाँ तक कि इसे अदा करने मे स्त्रियाँ सौत तक बना लेने प्रस्तुत थीं।[७] समाज मे झगडा होने पर गालियाँ देने का प्रचलन था। दासीपुत्री, झगड़ालू, धन ठगने वाली, गलियो मे पुरुषो के साथ घूमने वाली, लम्बे स्तनो वाली, सूप की तरह कानो वाली आदि स्त्रियो को दी जाने वाली प्रमुख गालियाँ थी।[८] कान-उखाड़ने, मुँह-तोड़ने के लिए कहने जैसे धमकीपूर्ण वाक्यो का प्रयोग किया जाता था। ज्योतिष पर लोगो का विश्वास था। मदिरा निंदित वस्तु रही होगी ऐसा ध्वनित होता है, किन्तु इसका प्रयोग किया जाता था। पञ्चगव्य का प्रयोग पवित्र माना जाता

---

१ लीलामज्जणमापदोससमअ (लीलामज्जनमाप्रदोषसमय)–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १२९

२ उग्घाडीज्जति लीलामणिमअवलहीचित्तभित्तीणिवसा (उद्घाट्यन्ते लीलामणिमयवलभीचित्रभित्तिनिवेशा.) –कर्पूरमञ्जरी–१/३६

३ कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ८६ एव ११३

४ कर्पूरमञ्जरी, प्रस्तावना

५ कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ११३

६. कर्पूरमञ्जरी–४/१६

७. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १४४

८. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २५

था। मास, खण्ड (शक्कर)[११], तक्र (मट्ठा) दूध, दही, भात आदि प्रमुख खाद्य एव पेय पदार्थ थे। पशुओ मे हाथी, घोड़ा, बैल का उल्लेख हुआ है। बैल को नथा जाता था। दो पहियो के रथ का प्रयोग होता था।[१२] लोगो मे विमान की कल्पना थी,[१३] जैसा कि ध्यानरूपी विमान एव देवागनाओ के विमान शब्द का प्रयोग हुआ है। धनुष, बाण, तरकश, भाला, चर्मनिर्मित- कशा, तलवार, ढाल, मल्लयुद्ध आदि का उल्लेख हुआ है; जो निश्चय ही उस समय सामान्य प्रयोग की चीजे थी। गर्मी की रात मे लोग घर के आँगन मे सोते थे।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में सांस्कृतिक प्रतिबिम्ब

नारी दशा–

१८वी शदी के प्रारम्भिक काल के लगभग रचित शृङ्गारमञ्जरी सट्टक से, नारी दशा के विषय मे ऐसा प्रतीत होता है, कि–पूर्व मध्यकाल से चली आ रही नारी के प्रति शोच मे कोई विशेष बदलाव नही आया था । वह पूर्ववत भोग की वस्तु मानी जाती रही। स्त्रियाँ वस्तु की भाँति उपहार मे दी जाती थी, जैसाकि ज्येष्ठा-नायिका शृङ्गारमञ्जरी को राजा को सुपुर्द करते समय कहती है–"आर्यपुत्र! इस शुभ अवसर पर आज मै शृङ्गारमञ्जरी को उपहार के रूप मे आपको दे रही हूँ।"[१] अपनी कुलीनवशजा पत्नी के होते हुए भी अन्य स्त्री के प्रति आकर्षित होना तथा उसे किसी भी प्रकार से प्राप्त करने के लिए सतत् प्रयास करने की प्रवृत्ति कुलीन वर्ग मे पायी जाती थी। कवियो द्वारा सतत् नारी सौन्दर्य के वर्णन मे सन्नद्ध रहना, नारी को भोग की वस्तु मानने की मानसिकता का ही द्योतक है।

१ कर्पूरमञ्जरी–२/२६

२ कर्पूरमञ्जरी–२/१८

३ पच्छा झाणविमाणेण णइस्सध (पश्चात् ध्यानविमानेन नेष्यथ)।–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ४१

४ देवी–अज्जउत्त, इम्मस्सिं अहम्मि इम सिंगारमजरि देवस्स उवहार करेमि।

(आर्यपुत्र! अस्मिन्नहनि इमा शृङ्गारमञ्जरी देवस्योपहार करोमि।)–शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०४

नारी के कष्ट एव उनके जजबात का ध्यान नही रखा जाता था। प्रस्तुत कृति मे स्पष्टत. नायक द्वारा सौत के कष्ट को सबसे बडा कष्ट बताया गया है,[१] फिर भी नायक अपनी पत्नी के जजबातो को नजरन्दाज करते हुए दूसरे विवाह के लिए प्रयासरत है। महिलाओ द्वारा घूँघट किया जाता था; जैसाकि नायक से मिलने के लिए नायिका घूँघट करके आती है, जिसे नायक द्वारा हटाया जाता है।[२]

स्त्रियो की हीनदशा के बावजूद उन्हे सुशिक्षित होने के अवसर दिये जाते थे। वसन्ततिलका, शृङ्गारमञ्जरी आदि रसशास्त्र की विशेषज्ञ है, जिससे स्पष्ट होता है कि नारी शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी। समाज मे नारी का स्थान पहले की अपेक्षा कुछ बढ़ता हुआ सा प्रतीत होता है। नायक, नायिकाओ के प्रति अत्यन्त विनम्रता एव शिष्टता के साथ प्रस्तुत होता है। नायक ज्येष्ठा नायिका के उपस्थित होने पर आदरपूर्वक उसका हाथो मे हाथ लेकर उसके साथ वार्ता करता है।[३]

विवाह व्यवस्था—

समाज मे बहुपत्नी-प्रथा को मान्यता थी। राजा लोग एकाधिक विवाह करते थे। अपनी पत्नी के बहनोई (साढू) की पुत्री के साथ विवाह होना भी अनुचित नही माना जाता था, जैसाकि प्रस्तुत कृति मे शृङ्गारमञ्जरी नायक की पहली पत्नी के बहनोई की पुत्री है,[४] जिससे उसका विवाह

---

१. राजा— . .विज्जति एत्थ लोए महिलाण जेत्तिआइँ दुक्खाइ।
ताइँ सवत्तिसमुब्भअदुक्खादो णवर हिज्जति।।
(विद्यन्तेऽत्र लोके महिलाना यावन्ति दुःखानि।
तानि सपत्नीसमुद्भवदु खात् केवल हीयन्ते।।)–शृङ्गारमञ्जरी–२/९

२ शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ८६

३. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०३

४. देवी—... मम आवुत्तस्स अवतिपइणो दुहिदा ..।
(...ममावुत्तस्यावन्तिपतेर्दुहिता...।)–शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०७

होता है। कन्या को शादी हेतु उपहार मे दिया जाता था। शादी हेतु कन्या की मँगनी भी की जाती थी।[1] गान्धर्व विवाह की परम्परा विद्यमान थी। इसका रूप कुछ बदला हुआ-सा प्रतीत होता है, जिसमे कुछ अनुष्ठान भी किये जाते .थे। जिसकी सूचना दी गयी है।[2]

वस्त्राभरण एवं शृङ्गारप्रसाधन—

मोतियो की माला, करधनी, रत्नजटित ककण आदि अलङ्कारो को धारण किया जाता था। माणिक्य, इन्द्रनीलमणि, मरकतमणि, स्वर्ण आदि रत्नों एव धातुओ का उल्लेख प्राप्त होता है। रानियाँ गौरव के अनुरूप अलङ्कार एव वस्त्र धारण करती थी।[3] ताम्बूलकरङ्कवाहिनी का उल्लेख हुआ है,[4] जिससे ताम्बूल खाने के प्रचलन का पता चलता है।

वर्णाश्रम व्यवस्था—

यद्यपि वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति लोगो की आस्था थी, जैसा कि भरतवाक्य मे सभी वर्णो एव आश्रमो को अपने-अपने कर्मो मे लगे रहने की अपेक्षा की गयी है;[5] फिर भी यह व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो चुकी प्रतीत होती है। विशेष विद्याओ का ज्ञान ब्राह्मण का कुलधर्म माना जाता था।[6] ब्राह्मण के स्वस्ति-वाचन से धार्मिक कृत्य पूर्ण होते थे। ब्राह्मण के मान का भग वध के समान समझा जाता था। ब्राह्मण दान ग्रहण करता था, कार्य की पूर्णता हेतु ब्राह्मण को सतुष्ट

---

१. अमात्य—तदो देअस्स कए त कण्णाअ मए भअव पत्थिदो।
(ततो देवस्य कृते एता कन्या भगवान् प्रार्थितः।)—शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०८

२. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०५

३ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०४

४ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ—१५

५. . .धम्मे सतु णिए णिए अविरअ सव्वे वि वण्णस्सस।
(धर्मे सन्तु निजे निजेऽविरत सर्वेऽपि वर्णाश्रमाः।)—शृङ्गारमञ्जरी—४/२५

६ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४७

करना आवश्यक समझा जाता था।[1] साथ ही ब्राह्मण सेवा कार्य मे भी नियुक्त होते थे, जैसा द्वितीय जवनिकान्तर मे क्रोधित होकर विदूषक राजा से कहता है—"मुझे ऐसे राजा के सेवक होने का फल मिल गया।"[2] बहुत से ब्राह्मण अल्पज्ञ भी होते थे, ऐसे ब्राह्मणो को पडित मानकर चरण नही छूये जाते थे।[3] अर्थात् पडित ब्राह्मण के ही चरण छूवे जाते थे। ऋषि जगलो मे आश्रम बनाकर रहा करते थे, जैसा कि मातग ऋषि के आश्रम का उल्लेख हुआ है।[4]

धार्मिक दशा—

यज्ञीय कर्मकाण्ड मे लोगो का विश्वास था। अतः भरतवाक्य मे अधिक तेज अग्नि के यज्ञीय धुएँ से, दिशाओ के विस्तार व्याप्त रहने की कामना की गयी है।[5] भगवती गौरी एव शिव की विशेष प्रतिष्ठा थी। कामदेव का पूजन होता था। ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, विष्णु आदि का नामोल्लेख उनके प्रति समाज मे प्रचलित भक्ति भावना को द्योतित करता है। गणेशजी की लड्डू चढ़ाकर पूजा की जाती थी।[6] मधुमास के शुक्लपक्ष की पूर्णिमा को मदनपूजा की जाती थी।[7] शकुन-विचार किया जाता था।[8] ज्योतिष पर विश्वास था, तभी कामदेव की पूजा के प्रसङ्ग मे देवी कहती है कि—"पूजा का मुहूर्त निकला जा रहा है।"[9] जादू के चमत्कार मे भी लोगो का विश्वास

---

१ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०५

२ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४५

३. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४५

४. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०६

५ आहोआ हरिआण होतु बहलत्ते अग्गिधूमाउला......।
(आभोगा हरिता भवन्तु बहलतेजोऽग्निधूमाकुला....।)—शृङ्गारमञ्जरी—४/२५

६ गुडजोअमहुरिएहि पिहुलेहि अज्ज पक्केहि।
देवीअ मोदएहि सुहिदो म्हि कओ गणाहिणाहो व्व।।
(गुडयोगमधुरितैः पृथुलैरद्य पक्वै ।
देव्या मोदकैः सुखितोऽस्मि कृतः गणाधिनाथ इव।।)—शृङ्गारमञ्जरी—४/९

७ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ३७

८ शृङ्गारमञ्जरी—३/४४

९. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४६

था। व्यक्ति को छूकर कसम खाया जाता था।[१] भाग्य पर अटूट विश्वास परिलक्षित होता है। शाप, वरदान, आकाशवाणी, भविष्यवाणी, राक्षस-योनि[२] इत्यादि के प्रति लोगो का विश्वास था; तभी ऐसी घटनाओ का आश्रय लेकर कथा को आगे बढ़ाया गया है।

अन्तःपुर की दशा–

राजा का अन्त.पुर काफी विशाल हुआ करता था, जिसमे उपवन आदि की समुचित व्यवस्था होती थी। यह इतना विस्तृत एव गूढ़ स्थानो वाला होता था कि वही रहने वाले लोग भी एक-दूसरे को नही देख पाते थे। अन्तःपुर मे ज्येष्ठा रानी की अपनी प्रशासनिक व्यवस्था होती थी। वह लोगो को बन्दी तक बनाकर रख सकती थी; जैसाकि देवी द्वारा विदूषक के बन्दी बनाये जाने के बाद मुक्त किये जाने का उल्लेख किया गया है।[३] रानियाँ सामान्यतः सवारी से चला करती थी; जैसाकि रानी द्वारा मदिर जाते समय पैदल जाने की बात को विदूषक द्वारा विशेष रूप मे कहा गया है।[४] अन्तःपुर मे सबका प्रवेश सभव नही था।[५] यहाँ विदूषक, बौने आदि जैसे हास्यकारी लोगो का जमावड़ा रहता था, जैसा कि विदूषक के सम्बन्ध मे वसन्ततिलका ने कहा है कि–"तुम अन्तःपुर के लोगो द्वारा गेद की तरह फेके जाते रहे हो।"[६] यह अन्तःपुर के लोगो के निठल्लेपन का परिचायक भी है, कि वे अपने मनोरञ्जन हेतु बौने, कुबड़े जैसे लोगो को इकट्ठा कर अपने आप मे ही मस्त रहा करते थे। अन्तःपुर मे विविध प्रकार के उत्सव मनाये जाते थे, जैसे मदनपूजा आदि। सुबह मङ्गलवाद्य बजते थे, जिसे सुनकर राजा जगा करता था।

---

१. ....एद पि मण्णसि जइ च्छलवाअमेत्त
ता पाणिणा तुह अह हिअअ छिवामि।
(...एतदपि मन्यसे यदि च्छलवाङ्मात्र
तत् पाणिना तवाह हृदय स्पृशामि।)–शृङ्गारमञ्जरी–३/५८

२. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०७

३ शृङ्गारमञ्जरी–४/१२

४. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ९८

५ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ५०

६ वसन्ततिलका–अदो ज्जेव्व कदुओ व्व सपरिहास सअलतेउरवासिजणेण जहिच्छ पाडिज्जतो उठ्ठाविज्जतो अ चिट्ठसि।–शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४५

सामान्य सामाजिक तथ्य एवं व्यवहार—

लोग सभी कष्टो से छुटकारा पाने का साधन मौत को मानते थे, अतएव कष्टमुक्ति के लिए फाँसी लगाकर आत्महत्या करने मे भी नही हिचकते थे।[१] गुड का लड्डू प्रिय खाद्य पदार्थ था। समाज मे विद्वता सिद्ध करने के लिए शास्त्रार्थ होते थे। क्षमा माँगते समय आलिगनबद्ध होने का व्यवहार था।[२] अपने बुरे कार्यो के लिए छोटे से भी क्षमा माँगी जाती थी। पुरुष भी चित्रकारी मे प्रवीण होते थे; जैसाकि नायक द्वारा नायिका के चित्र बनाने का प्रसङ्ग प्राप्त होता है। धनुष, बाण, तलवार, त्रिशूल[३] आदि सामान्य रूप से प्रयुक्त होने वाले हथियार थे। राजाओ द्वारा दिग्विजय किया जाता था। सेविकाये भी सुखवैभव से रहती थी। पक्षियो को जाल द्वारा फँसाया जाता था। महासागर एव जलपोत से लोग परिचित थे।[४] इन्द्र के राज्य की परिकल्पना सर्वाधिक समृद्धि एव सुखकारक के रूप मे थी।[५] देवगुरु वृहस्पति की सर्वोच्च ज्ञानी के रूप मे मान्यता थी।[६] भाग्य पर पूर्ण विश्वास परिलक्षित होता है। आकाश मार्ग से यात्रा सभव है, इसके प्रति विश्वास था; जैसाकि अमात्य ने राक्षस द्वारा शृङ्गारमञ्जरी को आकाशमार्ग से ले जाने की बात कही है।[७] दूसरे के गुणो मे अनुराग रखने वाले सहृदयो के चिरकाल तक जीवित रहने की कामना की जाती थी।[८]

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ६७

२ देवी—.. .परिअणोइअ वत्तिआ सि। ता खमीअदु अदिक्कमो। (..परिजनोचित वर्तितासि। तत् क्षम्यतामतिक्रम ।) (इत्यालिङ्गति)—शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०८

३ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ९९

४ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०१

५ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ७७

६. जेण विहप्पइसरिच्छेहि पि पडिअवरेहि. ।
(येन वृहस्पतिसदृशैरपि पण्डितवरै.. ।)—शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४५

७ शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०७

८ अण्णाण गुणराइणो सहिअआ जीअतु लोए चिर।
(अन्येषा गुणरागिण. सहृदया जीवन्तु लोके चिरम् ।)—शृङ्गारमञ्जरी—४/२५

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों में चित्रित समाज का तुलनात्मक परिशीलन

राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी एवं विश्वेश्वरकृत शृङ्गारमञ्जरी के पर्यालोचन से तत्कालीन समाज का जो स्वरूप परिलक्षित होता है, उस पर यथासभव दृष्टिपात किया जा चुका है। इन दोनो कृतियो के रचनाकाल मे लगभग सात सौ वर्षो का अन्तर है। अतः दोनों कालखण्डो के समाज मे निश्चय ही पर्याप्त विभिन्नताये होगी, फिर भी अनेक बिन्दुओ पर कुछ समानताये सभव है; जिनका विवेच्यकृतियो की सूचनाओ के आधार पर अवलोकन करना प्रसङ्गानुकूल है।

सर्वप्रथम नारीदशा की दृष्टि से दोनो समाजो के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि—दोनो ही कालखण्डो मे नारी की स्थिति बहुत अच्छी नही थी। समाज में विशेषकर राजपरिवारो मे बहुविवाह की प्रथा जोरों पर थी। अपनी विधिवत परिणीता पत्नी के होते हुए भी राजा दूसरी स्त्रीरत्न की कामना करते थे। सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि दोनो ही कालखण्डो में पुरुषो के इस कार्य में स्त्रियाँ उनकी सहयोग करती थी। स्त्रियो के सुशिक्षित होने के प्रमाण दोनो ही कालखण्डों मे दिखाई पड़ते है। अतः कहा जा सकता है कि स्त्री शिक्षा की व्यवस्था भी की जाती थी। कुल मिलाकर नारीदशा दोनो समाजो मे एक सी प्रतीत होती है।

विवाह व्यवस्था का जहाँ तक प्रश्न है—दोनों की कालखण्डो मे कन्या का विवाह पतिगृह में सम्पन्न होने का प्रचलन दिखाई पड़ता है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि विवाह

युवावस्था को प्राप्त होने पर ही सम्पन्न होते थे। गान्धर्व विवाह की ऐसी प्रथा प्रचलित थी, जिसमे कुछ अनुष्ठान भी किये जाते थे। ऐसे विवाहों मे कन्या के सरक्षक की अनुमति या उपस्थिति की आवश्यकता नही समझी जाती थी। ऐसे विवाहों के लिए शुभ मुहूर्त आदि पर विचार भी नही किया जाता था। दोनो ही कालखण्डो मे द्वितीय विवाह हेतु प्रथम पत्नी की अनुमति आवश्यक थी। उसकी सहमति के बिना पुरुष द्वारा दूसरा विवाह कर पाना सम्भव नही था।

वर्णव्यवस्था दोनो ही कालो मे प्रतिष्ठित दिखाई पड़ती है। समाज मे ब्राह्मण वर्ण का विशेष सम्मान था। अनपढ़ होने पर भी ब्राह्मण आदरणीय माना जाता था। साथ ही समाज मे विभिन्न प्रकार के कर्मकार वर्गो का भी अस्तित्व था।

राजाओं का अन्तःपुर बृहदाकार होता था, जिसमे उपवन आदि की समुचित व्यवस्था होती थी। दोनो ही कालों मे अन्तःपुर में राजा की ज्येष्ठा पत्नी का प्रशासनिक वर्चस्व था। अन्तःपुर मे बौने, कुबड़े, विदूषक आदि जैसे मसखरा करने वाले लोगों को मनोरञ्जन हेतु रखा जाता था। दोनो कालखण्डो मे ककण, पायजेब, हार, करधनी आदि जैसे विविध प्रकार के आभूषणों को धारण किया जाता था। सोना, मोती, रत्नो आदि का उल्लेख उनकी लोकप्रियता को सूचित करता है। रानियाँ गौरव के अनुरूप अलङ्कार, वस्त्र आदि धारण करती थीं।

दोनों समाजों में बहुदेववाद की प्रतिष्ठा थी। कामदेव लोकप्रिय देव प्रतीत होते है। हिंडोला चतुर्थी, वटसावित्री जैसे धार्मिक, सामाजिक महोत्सव मनाये जाने की

परम्परा दिखाई पड़ती है। दोनो ही कृतियों मे राजाओ के अकर्मण्य विलासरत जीवन की झॉकी है।

राजशेखर एव विश्वेश्वर दोनो की कृतियो में समाज का बहुविध स्वरूप दिखाई पडता है। फिर भी राजशेखर की रचना विश्वेश्वर की कृति की अपेक्षा समाज को अधिक प्रतिबिम्बित करती है; जैसाकि १०वी शदी के समाज में भैरवानन्द जैसे कौलमतावलम्बियो की वरिष्ठता एव सामान्यजनो से राजपरिवार तक उसकी पहुँच कर्पूरमञ्जरी सट्टक मे दिखाई पड़ती है। दोहद जैसे प्रसङ्ग को प्रस्तुत कर राजशेखर ने समाज मे ऐसी मान्यताओ के प्रति विश्वास को उद्घाटित करने का सफल प्रयास किया है। राजशेखर ने अपेक्षाकृत अधिक वस्त्राभूषणो एव शृङ्गारप्रसाधनो का उल्लेख किया है। विश्वेश्वर की अपेक्षा राजशेखर ने वाद्ययन्त्रों आदि मनोरञ्जन के अधिकाधिक ससाधनो का संकेत किया है। सामान्य सामाजिक तथ्य एवं व्यवहार को सूचित करने मे भी राजशेखर विश्वेश्वर का अतिक्रमण कर गये है।

●●●

अष्टम-अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

अष्टम-अध्याय

उपसंहार

मनुष्य मे स्वभाव से ही अनुकरणवृत्ति पायी जाती है। मनुष्य की इस अनुकरणवृत्ति को रमानन्द मे परिवर्तित कर देने के प्रयास स्वरूप ही 'नाट्यकला' का आविर्भाव हुआ है। नाट्यकला के कुछ प्रसिद्ध प्रतिरूपो के आधार पर, नाट्यशास्त्रीय मान्यताओ की स्थापना करते हुए, नाट्य के दश भेद स्वीकार किये गये, जिन्हे रूपक नाम से अभिहित किया गया है। इन शास्त्रीय रूपको के समानान्तर समाज मे लोकनाट्यो की एक समृद्ध परम्परा भी रही है, जो निरन्तर विकास के परिणामस्वरूप उपरूपक के रूप मे मान्यता प्राप्त करने मे सफल हुई।

नाटक, प्रकरण जैसे रूपक आभिजात्यवर्ग को ध्यान मे रखकर लिखे जाते थे। इनका मञ्चन प्रबुद्ध वर्ग के बीच होता था, जैसाकि अभिज्ञानशाकुन्तल मे उसके मञ्चन के अवसर पर कालिदास ने सूत्रधार से कहलवाया है–"अभिरूपभूयिष्ठा परिषदियम्। (विद्वानो से भरपूर है यह सभा।)"। रूपको के मञ्चन हेतु नटो को पर्याप्त अभ्यास एव कुशलता की आवश्यकता होती थी, जैसाकि अभिज्ञानशाकुन्तल के सन्दर्भ मे सूत्रधार कहता है–"प्रतिपात्रमाधीयता यत्न। (प्रत्येक पात्र के विषय में सावधानी रखनी चाहिए।)" नाटको जैसे प्रसिद्ध रूपको के मञ्चन मे व्यापक व्यवस्था एव विभिन्न दृश्य-विधानो के निर्माण हेतु पर्याप्त साज-सज्जा की आवश्यकता होती थी, जिनकी व्यवस्था सामान्य-जन द्वारा कर पाना सभव नही था। यहाँ सामान्य-व्यक्ति की सतुष्टि से कोई तात्पर्य भी नही होता था। नाटककारो को तो विद्वानों के सतुष्टि की चिन्ता थी, जैसा कालिदास ने कहा है–"आ परितोषाद् विदुषां

न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।" किन्तु ऐसा नही कि–इन प्रसिद्ध रूपको के रसानन्द से वञ्चित सामान्य-वर्ग को, इन रूपको के प्रति विशेष उत्सुकता रही हो। क्योकि उनके पास अपनी लोक-नाट्य-विधा थी, जिसके मञ्चन मे वह अपने स्तर से व्यवस्था करने मे पूर्ण समर्थ था। उसे न विशाल नाट्यशाला भी अपेक्षा थी, न प्रशिक्षित नटो की, न महँगी साज-सज्जा की और न ही प्रसिद्ध कवियो द्वारा लिखित नाट्य साहित्य की। वह स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्रियो से जहाँ कही भी लघुमञ्च बनाकर, जो कुछ मिला उसी से सुमर्ज्जित होकर, अपने ही बीच के लोगो द्वारा गढ़े हुए अथवा परम्परा से सुने हुए कथा– को अपने स्तर से अभिनीत करके आनन्दविभोर होने मे समर्थ था। यही कारण है कि– जहाँ रूपक अभिजात्यवर्ग का कण्ठहार रहा है, वही उपरूपक आम आदमी की अमूल्यनिधि रहा। अन्य उपरूपको की भाँति सट्टक भी जन-सामान्य के बीच आविर्भूत हुई, उसकी प्रिय लोक-नाट्य-विधा है।

यद्यपि आज सट्टकसाहित्य के रूप मे कुछ गिने-चुने सट्टक ही उपलब्ध है, परन्तु इससे इनका महत्त्व कम नही हो जाता। सट्टक साहित्य की कमी का मूल कारण है समर्थ कवियो मे सट्टक के प्रति लगाव का अभाव होना। वैसे अलिखित अथवा अव्यवस्थित रूप से लिखित सट्टको का अस्तित्व बहुत पहले से रहा होगा, इसके सङ्केत मिलते है। परन्तु सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप से सट्टक लिखकर उसे प्रचारित-प्रसारित करने के श्रेय राजशेखर को ही है, जिसे नयचन्द्र, रुद्रदास, कण्ठीरव घनश्याम, विश्वेश्वर पाण्डेय आदि जैसे परवर्ती कवियो ने आगे बढाया।

सट्टक विधा में साहित्य सर्जना करने का राजशेखर का कार्य निश्चय ही क्रान्तिकारी कदम था। राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी के सन्दर्भ मे भास, कालिदास, जैसे कवियों द्वारा अपनाई गयी विधा या वर्ण्यविषय को नही उठाया; यह उनकी कमी का द्योतक नही अपितु उनकी

विशेषता का परिचायक है। क्योकि उन्होने ऐसी विधा को अपनाया जो अब तक के समर्थ कवियो द्वारा उपेक्षित थी। उन्होने लोक-सामान्य का ध्यान रखते हुए ऐसे विषय को उठाया जो लोकशैली, लोकभाषा एव लोकमञ्च से सम्बद्ध था। अब तक प्रबुद्ध वर्ग के लिए बहुत-कुछ लिखा जा चुका था, जन-सामान्य का वह वर्ग, जो सस्कृत भाषा के प्रयोग में कठिनाई अनुभव करता था। जो शिक्षित नही था, उसके मनोरञ्जन हेतु उसकी मञ्च व्यवस्था एव साजसज्जा के अनुरूप उसकी भाषा मे दृश्यकाव्य उपलब्ध कराने की आवश्यकता थी। राजशेखर ने इस रूप मे कपूर्रमञ्जरी सट्टक को प्रस्तुत कर जनता-जनार्दन की आकाक्षा की पूर्ति की एव इस प्रकार अपने आपको जन-कवि के रूप मे प्रतिष्ठित कर लिया।

वैसे तो सस्कृत-नाट्य-साहित्य मे अनेक नवीन प्रयोग होते रहे है, जैसेकि—जयन्तभट्ट ने 'आगमडम्बर' नामक चार अङ्कों का नाट्य लिखा, जिसका विषय दर्शन है। विशुद्ध अभिधा-वृत्ति के आश्रय वाला यह नाट्य, दार्शनिक गोष्ठियो की कठोर एव नीरस बहस का विषय है। इसी प्रकार मानवीय भावों को पात्र रूप मे रखते हुए कृष्णमिश्र द्वारा 'प्रबोधचन्द्रोदय' जैसे नाट्य-साहित्य का प्रणयन करना नवीन प्रयोग था। परन्तु ये प्रबुद्ध वर्ग के लिए लिखे गये नाट्यरूप थे। इनमे लोकरञ्जकता का अभाव था। जबकि राजशेखर का कार्य नवीन भी था एव लोकप्रिय भी। वह सत्य भी था, शिव भी था एव सुन्दर भी। उनके पश्चाद्वर्ती नयचन्द्र रुद्रदास, कण्ठीरव घनश्याम, विश्वेश्वर पाण्डेय जैसे कवियों ने सट्टक जैसी नाट्य विधा के महत्व को समझा एव जन-कवि होने की आकाक्षा से, उस अधिकाधिक लोकप्रिय नाट्य-विधा को अपनी प्रतिभा से सिक्त करने का सफल प्रयास किया। इन कवियों ने कालिदास की भाँति अपने प्रयोग द्वारा विद्वद्वर्ग को सतुष्ट करने की अपेक्षा नहीं की। इनके सट्टक तो पूर्णत· लोकरञ्जन की दृष्टि से निबन्धित थे।

यद्यपि सट्टक मे राजा की कथा का निबन्धन प्राप्त होता है, परन्तु यह कथानक जनता

की आकाक्षा के अनुरूप लोकजीवन से ही सम्बन्धित है। क्योकि जन-सामान्य का इस लोक मे सर्वोच्च प्राप्तव्य सम्मान, ऐश्वर्य, प्रभाव, सत्ता, राजत्व आदि ही है। इस प्रकार आम-आदमी के उम सर्वोच्च प्राप्तव्य पद को नायक के रूप मे प्रस्तुत कर राजशेखर जैसे सट्टककारो ने जन आकाक्षा की पूर्ति ही किया है। इस रूप मे सट्टककारो द्वारा राजकथा के माध्यम से रसोद्रेक की अवस्था मे साधारणीकरण द्वारा जन-सामान्य को राजत्व तक पहुँचाने का उद्योग किया जाता है। यद्यपि सट्टक की कथा मे राजा का द्वितीय प्रेम प्रदर्शित किया गया है, जो आदर्श नही है। किन्तु यह लोक-जीवन का ख्याति प्राप्त विपय रहा है, इसलिए इसे भी जन सामान्य का ही विपय माना जाना चाहिए।

सट्टककारो ने जन-सामान्य द्वारा सभव हो सकने योग्य मञ्च-व्यवस्था, दृश्य-विधान तथा परिवेश का गम्यक् ध्यान रखा है। सट्टक के पात्रो की सख्या सीमित रखी गयी है; जिससे आवश्यक सख्या मे कुशल नट अपने ही बीच से आसानी से उपलब्ध कराये जा सके। इसका ध्यान रखा गया है कि ग्राम्य-लघु-मञ्च पर अधिक से अधिक छ-सात पात्रो तक का ही प्रवेश हो, तभी इस नाट्य के अनुरूप मञ्च-व्यवस्था जहाँ कही भी कर पाना सभव हो सकेगा। दृश्य-विधान भी सीमित एव लोक-व्यवस्था के अनुकूल रखे गये है। सम्पूर्ण कथा राजा के अन्त पुर से ही सम्बन्धित है। राजकथा होते हुए भी वैभवपूर्ण राजदरबार के दृश्य-विधान से बचा गया है। इसकी अधिकाश घटनाये प्रमदोद्यान जैसे प्राकृतिक वातावरण मे ही घटित होती है। राजा होते हुए भी नायक प्रमदोद्यान की पगडण्डियो पर पैदल चलता हुआ ही नजर आता है, इसके लिए रथ, हाथी, घोड़े आदि की अपेक्षा नही की गयी है। अपितु दृश्य-विधान एव घटनाक्रम ऐसी होती थी जिसकी मञ्च-व्यवस्था एव दृश्य-विधान का समायोजन लोक-कलाकारो द्वारा जहाँ कही भी कर पाना सभव था।

सट्टक के पात्रो की वेश-रचना में भी आम-व्यक्तियो को उपलब्ध हो सकने वाले संसाधनो

का ध्यान रखा गया है। कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक को देखे तो इसके प्रथम-अङ्क मे शकुन्तला वल्कलवसना आश्रम-बाला है। चतुर्थ-अङ्क मे वह वनदेवताओ द्वारा प्रदत्त वस्त्राभरणो से सुसज्जित दुलहन के रूप मे प्रस्तुत है। आगे चलकर विरह-सताप मे सतप्त विरहिणी के अनुरूप वेश-भूषा मे दिखाई पडती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न अङ्को के अनुरूप वेश-सज्जा की व्यवस्था कर पाना आम-आदमी के वश की बात नही थी। अत कथा की ऐसी योजना की गयी कि– एक अथवा अधिक से अधिक दो प्रकार के परिधानो मे ही सम्पूर्ण नाट्य सम्पन्न किया जा सके।

राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी, ऐसे जनप्रिय नाट्य-विधा 'सट्टक' के परिवार मे पथ-प्रदर्शक की भाँति रही है। यही सट्टक परिवार की अगुवा है। इसी से प्रेरणा लेकर बाद के सट्टककारो ने अपनी कृतियो का प्रणयन किया है। १७वी-१८वी शदी के कवि विश्वेश्वर ने यद्यपि विभिन्न विषयो पर अपनी लेखनी चलाई, फिर भी सट्टक जैसे ललित, सर्वजनसवेद्य नाट्य-विधा पर अपनी लेखनी चलाने के मोह को सवरण नही कर पाये। परिणामत शृङ्गारमञ्जरी जैसे मोहक सट्टक का सृजन हुआ। शृङ्गारमञ्जरी मे विश्वेश्वर ने कथावस्तु, पात्र-व्यवस्था, रस-योजना आदि दृष्टियो से राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी का पर्याप्त अनुशरण किया है, जिससे दोनो कृतियो मे अनेक बिन्दुओ पर पर्याप्त समानता परिलक्षित होती है। अत इन दोनो सट्टको का एक साथ तुलनात्मक दृष्टि से आलोचनात्मक अध्ययन करना अपने आप मे पर्याप्त आकर्षक विषय रहा है। इसी आकर्षण के वशीभूत होकर "राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी एव विश्वेश्वरकृत शृङ्गारमञ्जरी सट्टको का आलोचनात्मक अध्ययन" विषय पर शोधकार्य मे प्रवृत्त होकर पिछले अध्यायो मे इसका सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

यहाँ प्रथम अध्याय मे सट्टक का सविस्तार परिचय प्राप्त करने का प्रयास हुआ है, क्योकि अब तक यह पक्ष अस्पष्ट-सा था। सट्टक मूलत दृश्य-काव्य अर्थात् नाट्य है। अत. नाट्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुए, इसके महत्त्व पर दृष्टिपात करने के साथ प्रथम-अध्याय का प्रारम्भ

हुआ है। नाट्य सम्बन्धी विभिन्न परिभाषाओ का सार यही है, कि–नाट्य अभिनेय है। यह मूलत रङ्गमञ्च की वस्तु है। आनन्द के साथ चरित्र को उदार तथा जीवन के स्तर को उदात्त एव आदर्शमय बनाने मे ही नाट्य की महत्ता है। सट्टक के उपरूपक होने के कारण उपरूपको का साङ्गोपाङ्ग विवेचन करते हुए उसकी उत्पत्ति प्रक्रिया का अनुशीलन किया गया है, जिसका निष्कर्ष यह है कि–उपरूपको का उद्भव दो मार्गो से हुआ है, पहला–नृत्त एव नृत्य के विकास स्वरूप तथा दूसरा—प्रसिद्ध रूपक भेदो के सङ्कीर्णन के परिणाम स्वरूप। उपरूपको के विकास मे कोहल का विशेष योगदान स्वीकार किया जाता है। अत उनके तत्सम्बन्धी योगदान का आकलन करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है, कि–कोहल के समय ये उपरूपक नृत्यात्मक-रागकाव्य के स्तर पर थे। उसी रूप मे कोहल ने उनकी शास्त्रीय-मीमासा की थी। उपरूपको ने वर्तमान स्वरूप वस्तुत कोहल के बाद ही प्राप्त किया। सट्टक के सन्दर्भ मे इसके उद्भव पर विचार करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है, कि–यह ऐसा लोकनाट्य रहा है, जिसमे सट्टक वस्त्र की यवनिका बना ली जाती थी। इसी से यह विधा आगे चलकर सट्टक नाम से प्रख्यात हुई। यहाँ सट्टक रूपक है अथवा उपरूपक? इसकी सम्यक् विवेचना करते हुए, उसको उपरूपक मानने की मान्यता की पुष्टि की गयी है। अत मे सट्टक साहित्य की परम्परा पर दृष्टिपात करते हुए उपलब्ध सट्टको का परिचय दिया गया है।

द्वितीय-अध्याय मे राजशेखर एव विश्वेश्वर का पूर्ण परिचय प्रस्तुत है, क्योकि कवि के काल, परिवेश एव व्यक्तित्व के ज्ञान के बिना उसकी सन्दर्भित काव्य मे प्रवृत्ति का कारण एव काव्य मे प्रस्तुत उसके मन्तव्य को स्पष्ट कर पाना कठिन है। यहाँ विभिन्न श्रोतो से प्राप्त कवि सम्बन्धी सूचनाओ को एकत्रित करते हुए, तत्सम्बन्धी भ्रान्त-धारणाओ का निराकरण किया गया है। इसके अनुसार कर्पूरमञ्जरीकार यायावरवंशीय राजशेखर, अकालजलद के प्रपौत्र एव दर्दुक तथा शीलवती के पुत्र थे। ये कन्नौज-नरेश महेन्द्रपाल एव महीपाल के दरबारी ब्राह्मण कवि थे। इन्हे ८८० ई० से ९२० ई० के मध्य रखा जा सकता है। इनकी जन्मभूमि एव

कर्मभूमि मध्यदेश रहा है। इनकी पाँच प्रसिद्ध कृतियाँ–काव्यमीमासा, बालरामायण, बालभारत, कर्पूरमञ्जरी एव विद्धशालभञ्जिका उपलब्ध है। इसी प्रकार विश्वेश्वर अल्मोडा नगर के समीपवर्ती पटिया ग्राम के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। लक्ष्मीधर के पुत्र के रूप मे वाराणसी मे इनका जन्म हुआ था। इनकी कर्मभूमि कूर्माचल रहा है। इन्होने अनेक विपयो पर २५ के लगभग कृतियो का प्रणयन किया था। इनका समय १६७५ ई० से १७१५ ई० के मध्य रखा जा सकता है। इन दोनो कवियो के व्यक्तित्व एव कृतित्व के तुलनात्मक परिशीलन के सन्दर्भ मे देखा गया है, कि–दोनो ही प्रसिद्ध विद्वानो के वशज तथा जन्मजात कवि एव विद्वान है। इसमे राजशेखर अधिक बडबोले है, जबकि विश्वेश्वर अपेक्षाकृत अधिक मौलिक रचनाकार है।

तृतीय-अध्याय मे कर्पूरमञ्जरी एव शृङ्गारमञ्जरी की कथावस्तु का सम्यक् परिशीलन करते हुए, उसे नाट्यशास्त्रीय मान्यताओ की कसौटी पर कसा गया है, जिससे उसका सटीक मूल्याङ्कन सभव हो सके। यहाँ आधिकारिक एव प्रासङ्गिक वृत्त, अर्थोपक्षेपक, नाट्योक्ति, अर्थप्रकृतियाँ, कार्यावस्थाये, सन्धियाँ, सन्ध्यङ्ग-योजना आदि दृष्टियो से दोनो कृतियो का क्रमश. विवेचन करते हुए, यह देखा गया है कि–नाट्यशास्त्रीय मान्यताओ के अनुरूप ही इनकी कथावस्तुए निबन्धित है। यहाँ दोनो सट्टको की कथावस्तुओ की तुलनात्मक विवेचना के सन्दर्भ मे यह स्पष्ट किया गया है, कि–शृङ्गारमञ्जरी की वस्तुयोजना, कर्पूरमञ्जरी सट्टक की वस्तुयोजना की अपेक्षा अधिक सुगठित, प्रवाहपूर्ण एव रोचक है।

चतुर्थ-अध्याय मे विवेच्य-कृतियों की पात्र-व्यवस्था का विवेचन है। पात्रो के चरित्राङ्कन के माध्यम से ही नाट्यकार समाज को सोदाहरण अपना सदेश प्रेषित करता है। दर्शक पात्रो के माध्यम से ही साधारणीकृत होकर रसानन्द में सराबोर होता है। अत इस अध्याय मे क्रमश· कर्पूरमञ्जरी एव शृङ्गारमञ्जरी के नायक, नायिका, ज्येष्ठा-नायिका, विदूषक एवं अन्य मुख्य सहायक पात्रो के चरित्र को उद्घाटित किया गया है। इन कृतियो की पात्र-व्यवस्था कथानुरूप एव लोक-मञ्च की दृष्टि से सीमित सख्या वाली है। स्त्री-पात्रो की बहुलता है। दोनों कृतियो की

पात्र-व्यवस्था की तुलनात्मक समीक्षा के सन्दर्भ मे देखा गया है कि—कर्पूरमञ्जरी सट्टक की अपेक्षा शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे पात्रो के चरित्राङ्कन पर अधिक बल दिया गया है।

पञ्चम-अध्याय मे रस-विवेचन प्रस्तुत है। रस ही नाट्य की आत्मा है। इस रस का आनन्द ही दर्शको का प्राप्तव्य है। इसके विवेचन के बिना विवेच्य सट्टको की जीवन्तता का आकलन असम्भव था। दोनो ही कृतियो मे शृङ्गार-रस का अङ्गी-रस के रूप मे निबन्धन हुआ है। विदूषक जैसे पात्र के चुटीले सवादो एव हाव-भाव मे हास्य-रस की अभिव्यञ्जना हो रही है। सट्टक के लक्षणानुसार अद्भुत-रस का पुट भी आद्योपान्त मिलता है। भाव-ध्वनि के स्थल भी दोनो कृतियो मे मिलते है, जिनका सोदाहरण विवेचन किया गया है। दोनो कृतियो मे रस-परिपाक सम्बन्धी तुलनात्मक विवेचन मे देखा गया है कि—सट्टक के लक्षणानुसार दोनो का ही अङ्गी-रस शृङ्गार है तथा हास्य एव अद्भुत का समायोजन भी दोनो मे हुआ है। फिर भी शृङ्गार की योजना मे शृङ्गार-मञ्जरी सट्टक उत्कृष्ट है, जबकि हास्य की योजना मे कर्पूरमञ्जरी सट्टक अधिक सफल है। इनमे प्रमुख अन्तर यह है कि—कर्पूरमञ्जरी जहाँ भावप्रधान नाट्य है, वही शृङ्गारमञ्जरी रस प्रधान है।

षष्ठ-अध्याय मे भाषा एव शैली का अनुशीलन हुआ है, क्योकि भाषा ही भावो के सवहन का सशक्त माध्यम है। इस रूप मे दोनो ही कृतियो में दर्शको के पूर्णभावोद्बोधन हेतु प्राकृत भाषा का आश्रय किया गया है। उसमे भी दोनो मे शौरसेनी एव महाराष्ट्री प्राकृतो का प्रयोग प्राप्त होता है। विवेच्य-कृतियो मे शैली-विवेचन के प्रसङ्ग मे विविध अलङ्कारो एव छन्दो के प्रयोग दिखाई पड़ते हैं, जिन्हे सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है। दोनो कृतियो मे कथा के विकास हेतु प्रकृति-वर्णनो का सहारा लिया गया है। यहाँ विशेषकर उद्दीपन-विभाव के रूप मे प्रकृति का चित्रण प्राप्त होता है। विवेच्य-कृतियो की भाषा एव शैली का तुलनात्मक परिशीलन भी प्रस्तुत किया गया है, जिसके अनुसार कर्पूरमञ्जरी सट्टक में जहाँ गद्य तथा पद्य में शौरसेनी एव महाराष्ट्री प्राकृत का अलग-अलग प्रयोग हुआ है, वही शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में गद्य एव पद्य

दोनो मे ही दोनो प्राकृतो का प्रयोग प्राप्त होता है। दोनो कृतियाँ विविध छन्दो एव अलङ्कारो से अलङ्कृत है। कर्पूरमञ्जरी मे यद्यपि प्रकृति-वर्णन अपेक्षाकृत अधिक मिलता है, किन्तु यह अस्वाभाविक एव उबाऊ है। जबकि शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे कथा की माँग के अनुरूप प्रकृति-वर्णन सीमित एव सतुलित है।

सप्तम-अध्याय के अन्तर्गत विवेच्य-कृतियो मे प्रतिबिम्बित तत्कालीन सस्कृति का निरीक्षण किया गया है। यद्यपि कवि का उद्देश्य रसाभिव्यक्ति है, फिर भी जाने-अनजाने वह अपने समाज का चित्रण कर जाता है। इस रूप मे विवेच्य-कृतियो मे तत्कालीन समाज का चित्र ढूँढ़ना अपने आप मे मनोरञ्जक कार्य एव जिज्ञासा का विषय है। अत. समाज मे नारी की स्थिति, विवाह-व्यवस्था, धार्मिक-दशा, वर्ण-व्यवस्था, राजाओ के अन्त पुर की स्थिति, सामान्य व्यवहार की बाते आदि दृष्टियो से दोनो कृतियो पर दृष्टिपात किया गया है। यहाँ दोनो कृतियो के कालखण्डो के तुलनात्मक परिशीलन के सन्दर्भ मे यह देखा गया कि—लगभग सात सौ वर्षो का दीर्घ अन्तराल व्यतीत हो जाने पर भी नारी-दशा, विवाह-व्यवस्था, राजाओ के अन्त पुर की दशा आदि मे कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ। अनेक रूढ़ियाँ यथावत बनी रही।

अतिम-अध्याय मे साहित्य-जगत मे सट्टक के महत्व की चर्चा की गयी है। वस्तुत सट्टक वह जन-नाट्य-विधा रही है, जो जन-सामान्य द्वारा अपनी भाषा मे, अपनी मञ्च-व्यवस्था एव साज-सज्जा से जहाँ कही भी मञ्चित होकर आनन्दित करने वाली थी। ऐसी लोक-नाट्य-विधा को 'कर्पूरमञ्जरी सट्टक' के प्रणयन द्वारा अपनाकर, राजशेखर ने जन-नाट्य को प्रतिष्ठित करने की जो क्रान्तिकारी शुरुआत की एव विश्वेश्वर जैसे नाट्यकार ने अपने शृङ्गारमञ्जरी सट्टक जैसे सुन्दर-सृजन द्वारा लोकधर्मी नाट्य-साहित्य को परिपोषित करने का जो साहसपूर्ण कार्य किया; इससे वे दोनो ही नाट्य-साहित्य-जगत मे सदा समादरणीय एव स्मरणीय रहेगे।

●●●

परिशिष्ट

परिशिष्ट

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूचिका

संस्कृत ग्रन्थ—

१. अग्निपुराण—सम्पादक-पचानन तर्करत्न, बगवासी प्रेस, कलकत्ता।

२. अभिनवभारती—आचार्य अभिनवगुप्त, भाग-एक, दो एव तीन, प्रकाशक—गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा, १९६४ ई०।

३. अभिज्ञानशाकुन्तल—कालिदास, सम्पादक—डॉ० रमाशङ्कर त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९९१ ई०।

४. अमरकोश—अमरसिह, व्याख्याकार—श्रीरामतेज पाण्डेय, प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९९० ई०।

५. अलङ्कारकौस्तुभ—विश्वेश्वर, सम्पादक—शिवदत्त एव के०पी० परब, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १८९८ ई०।

६. अलङ्कारप्रदीप—विश्वेश्वर, सम्पादक—विष्णु प्रसाद भण्डारी, चौखम्बा सस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९२३ ई०।

७. अलङ्कारमुक्तावली—विश्वेश्वर, सम्पादक—विष्णु प्रसाद भण्डारी, चौखम्बा सस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९२७ ई०।

८. काव्यप्रकाश—आचार्य मम्मट, व्याख्याकार—आचार्य विश्वेश्वर, सम्पादक-डॉ० नगेन्द्र, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, सवत् २०४२ वि०।

८. काव्यप्रकाश—आचार्य मम्मट, व्याख्याकार—श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, १९६० ई०।

१०. काव्यमीमांसा—आचार्य राजशेखर, अनुवादक—पं० केदारनाथ शर्मा सारस्वत, बिहार

राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, सवत्–२०२२ वि०।

११. काव्यमीमांसा—आचार्य राजशेखर, सम्पादक– सी०डी० दलाल, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा, १९३४ ई०।

१२. काव्यादर्श—आचार्य दण्डी, धर्मेद्रकुमार गुप्ता, प्रकाशक—मेहरचन्द लक्षमनदास, दरियागज, दिल्ली, १९७३ ई०।

१३. काव्यादर्श—आचार्य दण्डी, व्याख्याकार—आचार्य श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९७२ ई०।

१४. काव्यानुशासन—आचार्य हेमचन्द्र, सम्पादक—आर०सी० पारिख, वाराणसी, १९३८ ई०।

१५. काव्यालङ्कार—आचार्य रुद्रट, व्याख्याकार—रामदेव शुक्ल, प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, १९६६ ई०।

१६. काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति—आचार्य वामन, हिन्दी अनुसधान परिषद ग्रन्थमाला, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, १९५४ ई०।

१७. चन्द्रालोक—आचार्य जयदेव, पीयूषवर्षी, गुजरात प्रिंटिग प्रेस, बम्बई, १९३९ ई०।

१८. तर्ककुतूहल—विश्वेश्वर, सम्पादक—श्री जर्नादिन शास्त्री पाण्डेय, प्रकाशक—श्री नित्यानन्द स्मारक समिति, वाराणसी।

१९. दशरूपक—आचार्य धनञ्जय, अवलोक-टीका सहित, व्याख्याकार—डॉ० भोलाशङ्कर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९७९ ई०।

२०. दशरूपक—आचार्य धनञ्जय, अवलोक-टीका सहित, व्याख्याकार—श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, १९८९ ई०।

२१. ध्वन्यालोक—आचार्य आनन्दवर्धन, व्याख्याकार—आचार्य विश्वेश्वर, सम्पादक—डॉ० नगेन्द्र, ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी, संवत्–२०४२ वि०।

२२. नाटकचन्द्रिका—आचार्य रूपगोस्वामी, व्याख्याकार—बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत

सीरीज, वाराणसी, १९६४ ई०।

२३. नाट्यदर्पण—आचार्य रामचन्द्र-गुणचन्द्र, व्याख्याकार—थानेश चन्द्र उप्रेती, परिमल प्रकाशन, दिल्ली, १९८६ ई०।

२४. नाट्यलक्षणरत्नकोश—आचार्य सागरनन्दी, व्याख्याकार—बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९७२ ई०।

२५. नाट्यशास्त्र—आचार्य भरत, अभिनवभारती टीका सहित, सम्पादक—मधुसूदन शास्त्री, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९७१ ई०।

२६. नाट्यशास्त्र—आचार्य भरत, श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सस्थान, वाराणसी, १९८४ ई०।

२७. प्रतापरुद्रयशोभूषण—आचार्य विद्यानाथ, प्रकाशक—गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल प्रेस, बम्बई, १९०९ ई०।

२८. बालरामायण—राजशेखर, सम्पादक—डॉ० गगासागर राय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

२९. भावप्रकाशन—आचार्य शारदातनय, अनुवादक—डॉ० मदनमोहन अग्रवाल, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९८३ ई०।

३०. मन्दारमञ्जरी—विश्वेश्वर, पूर्वभाग, सम्पादक—प्रो० गोपालदत्त पाण्डेय, पर्वतीय पुस्तक प्रकाशन मण्डल, बनारस, १९९५ ई०।

३१. रत्नावली-नाटिका—महाराज हर्ष, सम्पादक—डॉ० रमाशकर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसी-दास, वाराणसी, १९७६ ई०।

३२. रसचन्द्रिका—विश्वेश्वर, सम्पादक—विष्णु प्रसाद भण्डारी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९२६ ई०।

३३. विद्धशालभञ्जिका-नाटिका—राजशेखर, सम्पादक—श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी, १९७६ ई०।

३४. वृत्तरत्नाकर—भट्टकेदार, व्याख्याकार—श्रीधरानन्दशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी—१९७२ ई०।

३५. वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधि—विश्वेश्वर, पूर्वभाग, सम्पादक—प० माधवशास्त्री भण्डारी, चौखम्बा सस्कृत सीरीज, वाराणसी।

३६. व्यक्तिविवेक—आचार्य महिमभट्ट, व्याख्याकार—डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९७९ ई०।

३७. श्रुतबोध—कालिदास, टीकाकार—सरयू प्रसाद पाण्डेय, सम्पादक—तेजराम शास्त्री, प्रका०—ठाकुर प्रसाद गुप्त, काशी, सवत्—१९९३ वि०।

३८. शृङ्गारप्रकाश—भोज, डॉ० वी० राघवन, अनुवादक—पी०डी० अग्निहोत्री, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, १९८१ ई०।

३९. साहित्यदर्पण—आचार्य विश्वनाथ, व्याख्याकार—शालिग्राम शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली—१९७७ ई०।

४०. साहित्यदर्पण—आचार्य विश्वनाथ, व्याख्याकार—श्रीयुत् हरिदास, सिद्धान्त वागीश भट्टाचार्य, संस्कृत बुक डिपो, कलकत्ता, १९८१ ई०।

४१. सुक्तिमुक्तावलि—जल्हण, ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १९३८ ई०।

प्राकृत ग्रन्थ—

४२. आनन्दसुन्दरी—कण्ठीरव घनश्याम, सम्पादक—डॉ० ए०एन० उपाध्ये, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी—१९५५ ई०।

४३. कर्पूरमञ्जरी—राजशेखर, सम्पादक—गगासरन राय, प्रकाशक—मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९७९ ई०।

४४. कर्पूरमञ्जरी—राजशेखर, सम्पादक—चुन्नीलाल शुक्ल, साहित्य भण्डार, मेरठ, १९७५ ई०।

४५. कर्पूरमञ्जरी—राजशेखर, सम्पादक—श्री रामकुमार आचार्य, चौखम्बा विद्याभवन,

वाराणसी, १९९० ई०।

४६. चन्द्रलेहा—रुद्रदास, सम्पादक—डॉ० ए०एन० उपाध्ये, प्रकाशक—भारतीय विद्या ग्रन्थावली, बम्बई, १९४५ ई०।

४७. प्राकृतपैङ्गल—श्री चन्द्रमोहन घोष, एसियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, १९०२ ई०।

४८. प्राकृतसर्वस्व—मार्कण्डेय, सम्पादक—भट्टनाथ स्वामी, ग्रन्थप्रदर्शिनी, विजगापट्टम् १९२७ ई०।

४९. रम्भामञ्जरी—नयचन्द्र, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १८८९ ई०।

५०. शृङ्गारमञ्जरी—विश्वेश्वर, सम्पादक—डॉ० जगन्नाथ जोशी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९९० ई०।

हिन्दी ग्रन्थ—

५१. अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग—सम्पादक एव अनुवादक—रामलाल वर्मा शास्त्री, नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली—१९५९ ई०।

५२. अभिनव प्राकृत व्याकरण—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, तारा पब्लिकेशन, वाराणसी, १९६३ ई०।

५३. आचार्य राजशेखर—डॉ० श्यामा वर्मा, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, १९७१ ई०।

५४. आधुनिक संस्कृत नाटक—डॉ० रामजी उपाध्याय—सस्कृत परिषद, सागर विश्वविद्यालय, सागर, १९७७ ई०।

५५. काव्याङ्ग-विवेचन—डॉ० भगीरथ मिश्र तथा बलभद्र तिवारी, प्रकाशक—स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७६ ई०।

५६. काव्यालङ्कारसारसंग्रह एवं लघुवृत्ति की व्याख्या—डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६६ ई०।

५७. कवि और काव्यशास्त्र—डॉ० सुरेश चन्द्र पाण्डेय, प्रकाशक-राका, ४०-ए, मोतीलाल नेहरू रोड, इलाहाबाद।

५८. ध्वनिसिद्धान्त विरोधी सम्प्रदाय एवं उनकी मान्यताएँ—डॉ० सुरेश चन्द्र पाण्डेय, वसुमती

प्रकाशन, इलाहाबाद।

५९. नाट्यकला : प्राच्य एवं पाश्चात्य—डॉ० सुदर्शन मिश्र, प्रकाशक—श्री पादन दास भट्टाचार्य, वाराणसी, १९७४ ई०।

६०. नाट्यकलामीमांसा—डॉ० गोविन्द दास, मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद, १९६१ ई०।

६१. प्राकृतप्रवेशिका—कोमलचन्द्र जैन, प्राच्यभारती प्रकाशन, कमच्छा, वाराणसी, १९६४ ई०।

६२. प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक—डॉ० एन०सी० शास्त्री, तारा पब्लिकेशन्स, कमच्छा, वाराणसी, १९६६ ई०।

६३. प्राकृतविमर्श—हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, १९७४ ई०।

६४. प्राकृत साहित्य का इतिहास—डॉ० जगदीश चन्द्र जैन, प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६१ ई०।

६५. बृहत्त्रयी : एक तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ, प्रकाशक—ईस्टर्न बुक लिकर्ष, दिल्ली, १९८३ ई०।

६६. भरत एवं भारतीय नाट्यकला—सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, १९६७ ई०।

६७. भारतीय नाट्य परम्परा एवं अभिनवदर्पण—वाचसपति गैरोला, सर्वतिका प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६७ ई०।

६८. भारतीय नाट्यशास्त्र एवं रङ्गमञ्च—डॉ० रामसागर त्रिपाठी, प्रकाशक—अशोक प्रकाशन, दिल्ली, १९७१ ई०।

६९. भारतीय नाट्य सिद्धान्त : उद्‌भव एवं विकास—डॉ० रामजी पाण्डेय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १९८२ ई०।

७०. भावप्रकाशन : एक समालोचनात्मक अध्ययन—डॉ० रामरंग शर्मा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९८४ ई०।

७१. भाषा विज्ञान—डॉ० भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहाबाद, १९८८ ई०।

७२. मध्यकालिक-संस्कृतनाटकालोक—रामजी उपाध्याय, भारतीय सस्कृत सस्थान, नारीबारी, इलाहाबाद, सवत् २०३७ वि०।

७३. रस-मीमांसा—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, १९६८ ई०।

७४. संस्कृत काव्यकार—डॉ० हरिदत्त शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, १९७० ई०।

७५. सस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—पी०वी० काणे, प्रकाशक—मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९७७ ई०।

७६. सस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० सुनील कुमार डे, प्रकाशक—बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, १९८८ ई०।

७७. संस्कृत काव्यशास्त्र परम्परा में आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय का योगदान—श्री लक्ष्मीदत्त जोशी, अवध विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध, १९९३ ई०।

७८. संस्कृत नाटक—ए०बी० कीथ, अनुवादक—डॉ० उदयभानु सिह, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६५ ई०।

७९. संस्कृतनाटिकाविमर्श—जयश्री सिन्हा, कैपिटल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९८६ ई०।

८०. संस्कृत साहित्य का इतिहास—बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, वाराणसी, १९८७ ई०।

८१. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास—डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, प्रकाशक—रामनारायणलाल विजय कुमार, इलाहाबाद, १९८५ ई०।

८२. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा—प० चन्द्रशेखर पाण्डेय एवं डॉ० शान्तिकुमार नानूराम व्यास, साहित्य निकेतन, कानपुर, १९७५ ई०।

८३. संस्कृत-हिन्दी-कोश—वामन शिवराम आप्टे, प्रकाशक—मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी १९८७ ई०।

अंग्रेजी ग्रन्थ—

84. **A History of Classical Sanskrit Literature**—M. Krisnamachariar, Motilal Banarsidas, Delhi, 1974 A.D.

85. **A History of Sanskrit Literature**—A.B. Keith, Oxford University Press, 1970 A.D.

86. **A History of Sanskrit Literature**—S.K. Dey, Calcutta, 1947 A.D.

87. **Bhoja's Śṛṅgāra Prakāśa**—Dr. V. Raghavan, Punarvasu Prakashan, Madras, 1963 A.D.

88. **Kāvyālaṅkāra**—Bhāmaha—P.V Naganatha Sastry, Motilal Banarsidas, Varanasi, 1970 A.D.

89. **Mālavikāgnimitra**—Kalidas—Translator—Mr. H.W. Tawney, Calcutta, 1891 A.D.

90. **Nāṭyadarpaṇa**—Ramchandra and Gunachandra, Gajanan Kushaba Shrigondekar & Latchandra Bhagawandas, Oriental Institute, Baroda, 1929 A.D.

91. **Prākṛta-Prakāśa**—Vararuchi, C.B. Kowell, Punthipustak, Cal., 1962 A.D.

92. **Rājaçekhara's Karpūramañjarī**—Kten Konow & C. Rockwell Lanman, Motilal Banarsidas, Delhi, 1963 A.D.

●●●